# क्रान्ति-दूत

# हज़रत मुहम्मद (सल्ल०)

नईम सिद्दीक़ी

अनुवादक

कौसर यज़दानी

# विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

# दो शब्द

कुछ संयोग विचित्र होते हैं !

तीन साल पहले भारत से शायद रेडियंस के मैनेजर सैयद हुसैन[1] आकर मिले और बातों-बातों में मुझे मशविरा दिया कि 'मुहसिने इनसानियत'[2] का संक्षिप्त संस्करण भी तैयार होना चाहिए। मैंने बेमन से कह दिया कि अच्छा, कभी समय मिला तो कोशिश करूँगा। इसके दो-तीन दिन बाद ही अल्लाह ने मुझसे इस काम का आरंभ करा दिया।

रमज़ान 1398 हि० (1977 ई०) के लिए रेडियो पाकिस्तान लाहौर की ओर से तक़ाज़ा हुआ कि 'मुहसिने इनसानियत का लेखक, इसी शीर्षक से 30 भाषणों में हुज़ूर (सल्ल०) की पवित्र जीवनी का बखान करे, अर्थात हर दिन एक भाषण। मैंने दीन व मिल्लत की ख़िदमत के जज़्बे से अपनी अति व्यस्तताओं के बावजूद इस मुहिम को पूरा कर लिया। हर दिन भाषण तैयार करता, फिर रेडियो स्टेशन जाकर रिकार्ड कराता, फिर प्रसारित भाषणों को ख़ुद सुनता, बल्कि एक दिन तो देर हो जाने की वजह से भाषण का सीधा प्रसारण हो गया।

अच्छा हुआ कि इन भाषणों के मुसव्वदों की नक़लें मैं रखता रहा, पर अन्तिम रूप देने के लिए फिर वही इन्तिज़ार कि कभी फ़ुर्सत मिले तो कुछ करूँगा। मगर फ़ुर्सत कभी न मिली, यहाँ तक कि अब तीन साल से अधिक हो गया है। अब जब मेरा ताल्लुक़ इदार-ए-मआरिफ़े इस्लामी से डायरेक्टर की हैसियत से हुआ, तो इदारा के इंचार्ज जनाब ख़लील हामिदी से बात-बात में यह बात तय हो गई कि मैं सीरत (हज़रत मुहम्मद सल्ल० की जीवन-चर्या) पर प्रसारित भाषणों को अल-मनार बुक सेंटर के लिए अन्तिम रूप दे दूँ। होते-होते यह काम भी आख़िर हो ही गया। अब यह पुस्तक-रूप में पेश है। स्पष्ट रहे कि प्रसारित भाषणों में संशोधन किए गए हैं, कुछ बढ़ाया भी गया है और भाषणों की तादाद भी बढ़ गई है।

दूसरे धर्मों के मुक़ाबले में इस्लाम में एक गति और तप है। यह मर्म मैंने पूरे क़ुरआन के अध्ययन से जब पा लिया तो फिर मैंने सीरत पर निगाह डाली और महसूस किया कि प्यारे नबी (सल्ल०) की एक अनोखी शान है। आपके सन्देश

1. सैयद हुसैन साहब अब स्वर्गीय हो चुके हैं।
2. हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर लेखक की एक वृहद पुस्तक।

और शिक्षा ने अरबों के ठहराव को समाप्त कर, उन्हें जीवन-गति का एक बहाव दे दिया। हमारा जीवनी-लेखन उसे सही तौर पर पेश करने में सफल नहीं है। मेरा मतलब यह है कि ज्ञानात्मक शोध-कार्य की दृष्टि से और अपार श्रद्धा और ईमान की दृष्टि से अधिकांश जीवनी-लेखक (मुख्य रूप से पुराने बुज़ुर्ग) मुझसे बहुत आगे हैं, पर कमी यह रह जाती है कि उस ज्योति-दिशा-तपन का तूफ़ान हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की सीरत पढ़ने-सुननेवालों तक नहीं पहुँचता, जो उन्हें भी ठहराव की क़ैद से निकालकर गतिमान कर दे।

बस केन्द्रीय उद्देश्य यही था 'मुहसिने इनसानियत' के लिखने का, पर 'मुहसिने इनसानियत' एक वृहद पुस्तक बन गई। वैसे तो वह वृहद पुस्तक नहीं, बल्कि एक भाग तक सीमित होने की वजह से उसे संक्षिप्त जीवनी ही कहा जा सकता है, पर आज की महंगाई के दौर में साढ़े छः सौ पृष्ठों की एक पुस्तक ख़रीदना बहुत-से लोगों के लिए कठिन है, मुख्य रूप से युवा छात्रों और ग़रीब लोगों को सामने रखते हुए और अधिक संक्षिप्त संस्करण की ज़रूरत थी, सो यह संक्षिप्त संस्करण हाज़िर है।

पढ़नेवालों के लिए मैं दुआ करता हूँ कि अल्लाह इस पुस्तक के ज़रिए उनको पाक सीरत की सही समझ दे। जवाब में वे मेरे लिए दुआ करें कि अल्लाह मेरी इस कोशिश को स्वीकार करे और ग़लतियाँ माफ़ करे।

निवेदन यह भी है कि पाठकगण इस पुस्तक की जिन ग़लतियों को जानें, उनसे मुझे सूचित करें।

आपका

**नईम सिद्दीक़ी**

नवम्बर 1981 ई०

# एक महान क्रान्ति की कहानी

पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की जीवनचर्या कोई क़िस्सा-कहानी नहीं है, वह सिर्फ़ एक व्यक्ति की दास्तान भी नहीं है, बल्कि वह वास्तव में एक ऐसी महान और पावन क्रान्ति की कहानी है, जिसकी कोई मिसाल इनसानी तारीख़ में नहीं मिलती। इस क्रान्ति की कहानी का मूल पात्र प्यारे नबी (सल्ल०) का व्यक्तित्व है। बाक़ी पात्र, भले ही वे अबू बक्र व उमर (रज़ि०) हों या उस्मान व अली (रज़ि०), ज़ाफ़र तैयार (रज़ि०) हों या सैयदुश-शुहदा हज़रत हमज़ा (रज़ि०), वे हज़रत बिलाल हों या यासिर व अम्मार (रज़ि०), और इसी तरह दूसरे मोर्चे पर अबू जहल हो या अबू लहब, अब्दुल्लाह बिन उबई हो या काब बिन अशरफ़, औरतों में से हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) हों या हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०), हज़रत आइशा (रज़ि०) हों या उम्मुल मसाकीन (रज़ि०) और इनके मुक़ाबले में अबू लहब की बीवी हो या कच्चा कलेजा चबानेवाली हिंदा—ये सबके सब मूल पात्र के या तो सहयोगी पात्र हैं या विरोधी। इन विभिन्न पात्रों के सहयोग और संघर्ष के नतीजे में तारीख़ का वह सुनहरा अध्याय लिखा गया, जिसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्यारे नबी (सल्ल०) की पाक सीरत रची-बसी हुई है और मुहाजिरों और अनसार में उसी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। प्यारे नबी (सल्ल०) की सीरत को इस संघर्ष से अलग करके समझा ही नहीं जा सकता।

प्यारे नबी (सल्ल०) न दुनिया से नाता तोड़ लेनेवाले संन्यासी थे और न एक सीमित और निष्प्रभ धर्म या मत सिखाने आए थे। आपके ज़िम्मे सिर्फ़ पूजा-पाठ के तरीक़े बताने और कुछ नैतिक उपदेश देने और उनकी सिफ़ारिशें करने का काम न था, बल्कि क़ुरआन के स्पष्टीकरण के अनुसार आपके भेजे जाने का मक़सद यह था कि ईश्वरवादी विवेक और पावन चरित्र से सँवाकर आप (सल्ल०) ऐसा गिरोह खड़ा कर दें, जो आपके नेतृत्व में भरपूर जद्दोजेहद करके सच्चे दीन को हर दूसरे नज़रिए, फ़लसफ़े और धर्म के मुक़ाबले में पूरी इनसानी ज़िंदगी पर ग़ालिब कर दे।

बात को समझने के लिए दो-तीन मौक़ों पर फ़रमाए हुए प्यारे नबी (सल्ल०) के कथनों पर हम नज़र डालते हैं, जिनसे साफ़ पता चलता है कि प्यारे नबी (सल्ल०) को अपने कठिन और हतोत्साहित करनेवाले प्रारंभिक दौर में इस बात का पूरा एहसास था कि क्या करने चले हैं। दावत का काम शुरू करने के बाद बहुत जल्द बनी हाशिम ख़ानदान को खाने पर जमा किया और इस मौक़े पर

भाषण देते हुए फ़रमाया कि "जो पैग़ाम मैं तुम तक लाया हूँ, इसे अगर तुम अपना लो तो इसमें तुम्हारी दुनिया की बेहतरी भी है और आख़िरत की भलाई भी।" फिर संघर्ष के आरंभिक दौर में विरोधियों से आपने फ़रमाया कि "बस यह एक कलिमा है, इसे अगर मुझसे क़बूल कर लो तो इसके ज़रिए तुम सारे अरब को क़ाबू में कर लोगे और सारा अजम (ग़ैर अरब) तुम्हारे पीछे चलेगा।"

फिर एक मौक़े पर बशीर (शुभ-सूचना देनेवाले) व नज़ीर (डरानेवाले) रसूल काबे की दीवार से टेक लगाए बैठे थे। ख़ब्बाब बिन अल-अरत ने जो क़ुरैश की ज़्यादती और ज़ुल्म का निशाना बन रहे थे, अर्ज़ किया, "हुज़ूर (सल्ल०)! हमारे लिए ख़ुदा की मदद की दुआ नहीं फ़रमाएँगे?" प्यारे नबी (सल्ल०) ने जवाब दिया कि "तुमसे पहले ऐसे लोग भी गुज़रे हैं कि गढ़े खोदकर उनके देह मिट्टी में दबा दिए जाते और फिर उनके सिरों पर आरे चलाकर उनके दो टुकड़े कर दिए जाते। तेज लोहे की बड़ी-बड़ी कंघियों से ज़िंदा ज़िस्म के मांस और खालों की कतरनें हड्डियों से नोच ली जातीं, लेकिन ये चीज़ें उनको दीन व ईमान से न फेर सकीं।" फिर फ़रमाया कि "ख़ुदा की क़सम! इस काम को अल्लाह मंज़िल तक पहुँचाकर इस तरह पूरा करेगा कि एक सवार सुनआ से हज़रमौत तक अकेले सफ़र करेगा और उसे ख़ुदा के अलावा किसी का भय न होगा।" मदनी दौर में अदी बिन हातिम से फ़रमाया कि "ख़ुदा की क़सम! वह वक़्त क़रीब आ रहा है, जब तुम सुन लोगे कि अकेली औरत क़ादसिया से चलेगी और मक्का का हज करेगी और उसे किसी का डर न होगा।" इन कथनों से साफ़ ज़ाहिर है कि आपके सामने भाईचारा, बराबरी, अदल व इनसाफ़ और अम्न व सलामती की एक ऐसी व्यवस्था का नक़्शा था जिसमें कमज़ोर और अकेला व्यक्ति भी हर ख़तरे और ज़ुल्म से सुरक्षित होगा।

यह थी मंज़िल, जहाँ तक संपूर्ण मानवता के नेता मुहम्मद (सल्ल०) ने अरब के उस समाज को पहुँचाने के लिए उम्र भर जानमारी की, जो जिहालत की अंधियारियों में डूबा हुआ था, अनुशासनविहीन था, अपराधों का अड्डा था और जिसके उजड्ड और अक्खड़ लोग आपस में लड़-भिड़कर शक्तियाँ बरबाद कर रहे थे।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की लाई इस क्रान्ति की नींव कलिमा तैयिबा (ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह) यानी एक अल्लाह के अलावा कोई उपास्य नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं, पर रखी गई थी, यानी इस सृष्टि का और पूरी मानव-जाति का एक ही उपास्य (माबूद) है और वह अल्लाह है। उपासना सिर्फ़ उसी की होगी। हुक्म और क़ानून सिर्फ़ उसी का चलेगा। ज़रूरतें

उसी के सामने रखी जाएँगी, दुआएँ उसी से माँगी जाएँगी, नज़रें उसके सामने पेश की जाएँगी। कर्मों का हिसाब-किताब लेनेवाला और इनाम और सज़ा देनेवाला वह है। ज़िंदगी, मौत, सेहत, रोज़ी, सुख-शान्ति और इज़्ज़त सब कुछ उसकी ओर से है। ज़िंदगी में और कोई उपास्य न होगा। किसी बादशाह की, किसी हुक्मराँ की, किसी ख़ानदान की, किसी दौलतमंद की, किसी पुरोहित और पादरी की, किसी नम्बरदार और चौधरी की और ख़ुद किसी व्यक्ति के अपने नफ़्स की ख़ुदाई भी न चलेगी। अल्लाह के सिवा दूसरा जो कोई भी ख़ुदा बनता है या अपनी मरज़ी ठूँसता और अपना क़ानून चलाता है या दूसरों के सिर अपने सामने या किसी और के सामने झुकवाता है, या जो लोगों की ज़रूरतें पूरी करने का दावेदार बनता है, वह ताग़ूत (सरकश नाफ़रमान) का पार्ट अदा करता है।

इस क्रान्तिकारी कलिमे का दूसरा हिस्सा यह बताता है कि मुहम्मद (सल्ल०) को ख़ुदा ने अपना रसूल नियुक्त किया है। उनको वह्‌य के ज़रिए हिदायत और गुमराही, नेकी और बदी, हलाल और हराम का ज्ञान दिया है। आप ख़ुदा की ओर से क़ियामत तक तमाम मुसलमानों के पेशवा, रहनुमा, सिखानेवाले, पाक करनेवाले और आदर्श और नमूना क़रार दिए गए हैं।

इस क्रांतिकारी कलिमे के बीच से इनसाफ़ और रहमत की व्यवस्था का वह पावन वृक्ष प्रकट हुआ, जिसकी शाखाएँ हवाओं में फैल गईं और जड़ें ज़मीन में उतर गईं, जिसकी छाया दूर-दूर तक फैल गई और जिसके चिन्तन, व्यवहार और नैतिकता के फल-फूल का कुछ हिस्सा हर क़ौम और हर सोसाइटी तक पहुँचा।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की लाई हुई क्रान्ति के आश्चर्यजनक पहलुओं में से एक यह है कि जिसने आपके संदेश को अपनाया, उसकी सारी हस्ती बदल गई—उसकी सोच का ढाँचा, उसका चिंतन, उसकी भावनाएँ, उसकी रुचि और दिलचस्पी, उसकी दोस्ती और दुश्मनी, और उसके नैतिक स्तर सबके सब बदल गए। चोर और डाकू आए और फिर वे दूसरे लोगों के मालों के निगहबान बन गए। ज़ानी (बलात्कारी) आए और दूसरों की सतीत्व (पाकदामनियों) के रखवाले बन गए; सूद खानेवाले आए और वह अपनी कमाइयाँ ख़ुदा के दीन और बन्दों की ख़िदमत के लिए लुटाने लग गए, साक्षात अहंकारी आए और विनम्रता का आदर्श बन गए। मनोकामनाओं के दास आए और पल भर में दुनिया ने देखा कि वे अपनी मनोकामनाओं को कुचलते हुए एक श्रेष्ठ लक्ष्य की ओर लपके जा रहे हैं, अज्ञानी आए और ज्ञान-क्षितिज पर उन्होंने इस तरह जगमगाना शुरू कर दिया कि दुनिया चकित रह गई। ऊँटों के चरवाहे इनसानों के मेहरबान रखवाले बन गए, लौंडियों-ग़ुलामों के पिसे हुए वर्ग से ऐसे वीर और स्वाभिमानी पैदा हुए, जिन

पर दुश्मनों ने ज़ुल्म व सितम के सारे हथियार आज़मा लिए, लेकिन उनकी अर्न्तात्मा की आवाज़ को दबाने और उनके ईमानों को परास्त करने में सफल न हुए।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की लाई हुई क्रान्ति के इन स्वयंसेवकों में संयम और अनुशासन ऐसा बेमिसाल था कि नमाज़ की हालत में उनको क़िबला बदलने का हुक्म मिला तो उन्होंने तुरन्त अपने चेहरे बैतुल-मक़दिस से काबा की ओर फेर लिए, उनके लिए शराब हराम की गई तो उन्होंने मुँह के साथ लगे हुए प्याले तक अलग करके फेंक दिए। उनकी औरतों ने जब प्यारे रसूल (सल्ल०) की ज़बान से परदे का हुक्म सुना तो उसमें नुक़्ताचीनी करने के बजाए तुरन्त अपने सरों, सीनों और ज़ीनतों (शृंगारों) को ढाँप लिया। इनमें से अगर किसी मर्द या औरत से ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) के हुक्मों के ख़िलाफ़ कोई जुर्म हो गया, तो अपने जुर्म के इक़रारी बनकर ख़ुद पेश हो गए और आग्रह किया कि उन पर सज़ा लागू करके उन्हें पाक कर दें। उनसे चन्दा तलब किया गया तो किसी ने घर का सारा सामान ला के मस्जिद में ढेर कर दिया, किसी ने सामान से लदे हुए ऊँटों की लाइनें खड़ी कर दीं और किसी मज़दूर ने दिन भर की मेहनत की कमाई हुई कुछ खजूरें पेश कर दीं।

आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का एक बड़ा उपकार इनसानी सभ्यता पर यह है कि आपने इनसानों के तमाम रिश्तों और नातों को सुदृढ़ बुनियादों पर खड़ा किया, एक-दूसरे की आपसी ज़िम्मेदारियाँ स्पष्ट कीं, सबके अधिकार व कर्त्तव्य निश्चित किए, और अपने नमूने के समाज में माँ-बाप और सन्तान, भाई-बहनों और मियाँ-बीवी, गुरु और शिष्य, अमीर और ग़रीब, पड़ोसी और सहयात्री, हाकिम और प्रजा के संबंधों को सबसे अच्छी शक्ल दी।

व्यक्ति के भीतर जन्म लेनेवाली इस क्रान्ति के नतीजे में अरब के समाज में जो क्रान्ति आई, वह आश्चर्यजनक है। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इस्लामी स्टेट की नींव जब मदीने में रखी तो ज़्यादा से ज़्यादा वह क्षेत्र सौ वर्ग मील होगा। आठ-नौ साल की छोटी-सी मुद्दत में यह स्टेट फैलकर दस-बारह लाख वर्ग मील तक पहुँच गई, जिसमें कोई वर्गीय संघर्ष न था। जिसमें वंश का गर्व और नस्ल की तंगनज़री का अन्त हो गया, जिसमें धनी-निर्धन, शिक्षित और अनपढ़ भाई-भाई बन गए, जिसमें अपराध न होने के बराबर थे, जिसमें लोग एक-दूसरे पर ज़ुल्म करनेवाले, सरकारी माल और ज़िम्मेदारियों में ख़ियानत करनेवाले और रिश्वतें समेटनेवाले न थे, जिसमें हर कोई दूसरे के काम आता था और अपने भाई को सहारा देता था। यह बिलकुल एक नई दुनिया की तामीर की मुहिम थी।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की यह पाक और प्यारी क्रान्ति इस तरह नहीं आई कि लोगों पर बलात थोपा जा रहा हो। इस क्रान्ति के संदेश को अपनाने के लिए किसी को क़त्ल नहीं किया गया, किसी को जेल में नहीं डाला गया, किसी की पीठ पर कोड़े नहीं बरसाए गए। इसके लिए आतंक नहीं फैलाया गया, बल्कि इस क्रान्ति की रूह मानवता का प्रेम था और प्यारे नबी (सल्ल०) ने बड़े प्यार से शिक्षक बनकर पहले मक्का में तेरह साल तक और फिर मदीना में दस साल तक काम किया।

मक्का के दौर में आपने गालियाँ सुनकर, तानों का निशाना बनकर, मार खाकर और तीन साल तक अबू तालिब की घाटी में खानदान के साथ नज़रबंद रहने के बावजूद नर्मी और प्यार से दावत दी और आपके साथी तपती रेत पर लिटाए गए, उनके सीनों पर पत्थर रखे गए, उनकी पीठों के नीचे धधकते शोले ठंडे हो गए, किसी के गले में रस्सी डालकर गलियों में घसीटा गया, किसी को कोड़े मार-मारकर अधमुआ कर दिया गया और किसी को अज़ाब दे-देकर जान ही ले ली गई।

फिर मदीने में आकर यहूदियों की शरारतों और मुनाफ़िक़ों की ग़द्दारियों का सामना किया, यहाँ तक कि बार-बार आपकी हत्या की साज़िशें की गईं, जिनसे हुज़ूर (सल्ल०) बाल-बाल बच निकले, पर यहूदियों और मुनाफ़िक़ों की एक बड़ी तादाद पूरी आज़ादी के साथ मौजूद रही और शरारत फैलाती रही।

लड़ाई के मैदान में प्यारे नबी (सल्ल०) अगर इस्लामी ताक़त को उतारने पर मजबूर हुए, तो इस वजह से कि विरोधी आज्ञानी शक्ति के वाहक ख़ुद बार-बार चढ़कर आए। बद्र, उहुद और अहज़ाब की तीन बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ मदीने के दरवाज़े पर लड़ी गईं, इससे हटकर एक लड़ाई और हुई जिसके पहले मरहले में मक्का और दूसरे में हुनैन और तायफ़ विजित हुए। यह इस वजह से ज़रूरी था कि शत्रु की सामरिक शक्ति और कार्रवाइयों के ये जो गढ़ थे, अगर उन्हें क़ायम रहने दिया जाता तो लड़ाइयों का यह सिलसिला न जाने कब तक चलता। इसी तरह बनू मुस्तलिक़ की लड़ाई और ख़ैबर की लड़ाई का मक़सद भयानक क़िस्म की ग़द्दारी भरी और साज़िशी कार्रवाइयों का रास्ता बन्द करना था। बाक़ी छोटे-मोटे मारके (युद्ध) या तो डाकुओं का सिर कुचलने के लिए थे, या सीमावर्ती झड़पों जैसे थे।

कमाल यह है कि लड़ाइयों में अम्न व रहमत का पैग़ाम देनेवाले नबी ने एक ओर ऐसे उपाय किए कि शत्रु के कम से कम व्यक्तियों की जानें जाएँ, दूसरी ओर लड़ाई के मैदान में भी श्रेष्ठ और उच्च आचार संहिता लागू करके दिखाया कि

ख़ुदापरस्तों के अंदाज़ क्या होते हैं। नौ साल की तमाम सामरिक कार्रवाइयों में दुश्मन के 759 व्यक्तियों की जानें गईं यानी लगभग 84 व्यक्ति प्रति वर्ष, और लड़ाइयों में मुसलमानों का कुल जानी नुक़सान 259 है। 8, 9 साल की मुद्दत में दो तरफ़ा लड़ाई में मरनेवालों की तादाद एक हज़ार अठारह है।

क्या दुनिया की, और मुख्य रूप से आज के सभ्य जगत की कोई क्रान्ति इतने कम जानी नुक़सान के साथ बड़े परिवर्तन की मिसाल पेश कर सकती है? इस कथित सभ्य संसार में तो क्रान्ति एक दैत्य की तरह आती है और हज़ारों इनसानों को अपना निवाला बनाती है, फिर क्रान्तिकारी सरकारें जब्र के सिंहासन पर बैठकर लोगों को बराबर क़त्ल करती रहती हैं, जेलों में डालती हैं, उनको अज़ाब देती हैं और वर्षों भय और आतंक का वातावरण छाया रहता है। इन ज़ालिमाना और ख़ूनी क्रान्तियों ने तो इनसान की प्रकृति को बिलकुल बिगाड़कर रख दिया है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की लाई हुई क्रान्ति की रहमत और बरकत को सामने रखकर जब हम दूसरे क्रान्तिकारी सिद्धांतों और दर्शनों को देखते हैं तो साफ़ लगता है कि वे बातिल (असत्य) के विभिन्न रूप हैं।

अत: नबी (सल्ल०) की सीरत के अध्ययन से हमारा मक़सद यह होना चाहिए कि हम हुज़ूर (सल्ल०) के सन्देश, हुज़ूर (सल्ल०) के ज़िक्र व इबादत, हुज़ूर (सल्ल०) के आचरण, हुज़ूर के संगठन, हुज़ूर (सल्ल०) के कारनामे, हुज़ूर (सल्ल०) की कार्य-पद्धति और हुज़ूर (सल्ल०) की कार्य-नीति को समझकर अपने आपको इस बात के लिए तैयार करें कि पहले हमारे अपने भीतर मुहम्मदी क्रान्ति की शुरुआत हो और फिर न हम सिर्फ़ अपने देश और समाज को, बल्कि सम्पूर्ण मानव-जाति को, मुहम्मदी क्रान्ति की बरकतों और सआदतों से लाभान्वित करें। हमारे लिए हक़ का रास्ता सिर्फ़ यह है कि हम हुज़ूर (सल्ल०) को अपने व्यक्तित्व और सामूहिक जीवन के लिए पेशवा रहनुमा, और आदर्श स्वीकार करें और किसी दूसरे दार्शनिक या क्रान्तिकारी या सुधारक या राजनीतिज्ञ या विधायक को अपना स्थाई रहनुमा बनाकर उनकी पैरवी न करने लगें, वरना पूरी ज़िंदगी ख़ुदा के यहाँ व्यर्थ व निरर्थक समझी जाएगी।

# जन्म, जवानी और विवाह

इससे पहले कि प्यारे नबी (सल्ल०) के जन्म की बात आए, यह समझना भी ज़रूरी है कि आपकी पैदाइश के समय दुनिया के हालात क्या थे। दुनिया में कितने हुक्मराँ और विजेता, दार्शनिक और मर्मज्ञ, उपदेशक और वक्ता, कितने ही धर्म-संस्थापक और चरित्र और नैतिकता की शिक्षा देनेवाले, समाज सुधारक और क़ानूनदाँ पैदा हुए। लीडर उठे, जिन्होंने जमाअतें और पार्टियाँ बनाईं, तूफ़ानी व्यक्तित्व उभरे, जिन्होंने तरह-तरह की क्रान्तियाँ कीं, हर एक इस दावे के साथ आया कि वह ज़िंदगी की सारी गुत्थियाँ सुलझा देगा, हर किसी को गुमान रहा कि वह मानवता को सुख-शांति, समृद्धि और बनाव की दौलत से मालामाल कर देगा, पर इन सारी कोशिशों को हम सरसरी, ऊपरी सामयिक और आंशिक रूप से असरअंदाज़ होता देखते हैं, फिर इन कोशिशों से कोई भलाई पैदा हुई तो उसके साथ बुराई ने भी सर उठाया, कभी नेकियाँ आईं, तो कुछ बुराइयाँ भी आगे बढ़ीं। हम जिधर भी देखते हैं, इतिहास में हक़-बातिल, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, हलाल-हराम के मिश्रण पाए जाते हैं। हाँ, एक नबियों का सिलसिला ऐसा है, जिनका हर व्यक्ति जब भी उठा, सिर्फ़ सच्चाई और नेकी और पूरी सच्चाई और नेकी को लेकर उठा। और यह विशेषता भी सिर्फ़ नबियों ही की है कि जिसने उनकी दावत क़बूल की, उसके भीतर से तबदीली पैदा हुई, फिर उसके निज के साथ-साथ उसके घर का माहौल, उसके कारोबार का रास्ता, उसकी आमदनी और ख़र्च का नक़्शा, विभिन्न लोगों के साथ उसका रवैया, सब कुछ बदल गया।

हुज़ूर (सल्ल०) ने जिस दौर में धरती पर पहली साँस ली, उस वक़्त पूरी मानवता अंधियारियों में डूबी हुई थी, कहीं असभ्यता का दौर चल रहा था। कहीं शिर्क की लानत छाई हुई थी, कहीं लड़ाइयों का सिलसिला छिड़ा हुआ था, मिस्र, भारत, बाबिल, नैनवा, चीन और यूनान में जो संस्कृति भी थी, वह अपनी तमाम रौशनियाँ खो चुकी थीं। कंफ़्यूशस और मानी की शिक्षा उलझ गई थी, वेदांत और बुद्धमत के विचार गुत्थी बन गए थे, जस्टेनन की संहिता और सोलन का क़ानून बेबस था, रूमी और ईरानी संस्कृतियों की ऊपरी चमक-दमक के बावजूद बादशाह ख़ुदा बने हुए थे। जागीरदार वर्गों और धार्मिक तत्त्वों की मिली-भगत क़ायम थी। जनता से भारी कर, रिश्वतें, टैक्स और नज़राने वुसूल किए जाते थे। उनसे जानवरों की तरह बेगारें ली जाती थीं। दोनों साम्राज्यों की आपस की लड़ाइयों में कभी इधर के लोग पिसते थे, कभी उधर के लोग कुचले जाते थे। उनकी कोई आवाज़ न थी। वे ज़ुल्म के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठा सकते थे।

उनकी समस्याओं का कोई हल न था। उनकी रूहें चीखती थीं, पर पुकार का कोई जवाब किसी ओर से न मिलता था।

ख़ुद अरब में आद व समूद के दौर में और सबा, अदन और यमन की हुकूमतों के साए में कभी सभ्यता ने अंगड़ाई ली थी, मगर अब इन तबाहशुदा क़ौमों की निशानियों पर सन्नाटा छाया हुआ था। लड़ाई-झगड़ा और लूट-मार का दौर-दौरा था। शराब, ज़िना और जुए से तैयार की हुई अज्ञानता भरी संस्कृति ज़ोरों पर थी। क़ुरैश ने बुतपरस्ती पर आधारित धार्मिकता के साथ काबे की मुजावरी का कारोबार चला रखा था। यहूदियों ने अल्लाह की किताब को घटा-बढ़ा करके बाल की खाल निकालने की प्रवृति की दुकानें चला रखी थीं, मक्का और तायफ़ के महाजनों ने सूद के जाल फैला रखे थे।

ये थीं संकटपूर्ण स्थितियाँ, जिनके तह दर तह अंधेरों के मुक़ाबले में क्रान्ति दूत मुहम्मद (सल्ल०) अकेले बहुत बड़ी तबदीली का पैग़ाम लेकर उठे। आपका जन्म मक्का नामी शहर में हुआ जो हज़रत इबराहीम (अलै०) का क़ायम किया हुआ तौहीद का मरकज़ था, जहाँ से एक बार फिर हज़रत इबराहीम (अलै०) की दुआ के मुताबिक़ दीने इबराहीमी का उभार ख़ुदा के आख़िरी नबी की मेहनतों से होनेवाला था।

हाथीवाली घटना के पचास-पचपन दिनों बाद रबीउल अव्वल सन् 52 हिजरत पूर्व में मानव-जाति के उद्धारक जनाब मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्ल०) का जन्म हुआ। तारीख़ में विभिन्न कैलेंडरों और उनके अंदल-बदल की वजह से मतभेद हुआ है। किताबों में दो तारीख़ों पर ज़्यादा ज़ोर है—एक 9 रबीउल अव्वल, सोमवार, दूसरी 12 रबीउल अव्वल। ईसवी कैलेंडरों के हिसाब से 20-21 अप्रैल 571 ई० का ज़माना क़रार पाता है। हुज़ूर (सल्ल०) के वालिद हज़रत अब्दुल्लाह और माँ हज़रत आमना थीं। आपकी पैदाइश पर सारा घर नूर से भर गया। आपके दादा अब्दुल मुत्तलिब आपको उठाकर ख़ाना काबा में ले गए और आपके लिए वहाँ दुआएँ करते रहे। दादा ने अपने एक शुभ सपने की रौशनी में मुहम्मद नाम रखा। फ़रमाया, "मैं चाहता हूँ कि मेरा पोता प्रशंसाएँ प्राप्त करे।" प्यारे नबी (सल्ल०) की माँ ने आपका नाम एक सच्चे ख़्वाब की रोशनी में 'अहमद' रखा। अत: ये दोनों नाम हुज़ूर (सल्ल०) के ज़ाती नाम हैं।

दादा ने सातवें दिन क़ुरबानी दी और तमाम क़ुरैश को दावत दी।

आप (सल्ल०) के वालिद हज़रत अब्दुल्लाह आपके पैदा होने से पहले ही वफ़ात पा चुके थे। हुज़ूर (सल्ल०) यतीमी की हालत में पैदा हुए। हज़रत अब्दुल्लाह का क़िस्सा यूँ हुआ कि आप हज़रत आमना के साथ निकाह होने के

बाद, रिवाज के मुताबिक़, ससुराल तशरीफ़ ले गए। वहाँ से व्यापार के लिए शाम (सीरिया) चले गए। वापसी पर मदीने में ठहरे, ताकि खजूरों का सौदा करें। यहीं आप बीमार हो गए। हज़रत अब्दुल मुत्तलिब को ज्यों ही पता चला, तुरन्त अपने बड़े बेटे को साथ लेकर रवाना हो गए। मदीना पहुँचकर मालूम हुआ कि जनाब अब्दुल्लाह एक माह बीमार रहकर इंतिक़ाल कर गए हैं और नाबग़ा के मकान में दफ़्न हैं।

पैदाइश के बाद तीन-चार महीने तक हुज़ूर (सल्ल०) की माँ ने आपको दूध पिलाया। फिर आपके चचा अबू लहब की आज़ाद की हुई लौंडी सौबियह के दूध पर परवरिश हुई। रिवाज यह था कि मक्का के शरीफ़ लोग अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए देहाती इलाक़ों में भेज देते थे, ताकि खुली जलवायु में पले-बढ़े। क़बीला बनू साद की औरतें साल में दो बार दूध पीते बच्चे लेने के लिए मक्का आया करती थीं। अबकी जो गिरोह आया, उसमें दाई हलीमा सादिया भी थीं। तमाम औरतों ने अच्छे खाते-पीते घरानों के बच्चे हासिल कर लिए, ताकि ज़्यादा इनाम हासिल कर सकें। प्यारे नबी (सल्ल०) चूँकि यतीम थे, इसलिए किसी औरत ने उस घर की ओर तवज्जोह न की। संयोग की बात कि हलीमा सादिया को कोई बच्चा न मिल सका और खाली हाथ जाना भी उनके लिए दुखद था, अतः वे मक्के के इसी यतीम बच्चे की ओर मायल हुईं।

बनू साद की औरतों का क़ाफ़िला जब मक्का से रवाना हुआ तो तमाम लोग हैरान रह गए कि हलीमा की मरयल-सी सवारी, जिससे मक्का आते हुए चला तक न जाता था, अब अपनी तेज़ रफ़्तारी की वजह से सबसे आगे-आगे थी, घर पहुँचने के बाद जल्द ही यह हैरतनाक तजुर्बा पेश आया कि दुबली-सी ऊँटनी और बकरियों के दूध में बढ़ोत्तरी हो गई और ख़ुद हलीमा सादिया का दूध भी इतना बढ़ा कि उसके अपने बच्चे और प्यारे नबी (सल्ल०) दोनों को काफ़ी हो जाता। घर में ख़ुशहाली, बरकत और सुकून का माहौल आम तौर से पैदा हो गया।

रिवाज के मुताबिक़ दो साल बाद हलीमा प्यारे नबी को वापस हज़रत आमना के पास ले गईं, पर बच्चे को जुदा करना उन्हें दिल से पसन्द न था, संयोग से मक्का में वबा (महामारी) फैली हुई थी, इस वजह से हज़रत आमना ने बच्चे को वापस भिजवा दिया। छः साल की उम्र में हुज़ूर (सल्ल०) अपनी माँ के पास लाए गए। आप (सल्ल०) की सेहत बहुत अच्छी थी, नैतिक उठान भी ख़ूब थीं। आप (सल्ल०) की भाषा से रस और सौंदर्य झलक रहा था।

कुछ ही दिनों बाद प्यारे नबी (सल्ल०) को उनकी माँ मदीना में बनू नज्जार

ख़ानदान के पास ले गईं जो प्यारे नबी (सल्ल०) के दादा अब्दुल मुत्तलिब के ननिहाली लोग थे। हज़रत आमना के सफ़र का मक़सद अपने पति की क़ब्र को देखना था। एक महीने तक मदीने में ठहरी रहीं। वापस मक्का आते हुए जब वे अबवा नामी जगह तक पहुँची, तो उनकी ज़िंदगी की मोहलत ख़त्म हो गई। वहीं दफ़्न कर दी गईं। उम्मे ऐमन प्यारे नबी (सल्ल०) को लेकर मक्का आईं। अब प्यारे नबी (सल्ल०) की देख-भाल और परवरिश की पूरी ज़िम्मेदारी हज़रत अब्दुल मुत्तलिब ने अपने ज़िम्मे ली। लेकिन अल्लाह की मंशा कुछ और थी, दो ही साल बाद हज़रत अब्दुल मुत्तलिब ने भी इंतिक़ाल फ़रमाया। अल्लाह की हिक्मत आपको बराबर सदमों से गुज़ारकर और सांसारिक सहारों से महरूम करके अपने कठिन काम के लिए तैयार कर रही थी। हज़रत अब्दुल मुत्तलिब ने मरते वक़्त अपने बहुत ही चहीते पोते को अबू तालिब के सुपुर्द कर दिया और हज़रत अबू तालिब ने देख-भाल और निगरानी का हक़ अदा कर दिखाया।

जवानी की सीमा में क़दम रखने तक यह अनोखा बच्चा आम बच्चों की तरह नट-खट और खिलाड़ी बनकर सामने नहीं आया, बल्कि सूझ-बूझवाले बूढ़े व्यक्तियों जैसी संजीदगी का मालिक नज़र आने लगा। जवान होता है तो इंतिहाई बिगाड़ भरे माहौल में पलने के बावजूद उसकी जवानी बेदाग़ और उसकी निगाहें बेऐब रहती हैं। इश्क़-आशिक़ी, नज़रबाज़ी और बदकारी जहाँ नौवजवानों के लिए बार्व योग्य कारनामे हों, वहाँ वह सपने में भी अपने विचारों को मैला नहीं होने देता। जहाँ गली-गली शराब तैयार करने की भट्टियाँ लगी थीं और घर-घर शराबख़ाने खुले थे और जहाँ अपनी पीने-पिलाने की चर्चाएँ सगर्व बयान की जाती थीं, वहाँ वह नौवजवान क़सम खाने को भी शराब की एक बूँद तक कभी अपनी ज़बान पर नहीं लेता। जहाँ जुआ राष्ट्रीय खेल बना चला आ रहा था, वहाँ इस साक्षात् पावनता ने कभी मोहरों को हाथ से छुआ तक नहीं। जहाँ क़िस्से-कहानी, नाच-रंग कल्चर का अंग बने हुए थे, वहाँ यह हस्ती हर प्रकार के खेल-तमाशे से दूर रही। दो बार ऐसे मौक़े पैदा हुए भी कि यह नौवजवान ऐसी मनोविहार की सभा में जा पहुँचा, लेकिन जाते ही ऐसी नींद छा गई कि इन तमाम चीज़ों से आप (सल्ल०) का दामन पाक रहा। जहाँ बुत ख़ुदा बने हुए थे, वहाँ इस पाकीज़ा मिज़ाज हस्ती ने अल्लाह के सिवाए किसी के सामने कभी सिर न झुकाया। एक बार बुतों के चढ़ावे का गोश्त पकाकर लाया गया तो उसने खाने से इनकार कर दिया। जहाँ इबराहीम की औलाद ने काबे का तवाफ़ निर्वस्त्र होकर करना शुरू कर दिया था, वहाँ यह नौवजवान कभी यह निवस्त्र नहीं हुआ। जहाँ लड़ाई और क़त्ल आए दिन के खेल थे, वहाँ मानवता के मान-सम्मान के इस

अलम्बरदार के दामन पर ख़ून की एक छींट भी न पड़ी। फ़िजार की लड़ाई में शिर्कत की, पर किसी इनसानी जान पर ख़ुद हाथ नहीं उठाया। उस पाकबाज़ और पाकदामन नौजवान की सच्ची दिलचस्पी का पता इस घटना से मिलता है कि भरी जवानी में वह अपनी सेवाएँ सम विचार के नौजवानों की एक सुधारप्रिय समिति के हवाले करता है, जो हिलफ़ुल फ़ज़ूल के नाम से ग़रीबों और मज़्लूमों की मदद और ज़ालिमों के ज़ुल्म को ख़त्म करने के लिए क़ायम हुई थी। इस मक़सद के लिए इन नौजवानों ने क़सम खाकर प्रण किया।

नबी बनने के कई साल बाद उसकी याद ताज़ा करते हुए प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "इस समझौते के मामले में अगर मुझको लाल रंग (बहुमूल्य) के ऊँट भी दिए जाते तो मैं उससे मुँह न मोड़ता।"—साथ ही यह भी कि—"आज भी ऐसे समझौते के लिए अगर कोई बुलाए तो मैं हाज़िर हूँ।"

इस नौजवान की रहनुमाई करनेवाली क्षमताओं का अन्दाज़ा इस घटना से लीजिए कि काबे की नई तामीर के मौक़े पर हजरे अस्वद (काला पत्थर) लगाने के मामले में झगड़ा हो गया, क्योंकि हर क़बीला यह चाहता था कि इस पत्थर को उठाकर वही लगाए। बात इतनी बढ़ गई कि तलवारें म्यानों से निकल आईं। क़ुदरत के इशारे से इस झगड़े को चुकाने का सौभाग्य इसी नौजवान के हिस्से में आता है। बड़े उत्तेजनापूर्ण वातावरण में सबको विश्वास में लेकर वह जज बनकर फ़ैसला करता है और एक चादर बिछाकर पत्थर को उसके बीच में रखकर तमाम क़बीलों के सरदारों को दावत देता है कि सब मिलकर उस चादर को उठाएँ। चादर जब मौक़े तक पहुँच जाती है तो वह प्यारा नौजवान हजरे अस्वद को उठाकर उसकी जगह पर लगा देता है। झगडा ख़त्म और तमाम चेहरों पर ख़ुशी और इतमीनान!

काबा के मुतवल्लियों और मुजाविरों के बीच पलने-बढ़नेवाला यह नौजवान चढ़ावों और नज़रानों से पेट पालने की राह नहीं निकालता, बल्कि व्यापार जैसा पाकीज़ा और इज़्ज़तवाला काम अपने हाथ में ले लेता है। पूँजी अपने पास नहीं है तो दूसरों की पूँजी से व्यापार करता है और दो बार यात्रा करके शाम (सीरिया) तक जाता है। साइब, क़ैस बिन साइब मख़ज़ूमी और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) और सारे लोगों को एक नौजवान की कारोबारी दयानत का जब तजुर्बा हुआ तो सबने अमानतदार तिजारत करनेवाले की उपाधि दे डाली। ख़ास तौर से हज़रत ख़दीजा को तो आपकी ओर से दयानत के साथ-साथ बरकत को देखने का मौक़ा मिला तो मक्का की धनी नेक महिला के दिल में आकर्षण बढ़ गया।

फिर यह नौजवान जब जीवन संगिनी को चुनता है तो मक्का की नव-उम्र,

शोख़-चंचल लड़कियों पर ज़रा भी निगाह डाले बिना ज़्यादा उम्र की एक विधवा महिला हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को पसन्द करता है। पसन्द की कसौटी यह है कि वह ख़ानदान के लिहाज़ से भी और निजी चरित्र व आचरण की दृष्टि से भी अति उच्च और श्रेष्ठ महिला हैं। उनकी उपाधि 'ताहिरा' थी। यह चुनाव गवाही देता है कि उस नौजवान में हवस नाम की कोई चीज़ थी ही नहीं।

फिर यह अपूर्व नौजवान घर-बार की देख-भाल, व्यापार और सांसारिक मामलों की अनेकानेक व्यस्तताओं से फ़ारिग़ होकर जब कोई फ़ुर्सत का वक़्त निकालता है तो उसे मनोविहार या ऐश के कामों में नहीं बिताता, अवारागर्दी नापने में और गप्पें लड़ाने में क़ोई क्षण नहीं गँवाता, बल्कि सारे झमेलों से अलग होकर हिरा नामी गुफा की तनहाइयों में एक ख़ुदा की इबादत करता है, सृष्टि की वास्तविकताओं और इनसानी ज़िंदगी के बनाव-बिगाड़ पर विचार करता है और अपनी क़ौम और पूरी मानवता को ज़िल्लत के गढ़े से निकालने की तदबीरें सोचता है। रिवायतें बताती हैं कि प्यारे नबी (सल्ल०) कई-कई दिन के लिए सत्तू और पानी लेकर गुफा में जा बैठते और चिंतन-मनन में लग जाते। चार गज़ लम्बी और पौने दो गज़ चौड़ाई की यह गुफा मक्का से तीन मील की दूरी पर आज भी मौजूद है।

# नुबुव्वत के मंसब पर !

एक दिन ऐसा हुआ कि आप हिरा की गुफा में इबादत कर रहे थे, रबीउल अव्वल का महीना था और उसकी 9 तारीख़। यकायक एक फ़रिश्ता ज़ाहिर हुआ, यह हज़रत जिबरील (अलै०) थे। जिबरील ने प्यारे नबी (सल्ल०) को सम्बोधित करके कहा,

"मुहम्मद ! आप शुभ-सूचना स्वीकार कीजिए। आप अल्लाह के रसूल हैं और मैं जिब्रील हूँ।"

यह पहला परिचय था।

वह्य के बाक़ायदा आने और क़ुरआन के उतरने की शुरुआत 6 महीने बाद हुई। उस दिन जिब्रील (अलै०) ने पास आकर कहा, 'पढ़ो' (इक़रअ्)। आपने फ़रमाया, "मैं पढ़ना नहीं जानता।" इसपर हज़रत जिब्रील (अलै०) ने आपको साथ लगाकर ज़ोर से भींचा, फिर कहा कि 'पढ़ो', आपने फिर वही जवाब दिया। जिबरील (अलै०) ने फिर भींचा। हुज़ूर (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि मेरी सहन-शक्ति जवाब देने लगी। ग़रज़ यह कि तीसरी बार जिबरील ने सूरा अलक़ का शुरू का हिस्सा पढ़ा। हुज़ूर (सल्ल०) साथ-साथ पढ़ते गए।

**'इक़रअ बिसमि रब्बिकल्लज़ी ख़-लक़ ख़-ल-क़ल इनसा-न मिन अ-लक़। इक़्रअ व रब्बुकल अक्रमुल्लज़ी अल-ल-म बिल क़-लम। अल्लमल इंसा-न मालम यअलम।** सूरह —क़ुरआन, 96 : 1-5

"अपने रब के नाम से पढ़, जिसने (सब कुछ) पैदा किया। इनसान को जमे हुए ख़ून से पैदा किया। पढ़, और तेरा रब बड़ी शानवाला है, जिसने क़लम के ज़रिए (ज्ञान) सिखाया और इनसान को वह कुछ सिखाया जिसे वह नहीं जानता था।"

यूँ नुबुव्वत की सुबह चमकी। सूरा अलक़ की ये आयतें वह्य के नूर की पहली किरणें थीं। उस दिन प्यारे नबी (सल्ल०) की उम्र 40 साल 6 माह 10 दिन थी और थी रमज़ान सन् 01 मीलादी की 18वीं तारीख़।

क्रान्ति-दूत प्यारे नबी (सल्ल०) के बारे में रिवायतें बताती हैं कि नबी की ज़िम्मेदारियाँ सौंपे जाने से सात साल पहले ही से आपको सच्चे सपने आने लगे थे। जो कुछ सपने में देखते, ठीक वही कुछ घटित हो जाता। कभी एक रौशनी निगाहों के सामने आ जाती, कभी रास्ता चलते-चलते किसी पेड़ से नाम पुकारकर 'अस्सलामुअलैकुम' कहने की आवाज़ आती। यह सब कुछ इसलिए था कि

आपको आनेवाले माहौल से मानूस किया जाए।

इसके बावजूद जिबरील (अलै०) के सामने आने और नुबुव्वत की ज़िम्मेदारी ख़ुदा की ओर से सौंपने और साथ लगाकर हुज़ूर (सल्ल०) को भींचने की घटनाओं से आप पर एक विचित्र मनोदशा छा गई। तुरन्त हिरा की गुफा से घर तशरीफ़ लाए, आप पर मानो ख़ुदा के जलाल का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, आते ही हज़रत ख़दीजा से फ़रमाया कि मुझे कुछ ओढ़ा दो। तबीयत की बेचैनी जब कुछ कम हुई तो अपनी नेक बीवी को बताया कि मैं ऐसी घटनाओं से दोचार हो रहा हूँ कि मुझे अपनी जान का ख़तरा है, आख़िर यह मुझे क्या हो गया है? हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने तसल्ली दी कि आप कोई डर न महसूस करें। मुझे मालूम है कि आप मुसीबत के मारों के हमदर्द, बेसहारों के सहारा हैं, रिश्ते-नातेदारों से स्नेह भरा बरताव करते हैं, हमेशा सच बोलते हैं, मेहमानी करते हैं, विधवाओं और यतीमों पर दया करते हैं, ख़ुदा कभी आपको दुख और ग़म में न डालेगा।

लेकिन ख़ुद हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) भी पूरी बात मालूम होने पर दिल ही दिल में चिंतित हो गईं, और अपने इतमीनान के लिए आपको साथ लेकर अपने चचेरे भाई वरक़ा बिन नौफ़ल के पास पहुँचीं। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने बात छेड़ी और हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी पूरी कहानी बयान कर दी। वरक़ा बिन नौफ़ल ने ईसाई धर्म क़बूल कर लिया था। वह आलिम था और पिछले धार्मिक लेखों का अध्ययन करता रहता था। बात सुनते ही उसने कहा, "यह वही 'नामूसे अक्बर' है, जो मूसा (अलै०) पर उतरा था। काश, मैं जवान होता और उस वक़्त तक ज़िंदा रहता, जब आपकी क़ौम आपको यहाँ से निकाल देगी!"

यह सुनकर हुज़ूर (सल्ल०) ने वरक़ा बिन नौफ़ल से पूछा, "क्या क़ौम मुझे निकाल देगी?" वरक़ा ने जवाब दिया, "हाँ, इस दुनिया में जिस किसी ने ऐसी तालीम पेश की और भटकनेवालों को सीधे रास्ते पर लाना चाहा, उसका विरोध होता रहा है। काश, आपकी हिज़रत तक मैं ज़िन्दा रहूँ और आपकी कोई सेवा कर सकूँ!

क़ुरआन उतरने के साथ ही ज़िबरीले अमीन ने प्यारे नबी (सल्ल०) को वुज़ू करके नमाज़ पढ़ना सिखाया। पहले जिब्रील (अलै०) ने वुज़ू करके दिखाया, फिर प्यारे नबी (सल्ल०) ने इसी तरीक़े से वुज़ू किया। हज़रत जिबरील (अलै०) ने दो रक्अत नमाज़ पढ़ाई और हुज़ूर (सल्ल०) ने पैरवी की। इस मौक़े पर सिर्फ़ दो रक्अत फ़ज्र की और दो रक्अत अस्र की नमाज़ों को फ़र्ज़ किया गया, मानो नमाज़ इस्लाम की पहली निशानी और इस्लाम का पहला फ़रीज़ा क़रार पाया।

प्यारे नबी (सल्ल०) घर तशरीफ़ लाए तो सबसे पहले इस्लाम की दावत

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को दी। उन्होंने इस्लाम क़बूल किया और इस सआदत में उनका पहला नम्बर है। जुमा के दिन प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने पहली नमाज़ अदा की। दूसरे दिन हज़रत अली (रज़ि०) दस साल की उम्र में इस्लाम लाए, फिर हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने बचपन के दोस्त हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ को दावत दी। बालिग़ मर्दों में हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) को यह प्रमुखता प्राप्त है कि दूसरों ने कुछ न कुछ तो झिझक दिखाई, पर हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) ने किसी झिझक के बिना तुरन्त ही मान लिया। उनके साथ ही प्यारे नबी (सल्ल०) के ग़ुलाम ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) इस्लाम में दाख़िल हो गए, मानो औरतों में सबसे पहले हज़रत ख़दीजा (रज़ि०), आज़ाद बालिग़ मर्दों में हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०), लड़कों में हज़रत अली (रज़ि०) और ग़ुलामों में हज़रत ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) ने सबसे पहले इस्लाम अपनाने का पद प्राप्त किया।

यह भी प्यारे नबी (सल्ल०) के सच्चे होने और इस्लाम के हक़ होने की दलील है कि आपकी दावत को सबसे पहले क़रीब से जाननेवाले चार व्यक्तियों ने स्वीकार किया। अगर किसी व्यक्ति में या उसके पैग़ाम में कोई खोट या मैल होता है, या जहाँ सिर्फ़ स्वांग रचाया जा रहा होता है, वहाँ घर के लोग और क़रीब से देखनेवाले व्यक्ति सब कुछ समझने की वजह से एक तो साथ देते ही नहीं और अगर ज़ाहिर में दे भी दें तो वे संजीदा नहीं होते, आगे-पीछे एक-दूसरे का उपहास करते रहते हैं।

मुहम्मदी जमाअत या क़ुरआनी शब्दों में हिज़बुल्लाह या नई भाषा में दीने हक़ को ग़ालिब करनेवाले आन्दोलन को जिन मुबारक हस्तियों ने अपनी पूरी सेवाएँ प्रस्तुत कर दीं, उनमें एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसकी माली हैसियत मज़बूत थी, मक्के में कपड़े का कारोबार था। अज्ञानता युग ही से अपने विचारों, अपने अच्छे चरित्र और अपनी सच्चाई और दयानत की वजह से अरब की इस केन्द्रीय आबादी में जिसे प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह थे हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०), जिनके माल और जिनकी बुद्धिमत्ता और जिनके असर व रुसूख़ से इस्लाम के ग़लबे के आन्दोलन को बहुत लाभ पहुँचा। साथ ही प्यारे नबी (सल्ल०) के इन पुराने दोस्त की निजी तबलीग़ से हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०), हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) हज़रत तलहा और हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) मुसलमान हुए।

प्यारे नबी (सल्ल०) का ख़ामोश प्रचार नेक दिल और भली तबीयतवाले लोगों को छाँट-छाँटकर इस तरह खींच रहा था, जैसे चुम्बक लौहकणों को अपने साथ चिमटा लेता है। अम्मार आए, ख़ब्बाब बिन अल अरत्त आए, अबू उबैदा

आए, सईद बिन ज़ैद आए, उबैदा और जाफ़र बिन अबू तालिब आए, अब्दुल्लाह बिन मसऊद और अबू सलमा आए, उसमान बिन मज़ऊन और सुहैब रूमी आए। (रिज़्वानुल्लाहि अलैहिम अजमईन), यहाँ तक कि हज़रत अरक़म ने भी दावते हक़ की रौशनी के लिए सीना खोल दिया। यह वह मुबारक हस्ती है जिनका घर ख़ामोश प्रचार के दौर में क्रान्ति-दूत और आप (सल्ल०) के साथियों का सेंटर था।

इधर औरतों में हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत अब्बास (रज़ि०) की बीवी लुबाबा बिन्त हारिस (रज़ि०) और हज़रत अस्मा बिन्त अबू बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर की बहन फ़ातिमा बिन्त ख़त्ताब ने इस्लाम के दरबार में सर झुका दिया।

पहले मरहले में मुहम्मद (सल्ल०) की दावत को अपनानेवाले मर्दों-औरतों को "अस्साबिक़ूनल अव्वलून" कहते हैं। ये वह हस्तियाँ थीं जिनके सामने दावत की कामयाबी की गवाहियाँ मौजूद न थीं, जिन्हें किसी फ़ायदे के मिलने की आशा न थी, बल्कि उल्टा वे मुशकिलों और मुसीबतों के दौर को सामने देख रहे थे। इन शुरू के लोगों ने हक़ की दावत को सिर्फ़ हक़ होने की वजह से क़बूल किया और प्यारे नबी (सल्ल०) को सिर्फ़ आपकी निष्ठा, चरित्र और वह्य-वाणी की शैली से पहली ही नज़र में पहचान लिया। ये वह मुबारक हस्तियाँ थीं जिन्होंने न बेजा कठ-हुज्जती की, न लम्बी-चौड़ी बहसें उठाईं, न किसी मानसिक संघर्ष में फँसे, बल्कि ये अज्ञानता-युग की अँधियारियों में अपने-अपने दर्जे में उज्जवल चरित्र रखते थे। ये अज्ञानता के गन्दे-सड़े माहौल के क़फ़स (पिंजड़े) को तोड़कर निकलने के लिए अपने भीतर ना-मालूम भावनाओं की बिजलियाँ छिपाए हुए थे। इन मर्दों और औरतों को ज्यों ही एक ऐसी आवाज़ सुनाई दी, जिसे सुनकर उन्होंने महसूस किया कि मानो यह भी हमारे दिलों में हैं और साथ ही पुकारनेवाले पर निगाह डाली और उसे सच्चा और अमानतदार पाया, तो तुरन्त लब्बैक कहा।

किसी समाज में सच्चाई और नेकी और सुधार व निर्माण पर जो लोग पहले-पहले लब्बैक कहते हैं, वही समाज के सार होते हैं। ख़ुद यह बात प्यारे नबी (सल्ल०) की सच्चाई की एक गवाही है कि सबसे पहले असर लेनेवाली हस्तियाँ मानसिक और नैतिक दृष्टि से आम स्तर से उच्चतर थीं।

हर दौर में, हर दर्जा व सतह पर और हर काम के लिए साबिक़ूनल अव्वलून होते हैं और सच्चे दीन का झंडा ऊँचा रखने के लिए जो लोग पहली पंक्ति में जगह पा लेते हैं, उनको आख़िरत में भी सबसे आगे जगह मिलती है—जैसा कि क़ुरआन मजीद में कहा गया है कि 'अस्साबिक़ूनस्साबिक़ून', इसे हिन्दी में यूँ

कहेंगे कि आगेवालों की बात क्या है, वे तो हैं ही आगेवाले !

सूरा अलक़ के एक अर्से बाद सूरा अल-मुद्दस्सिर की शुरू की आयतें उतरीं। जिनमें छोटे-छोटे वाक्यों में संक्षिप्त पर सर्वांगीण आदेश दिए गए, जैसे 'उठो और डराओ', यानी लोगों को गुमराही के बुरे अंजाम से डराओ। 'अपने कपड़े पाक-साफ़ रखो', यानी जिस ख़ुदा पर ईमान लाकर उसके दीन का प्रचार करनेवालों को शोभा नहीं देता कि वे रातिबों की तरह गन्दगी में पड़े रहें। 'बुतों से विमुख हो जाओ', 'ज़्यादा फ़ायदा उठाने की नीयत से एहसान न करो', 'अपने रब के लिए सब्र करो' यानी उसके दीन को ग़ालिब करने की जद्दोजेहद में सब्र अपनाओ। सब्र इस अर्थ में कि जो भी तकलीफ़ और नुक़सान इस राह में पेश आए, उसे हौसले से सहन करो और सब्र इस अर्थ में भी कि सच्चे दीन के नियमों और सिद्धान्तों पर, उसके उद्देश्यों पर और उसके ख़िलाफ़ धमकियों और प्रलोभनों के बावजूद डटे रहो। सच्चे दीन के नक़्शे में मस्लहत के तहत तब्दीलियाँ न पैदा करो।

मक्का के शुरू के दौर में क़ुरआन का जो थोड़ा-सा हिस्सा उतरा, उसमें जहाँ एक ख़ूबी यह थी कि प्रचलित साहित्य काव्य और वक्तृत्व कला के तमाम स्तरों को उसने पीछे छोड़ दिया, वहाँ दूसरी आकर्षक बात यह थी कि क़ुरआन की पुकार अज्ञानता के बे-तुके और भौंडे जीवन के लम्बे, निष्क्रिय दौर से उकताई हुई तबीयतों के सामने सोचने और अमल करने की नई राहें खोल रही थीं, फिर ख़ुदा के एक होने और उसके अधिकारों और गुणों पर क़ुरआनी आयतों में जो ज़ोरदार दलीलें मौजूद थीं और उसके साथ एक ग़ैरमहसूस-सी मानसिक अपील शामिल थी। वह किसी भी सुननेवाले को एक बार पूरी तरह मुतवज्जह कर लेती थी, साथ ही यह भी कि क़ुरआन ने आख़िरत फ़रामोश लोगों के सामने मौत के बाद की ज़िंदगी का नक़्शा अति प्रभावी ढंग से इस तरह खींचा और जज़ा व सज़ा के ऐसे बिम्ब लोगों के सामने ला खड़े किए कि नेक दिल लोगों के मन सिहर उठते थे।

दावत देनेवाला बे-दाग़ व्यक्तित्व प्यारे नबी (सल्ल०) का और वर्णन-शैली क़ुरआन की, वातावरण में छिपी रह भी कैसे सकती थी। जो लोग इस आसमानी पैग़ाम को सुन लेते, उनके दिलों में ज्वार-भाटा जैसी स्थिति पैदा हो जाती, उनके विचारों की दुनिया उथल-पुथल हो जाती, वे मानसिक संघर्ष से दो-चार हो जाते और चैन उस वक़्त तक न आता, जब तक प्यारे नबी (सल्ल०) के हाथ पर बैअत न कर लेते।

इस दौर में सारा ज़ोर इंसानों की बुनियादी सोच को बदलने और ज़िंदगियों की बुनियाद—नए अक़ीदों—को बनाने पर था। यानी सृष्टि की नई धारणा,

जीवन की नई धारणा, इंसान की नई धारणा, नैतिकता की नई धारणा, संस्कृति की नई धारणा।

ख़ुफ़िया दावत के इस दौर में सिर्फ़ भरोसेमंद और भले स्वभाव के व्यक्तियों से संपर्क पैदा किया जाता। जो लोग प्यारे नबी (सल्ल०) के पैग़ाम को क़ुबूल करके मुहम्मदी जमाअत में दाख़िल हो जाते, वे प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ किसी पहाड़ की घाटी में जाकर छिपकर नमाज़ अदा करते। संयोग कि एक बार अबू तालिब का उधर से गुज़र हुआ और उन्होंने नमाज़ का मंज़र देख लिया। नमाज़ के बाद भतीजे से पूछा—

"यह कौन-सा दीन है?"

प्यारे नबी ने फ़रमाया, "यह हमारे दादा इबराहीम (अलै०) का दीन है।"

अबू तालिब बोले, "ख़ैर, मैं इसे तो नहीं अपना सकता, लेकिन तुमको इजाज़त है। कोई व्यक्ति तुम्हें न रोक सकेगा।"

फिर एक दिन ऐसा हुआ कि प्यारे नबी (सल्ल०) और आपके कुछ साथियों को मुशरिकों ने घाटी में नमाज़ अदा करते देख लिया। पहले हैरान हुए, फिर बुरा भी कहा, फब्तियाँ कसने लगे, कोई जवाब न मिला तो लड़ने पर उतर आए। इस दंगे में एक मुशरिकों की तलवार से हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) घायल हो गए और ख़ून बहने लगा। यह ख़ून की पहली धार थी, जिसने मुहम्मदी क्रान्ति की राह में ज़मीन को रंगीन किया। ग़नीमत हुआ कि प्यारे नबी (सल्ल०) और तमाम साथियों की जानें मुशरिकों की जुनूनी प्रतिक्रिया से बच गईं।

# इस्लाम के आह्वान का विरोध

इस्लाम के प्रचार के ख़ुफ़िया दौर में भी अगरचे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की क्रान्ति व आंदोलन की सुनगुन मुशरिकों को थी, क्योंकि दो-एक घटनाओं ने उसकी चर्चा फैला दी थी, पर वे यह समझकर मन में संतुष्ट थे कि इस्लाम के माननेवालों में कोई भी उनकी पंक्तियों का बड़ा नेता न था जो धार्मिक और राष्ट्रीय पदों पर आसीन हो। वे समझते थे कि यह कुछ नौजवानों का सिरफिरापन है, चार दिन में दिमाग़ों से हवा निकल जाएगी। हमारे सामने कौन दम मार सकता है? फिर क़ुरैश का अक़ीदा यह भी था कि लात-मनात, उज़्ज़ा और हुबल और दूसरे बुत जिनके आगे हम माथे रगड़ते हैं और चढ़ावे पेश करते हैं, हमारे इन देवी-देवताओं की मार इनपर ऐसी पड़ेगी (ख़ुदा की पनाह) कि सारा हंगामा ख़त्म हो जाएगा।

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) भी इस्लामी आंदोलन के ख़ुफ़िया दौर ही में ईमान लाए। आपकी क्रम संख्या छठीं या सातवीं है। यह भी उन बेचैन लोगों में थे जो बुतपरस्ती से किनारा करके अपने स्वभाव की रहनुमाई में ख़ुदा का ज़िक्र और उसकी इबादत करते। उन तक प्यारे नबी (सल्ल०) की दावत पहुँची। उन्होंने भाई के ज़रिए हालात मालूम कराए। भाई ने प्यारे नबी (सल्ल०) से आकर मुलाक़ात की, क़ुरआन सुना और जो हालात मालूम हुए उनका सार हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से यूँ बयान किया कि लोग उस व्यक्ति को विधर्मी कहते हैं, लेकिन वह श्रेष्ठ चरित्र की शिक्षा देता है, वह विचित्र वाणी सुनाता है जो काव्य से भिन्न है, उसके तौर-तरीक़े इस तरह के हैं, जैसे तुम्हारी पसंद है। यह सूचना पाकर हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) आए और प्यारे नबी (सल्ल०) के हाथ पर इस्लाम क़बूल कर लिया। आदमी जोशीले थे। हरम में जाकर इस्लाम का एलान किया और मार खाई।

दावत का यह दौर तीन साल तक जारी रहा।

लेकिन अल्लाह की मंशा हालात के समुद्र को इस तरह जमा हुआ और बिना उथल-पुथल के कहाँ रहने देती है, ख़ुदा की सुन्नत यह है कि "वह असत्य के ख़िलाफ़ मोर्चा लगाने के लिए सत्य को उठा खड़ा करती है।"

यकायकी दावत के दूसरे दौर की शुरुआत का हुक्म उतरा कि "जो कुछ हुक्म दिया जा रहा है, उसे खोलकर एलानिया सुना दीजिए।"

ख़ुदा की ओर से नियुक्त किए गए पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अपनी पूरी ताक़त समेटकर सुबह-सुबह सफ़ा की पहाड़ी पर जा खड़े हुए और समाज के

प्रचलित तरीके के मुताबिक़ ख़तरे का एलान किया, ऊँची आवाज़ से पुकारा 'वा सबाहाह' (हाय सुबह की मुसीबत !)। रिवाज यह था कि इस तरह की पुकार लोग सुनकर सब काम छोड़-छाड़कर पुकारनेवाले के पास जा जमा होते, ताकि ख़तरे का मुक़ाबला करें। मक्का के लोग भी सफ़ा की पहाड़ी के पास जा जमा हुए और फिर मुतवजोह हो गए कि न जाने क्या सूचना मिलनेवाली है।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने ऊँची आवाज़ से पूछा, "क्या तुम मुझपर भरोसा करते हो?" जवाब मिला, "हाँ, क्यों नहीं?" फिर पूछा, "अगर मैं यह कहूँ कि इस पहाड़ी के पीछे से एक हमलावर फ़ौज आ रही है, तो क्या मान लोगे?" सबने कहा, "क्यों नहीं? हमने हमेशा तुम्हें सच बोलते हुए पाया है।" तब प्यारे नबी सल्ल०ने फ़रमाया, "तो फिर मैं यह कहता हूँ कि खुदा पर ईमान लाओ, ऐ बनू अब्दुल मुत्तलिब ! ऐ बनू अब्द मनाफ़ ! ऐ बनू जोहरा ! ऐ बनू तमीम ! ऐ बनू मख़ज़ूम ! ऐ बनू असद ! वरना तुमपर कड़ा अज़ाब आ जाएगा।" यानी कोई ज़ाहिर फ़ौज़ हमला करनेवाली नहीं। मशीयत की अन्दरूनी ताक़तें लड़ाई का एलान करने वाली हैं। आपका चचा अबू लहब यह सुनकर गुस्से से कहने लगा, "ग़ारत हो जाओ तुम आज ही के दिन। क्या यही बात थी जिसके लिए तुमने हमें यहाँ बुलाया !" तमाम लोग बहुत गुस्सा होकर चले गए।

दीने इस्लाम की इनसाफ़ और रहमत की व्यवस्था की दावत देनेवाले ने दूसरा क़दम यह उठाया कि पूरे अब्दुल मुत्तलिब परिवार को खाने पर बुलवाया। इस सभा में हज़रत हमज़ा, हज़रत अब्बास और अबू तालिब जैसे मुख्य व्यक्ति मौजूद थे। खाने के बाद आपने संक्षेप में भाषण दिया। फ़रमाया, "जिस पैग़ाम को लेकर मैं आया हूँ, यह दीन और दुनिया दोनों की कामियाबी की ज़मानत देता है। कौन इस मुहिम में मेरा साथ देता है?" जवाब में सिर्फ़ हज़रत अली, जिनकी उम्र 13 वर्ष हो चुकी थी, उठे और कहा कि 'मैं साथ दूँगा।' इसपर सभा में ख़ूब ठहाका पड़ा, मानो अब्दुल मुत्तलिब का ख़ानदान यह कह रहा था कि यह दावत और दावत देनेवाला और यह लब्बैक कहनेवाला कौन-सा कारनामा अंजाम दे लेंगे। यह तो एक खेल और उपहास मालूम होता है।

अब तक मुहम्मदी जमाअत में इस्लामी कलिमा की सर-बुलंदी के लिए लगभग 40 व्यक्ति शामिल हो चुके थे। यह एक महान शक्ति बन चुकी थी। खुलेआम दावत देने के ख़ुदाई फ़रमान को पूरा करने में एक दिन प्यारे नबी (सल्ल०) ने काबा के हरम में खड़े होकर तौहीद का एलान किया। मुशरिकों ने शोर मचा दिया कि काबा की तौहीन हो गई है और विफरकर चारों ओर से दौड़ पड़े। हंगामा मच गया। तौहीद की दावत देनेवाला घेरे में आ गया। शोर-हंगामा

सुनकर हारिस बिन अबी हाला, उम्मे हाला के घर से प्यारे नबी (सल्ल०) को बचाने के लिए लपके। हर ओर से तलवारें उनपर ऐसी पड़ीं कि शहीद हो गए। ख़ुदा की राह में यह था पहला शहीद, जिसके ख़ून से आनेवाले हिंसा के दौर के अध्याय की लाली इतिहास में लग गई।

बहरहाल अब ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) ने गली-गली जाकर एक-एक व्यक्ति तक अपनी बात पहुँचाने का सिलसिला शुरू कर दिया। ख़ुदा की हस्ती की ओर बुलाते, तौहीद का सबक़ देते; शिर्क के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते; बुतों, पत्थरों, पेड़ों और जिन्नों की पूजा से रोकते, बेटियों को ज़िन्दा दफ़न कर देने से हटाते, ज़िना, जुए और शराब की बुराई बताते, फिर कभी मेलों या मजमों में 'वाज़' कहते हुए लोगों को बताते कि मनको बुरे विचारों से, ज़बान की गंदी बातों से और देह और पहनावे को मैल-कुचैल से पाक रखें। उपदेश देते कि सिर्फ़ अल्लाह ही तमाम दुनिया का पैदा करनेवाला है। सूरज, चाँद, सितारे, इनसान सब उसी के पैदा किए हुए और मुहताज हैं। दुआएँ क़बूल करनेवाला, रोज़ी, सेहत और औलाद देनेवाला और मुरादें पूरी करनेवाला तनहा अल्लाह है। फ़रिश्ते और नबी भी उसके हुक्मों के अधीन हैं। मरने के बाद हर व्यक्ति को अपनी ज़िंदगी का हिसाब उसके सामने पेश करना है और वह कामों के मुताबिक़ इनाम और सज़ा देगा—किसी को जन्नत और किसी को जहन्नम।

माहौल इस दावत को आसानी से कैसे सहन कर सकता था, जिसके नतीजे में शिर्क भरी व्यवस्था का सारा गठजोड़ टूटता दिखाई दे रहा था। मज़हबी ठेकेदारों की फ़ीसें और मुजावरी के नज़राने और सारे क़बीलों में फैले हुए ओहदे, सरदारों की सरदारियाँ और अरब प्रायद्वीप की आबादियों पर क़ुरैश की ख़ास धौंस, यह सब कुछ ख़त्म होने का ख़तरा सामने था।

विरोधियों की ओर से पहली प्रतिक्रिया फ़ब्तियों, छींटा-कशियों और गालियों से हुई। खरी सच्चाई का मुक़ाबला करने के लिए असत्य का पूरा शस्त्रागार तर्क के हथियारों से ख़ाली था।

कहा जाने लगा कि इस आदमी की बात न सुनो, यह साबी (विधर्मी) है। बाप-दादा के धर्म को छोड़ बैठा है। जहाँ क़ुरआन पढ़ा जाए, ख़ूब शोर मचाओ, सीटियाँ बजाओ, तालियाँ पीटो, वरना ईमान ख़राब हो जाने का ख़तरा है। हाय, रे ईमानवाला! क्या मज़बूत ईमान था तुम्हारा कि दूसरे की बात सुनते ही वह चूर-चूर हो जाता।

फिर आपके लिए इब्ने अबी कबशा की उपाधि तजवीज हुई। अबू कबशा एक बदनाम व्यक्ति था। आपको उसका बेटा या पैरवी करनेवाला कहा जाने

लगा। फिर कहा गया कि यह आदमी तो दीवाना हो गया है, इसपर बुतों की मार पड़ी है, दौरे पड़ते हैं तो झूठ-मूठ के फ़िरिश्ते नज़र आने लगते हैं। क़ुरआन की गवाही तो यह है कि कुछ ने आपके मुँह के सामने भी आपको कहा कि 'ऐ व्यक्ति ! तू मजनूँ है।' फिर जादूगरी का आरोप लगाया गया कि इसकी ज़बान से दो शब्द सुनते ही लोगों पर जादू हो जाता है। कभी कहा जाता है कि अजी ! क्या है ? बस काव्य है, साहित्यिक शब्दों का ज़ोर है, मुहम्मद (सल्ल०) पहले दर्जे के आर्टिस्ट हैं, कलापूर्ण वक्ता हैं, इस आर्ट से कच्चे ज़ेहन के लोग बहक जाते हैं, कहानत का आरोप भी लगाया गया कि यह तो वही कार्य है, जैसे काहिन लोग चिल्लों, वज़ीफ़ों और मुराक़बों (ध्यान) में लगे रहते हैं, फ़ाल निकालते हैं और एक तकनीकी मजज़ूब की भाषा में ग़ैब (परोक्ष) के भेद खोलते हैं, मुहम्मद ने भी ऐसा ही ढकोसला बना रखा है। ऐसी बातों का ज़िक्र और जवाब क़ुरआन में साथ के साथ दिया जाता रहा।

नबी के दुश्मनों ने यह फ़ित्ना भी खड़ा किया कि कोई जिन्न आकर नबी साहब को पढ़ा-लिखा जाता है। दूसरी ओर यह शगूफ़ा भी छोड़ा कि यमामा में कोई व्यक्ति 'अर-रहमान' नाम का है, वह आकर ख़ुफ़िया तौर पर सारी बातें नोट करा जाता है। तीसरी बात यह कहते कि कोई अजमी (ग़ै अरबी) उस्ताद है, जो बाक़ायदा तालीम देता है, ख़ुलासा यह कि कोई बाहरी शक्ति हस्तक्षेप कर रही है और मुहम्मद (सल्ल०) तो सिर्फ़ इस्तेमाल हो रहे हैं।

असत्य जब सत्य के मुक़ाबले पर आता है तो सत्य की ओर से एक मामले में एक ही बात कही जाती है, लेकिन असत्य नित नई बातें गढ़ता है, यहाँ तक कि इनमें से कुछ बिलकुल एक दूसरे से टकराती हैं, जैसे यह चर्चा होने लगी कि मुहम्मदी शिक्षा क्या है ? बस पुराने लोगों के क़िस्से-कहानियाँ हैं, ज़माना कहाँ आ पहुँचा और आज की समस्याएँ कुछ की कुछ हो गई हैं। दूसरे शब्दों में यह सब रूढ़िवाद और कट्टरपंथ था। मक्का के मुशरिक वास्तव में बड़े तरक़्क़ीपसन्द थे, लेकिन इसके उलट दूसरी ओर वे यह आपत्ति भी करते कि देखो जी, बाप-दादा और बुज़ुर्गों के सारे तरीक़े छोड़-छाड़कर नई बातें गढ़ी जा रही हैं। भला यह भी कोई बुद्धि में आनेवाली बातें हैं कि एक ख़ुदा सारा इन्तिज़ाम चला रहा है और मरने के बाद जब हम मिट्टी हो जाएँगे तो दोबारा ज़िंदा किए जाएँगे।

क़ुरैश के सरदारों ने एक और चाल चली। मक्का के कवियों का एक मोर्चा बनाया और अबू सूफ़ियान बिन हर्स, अम्र बिन आस और अब्दुल्लाह बिन ज़िबारा को नियुक्त किया कि वे प्यारे नबी (सल्ल०) के ख़िलाफ़ गन्दी और गाली भरी कविताएँ लिखकर उन्हें फैलाएँ। स्पष्ट रहे कि इस दौर में अरब के कवियों को

प्रॉपेगंडा के लिहाज़ से आजकल के पत्रकारों का स्थान प्राप्त था। मक़सद यह था कि सरस और अलंकृत गालियाँ दूर-दूर तक फैल जाएँ। यूँ समझिए कि जैसे किसी शरीफ़ आदमी के पीछे कुत्ते छोड़ दिए जाएँ।

आस बिन वाइलिस्सहमी ने प्यारे नबी के यहाँ कोई लड़का पैदा न होने का ताना देते हुए यह कहना शुरू किया कि छोड़ो भाई, किस आदमी के पीछे पड़े हो, वह, जिसके न बाप-दादा हैं, न आगे कोई बेटा। इधर आँख बंद हुई, उधर सारा खेल ख़त्म। इसके जवाब में क़ुरआन में कहा गया कि हुज़ूर (सल्ल०) को तो कौसर अता हुआ है, 'ख़ैरे कसीर' आपके लिए मुक़द्दर है। दुनिया में आपकी जानशीन एक शानदार उम्मत होगी, जो क़ुरआन के ख़ैरे कसीर के ख़जाने की हिफ़ाज़त करनेवाली होगी और आख़िरत में हौज़े कौसर के आप (सल्ल०) साक़ी होंगे। बड़प्पन यह नहीं है कि किसी के बहुत-से बेटे हों, बल्कि बड़प्पन यह है कि उसके पैग़ाम से हज़ारों लोग अपनी मशालें जलाएँ, उसके चरित्र से क़ियामत तक चरित्र सँवरते रहें और उसकी क़ायम की हुई व्यवस्था की बरकतों से पूरी मानवता फ़ायदा उठाए।

चलते हुए जुम्ले कसे जाते कि लोगो! ज़रा देखो, यह हैं वह साहब! जिनको नबी बनाया गया है। ख़ुदा को अगर नबी ही बनाना था तो क्या बस यही हस्ती रह गई थी। मक्का और तायफ़ के किसी शानवाले सरदार को क्यों न नियुक्त कर दिया। प्यारे नबी (सल्ल०) के साथियों को देखते तो ताने देते कि देखो, ये हैं वे महान हस्तियाँ, जिन्हें अल्लाह ने अरब व अजम की सरदारी के लिए चुना है।

कभी प्यारे नबी (सल्ल०) से व्यंग्य करते हुए कहते कि जिस अज़ाब की धमकियाँ देते हो, उसे हमपर ले क्यों नहीं आते? हमपर आसमान का कोई टुकड़ा गिरा दीजिए, फिर कहते कि ऐ अल्लाह! अगर मुहम्मद का दीन हक़ है, तो हमपर आसमान से पत्थर बरसा, हमें कोई दर्दनाक अज़ाब दे, क्योंकि हम उसे मानकर तो देंगे नहीं।

कभी हँसकर हुज़ूर (सल्ल०) से कहते कि ख़ुदा अगर क़ाहिर व क़ादिर है तो क्यों नहीं हमें हिदायत के रास्ते पर चला देता, क्यों नहीं वह हमें बद अक़ीदा होने से बचाता।

ऐसी तमाम बेकार की बातों के जवाब में क्रान्ति-दूत को समझाया गया कि इन चीज़ों को नज़रअंदाज़ कीजिए, नेकी की बात कहिए और बेतुके लोगों से किनाराकशी इख़तियार कीजिए। अगला क़दम वह था जो असत्यवादी उस वक़्त इख़तियार करते हैं, जब उनपर अंधी विरोधी भावनाओं की वजह से हिस्टीरियाई दौरा पड़ने लगता है।

आपके पड़ोसियों में कुछ शरीफ़ लोग और सरदार हर रात को आपके रास्ते में काँटे बिछाते और झाड़ियाँ फिकवाते। अबू लहब की बीवी साहिबा तो बाक़ायदा कूड़ा और गंदगी ले जाकर डालती। नमाज़ पढ़ते हुए हमेशा शोर तो मचाया ही जाता था, एक दिन उक़्बा बिन अबी मुऐत ने नमाज़ की हालत में चादर आपके गले में डालकर उसे मरोड़ा। हुज़ूर (सल्ल०) गला घुटने से घुटनों के बल गिर पड़े। एक बार गली में गुज़रते हुए किसी आदमी ने मिट्टी सर पर डाल दी। मासूम बच्ची फ़ातिमा (रज़ि०) ने रोते हुए आपका सर धोया। आपने फ़रमाया—

"जाने पिदर ! रोओ नहीं, ख़ुदा तेरे बाप को बचाएगा।" तनिक यक़ीन के इस दर्जे का अन्दाज़ा कीजिए।

एक बार हरम में अबू जहल और कुछ क़ुरैश के सरदारों ने तकलीफ़ पहुँचाने की नई तजवीज़ निकाली। उक़्बा बिन अबी मुऐत ही को, जिसका ज़िक्र आ चुका है, मुहिम सुपुर्द की गई। वह जाकर ऊँट की ओझ उठा लाया। ठीक सज्दे की हालत में गंदगी का यह ढेर आपके ऊपर डाल दिया गया। क़ुरैश के सरदार ख़ूब ठट्ठे मारकर हँसे। हज़रत फ़ातिमा दौड़ी-दौड़ी पहुँचीं। इस बार फिर उस मासूम बच्ची ने उस गन्दगी को हुज़ूर (सल्ल०) के ऊपर से हटाया और कपड़े साफ़ किए।

तनिक उस हस्ती को देखिए जो हर तान और शरारत और हर तक्लीफ़ पर साक्षात सब्र व सुकून बन जाता है। यह पहचान होती है इस बात की कि विरोधियों का मक़सद खोटा है। जिसका अक़ीदा और मक़सद श्रेष्ठ था, उसका मान-सम्मान और प्रभाव बराबर बढ़ रहा था। न काँटे उसका रास्ता रोक सकते थे, न गंदगी और न ताने-ठट्ठे।

इन चीज़ों से अगर बिगड़ी व्यवस्थाओं को तोड़नेवाले पैग़ामों के रास्ते रुक सकते तो शायद इतिहास में कभी कोई क्रान्ति न आई होती।

# विरोध और अवरोध

दुनिया के सबसे मुबारक इनसान की दावत एक-एक करके अच्छे लोगों को समेटती चली जा रही थी और विरोध करनेवाले मक्का के बाशिंदों का हिस्टीरियाई दौरा हर दिन तेज़ होता जा रहा था।

इस दौर में क़ुरैश की विरोधी प्रोपेगंडा मुहिम ने मुहम्मद (सल्ल०) का पैग़ाम चारों ओर फैला दिया और लोग ख़ास तौर पर आपको देखने और आपसे मुलाक़ात करने के लिए आने लगे। आगे बढ़ने से पहले एक दिलचस्प घटना सुन लीजिए—

तुफ़ैल बिन अम्र दौसी एक प्रसिद्ध कवि और सज्जन पुरुष था। वह मक्का आया तो क़ुरैश के आदमी उससे जाकर मिले। कहा कि "तुफ़ैल! तुम हमारे शहर में आए हो, यहाँ मुहम्मद (सल्ल०) की सरगर्मियाँ हमारे लिए असह्य बनी हुई हैं। उसकी बातें जादूगर जैसी हैं, यह भाई-भाई और मियाँ-बीवी में जुदाई डलवा देता है, यानी जो आदमी उसके साथ मिल जाता है, उसके परिवारवालों की उससे दुश्मनी हो जाती है। देखो, कहीं तुम उसके शिकार हो जाना। उससे बात न करना, न उसकी सुनना।"

तुफ़ैल का अपना बयान है कि उन्होंने मुझे उस वक़्त तक न छोड़ा, जब तक मैं पूरी तरह क़ायल न हो गया। चुनांचे हरम की ओर जाता तो कानों में रूई ठूँस लेता। एक बार प्यारे नबी (सल्ल०) काबा के पास इबादत के लिए खड़े थे, तो मैं भी क़रीब जा खड़ा हुआ और आपके मुख से मनको छू जानेवाला बड़ा सच्चा कलाम सुना, फिर दिल में सोचा कि मैं सूझ-बूझ रखनेवाला एक व्यक्ति हूँ, कवि हूँ, बुरे-भले की पहचान कर सकता हूँ; क्यों न सीधे-सीधे मिलकर पूरी बात सुनूँ। अगर अच्छी होगी तो अपनाऊँगा, बुरी होगी तो रद्द कर दूँगा।

जब प्यारे नबी (सल्ल०) घर को चले तो तुफ़ैल साथ हो लिया। रास्ते में बताया कि किस तरह मुझे इन लोगों ने प्रोपेगंडों के चक्कर में डाल दिया था। मकान पर पहुँचकर निवेदन किया कि अपना पैग़ाम इर्शाद फ़रमाइए। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इस्लाम की हक़ीक़त बयान की और क़ुरआन सुनाया। तुफ़ैल कहते हैं कि "ख़ुदा की क़सम! इससे बढ़कर अच्छा और इससे ज़्यादा सच्चा कलाम मैंने कभी नहीं सुना।" चुनांचे वह तुरन्त इस्लाम अपनाकर प्यारे नबी (सल्ल०) की जमाअत में शामिल हुए और वापस क़बीले में पहुँचकर दावत को फैलाया, जिससे सारा क़बीला प्रभावित हो गया।

इसी तरह प्रमुख कवि आशा बिन क़ैस मक्का आया तो उसे भी इस्लाम विरोधियों ने बहकाया। उसकी कमज़ोरियाँ सामने रखकर कहा कि मुहम्मद (सल्ल०) तो ज़िना को हराम ठहराता है, वह तो शराब से भी रोकता है। ऐसी बातों से जब वह थोड़ा बहुत ढीला पड़ा तो उससे कहा कि बस इस साल तुम लौट जाओ, अगले वर्ष चाहो तो मुहम्मद (सल्ल०) का पैग़ाम मान लेना। आशा वापस चला गया और साल पूरा होने से पहले उसकी मौत हो गई।

इससे दिलचस्प घटना अराशी की है। यह मक्का आया, साथ में ऊँट था। अबू जहल ने सौदा किया, पर क़ीमत अदा करने में आना-कानी की। अब यह बहुत-से क़ुरैशी सरदारों से हरम में मिला कि मेरे पैसे दिलवा दें। इनमें अबू जहल से ऐसी बात करने की हिम्मत कहाँ। उन्होंने शरारतन प्यारे नबी (सल्ल०) की ओर इशारा करके कहा कि वह देखते हो, एक आदमी मुहम्मद (सल्ल०) हैं, उनके पास जाओ, वह रक़म दिलवा देंगे।

अराशी हुज़ूर से मिला, पूरी कहानी सुनाई। प्यारे नबी (सल्ल०) उठ खड़े हुए और कहा कि मेरे साथ आओ। सीधे अबू जहल के घर पहुँचे, दस्तक दी। अन्दर से आवाज़ आई, कौन है? फ़रमाया, 'मुहम्मद, बाहर आओ।'

अबू जहल निकला, तो चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

आपने फ़रमाया, "इस आदमी का हक़ दे दो।"

चुनांचे बिना किसी हीला-बहाने के अबू जहल ने उसका हक़ अदा कर दिया। अराशी भी हैरान, और क़ुरैश के सरदार भी। यह हक़ की दावत देनेवाले और उसके आदर्श चरित्र का रौब था।

अन्दाज़ा कीजिए कि ख़ुदापरस्ती पर आधारित क्रान्ति का आंदोलन किस तरह अपना रास्ता बना रहा था। जो चट्टानें उसके रास्ते में रोक बनी हुई थीं, ठीक उनके नीचे से तबदीली की बेल अपने तार लम्बे करके निकल रही थी।

क्रान्ति-दूत, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर क़त्ल के लिए हाथ उठाते हुए मक्कावाले डरते थे कि कहीं क़बीलों में लड़ाई न छिड़ जाए। वे फ़िज़ार की लड़ाई के कडुवे तजुर्बे के बाद लड़ाई-झगड़े से घबराते थे।

रास्ता यह निकाला गया कि अबू तालिब पर दबाव डाला जाए कि वह इस्लामी क्रान्ति का आह्वान करनेवाले को अपनी सुरक्षा-सीमा से निकाल दें। इस क़िस्म की विरोधी स्कीमों में बनू उमैया के सरदारों की टेढ़ी ज़ेहनियत भी काम कर रही थी। उन्हें यह गवारा न था कि बनू हाशिम का कोई व्यक्ति नबी हो।

उत्बा, शैबा, अबू सुफ़ियान बिन हर्ब, अबुल बख़्तरी, अस्वद बिन अब्दुल

मुत्तलिब, अबू जहल, वलीद बिन मुग़ीरह, हज्जाज बिन आमिर के दोनों बेटे, नुबैह और मुनब्बिह, साथ ही आस बिन वाइल एक मंडली बनाकर अबू तालिब के पास पहुँचे, अपना मामला यूँ पेश किया—

"अबू तालिब ! तुम्हारा भतीजा हमारे ख़ुदाओं और ठाकुरों को बुरा-भला कहता है, हमारे धर्म में कीड़े निकालता है, हमारे बुज़ुर्गों के तरीक़े को ग़लत और उनको मूर्ख क़रार देता है, हमारी श्रद्धाओं को चोट पहुँचाता है और बाप-दादा की तौहीन करता है। अब या तो तुम उसको इन ज़्यादतियों से रोको या हमारे और उसके बीच से हट जाओ।"

अबू तालिब ने पूरी बात बड़े सब्र व सुकून से सुनी, नर्मी से सरदारों को समझा-बुझाकर बात टाल दी। मंडली वापस चली गई। प्यारे नबी (सल्ल०) अपनी दावत पेश करने में बराबर लगे रहे और क़ुरैश पहले ही की तरह तिलमिलाते रहे।

कुछ दिनों बाद फिर एक मंडली पहुँची और उसने क़िस्सा छेड़ा—

"हमने माँग की थी कि हमें अपने भतीजे से बचाओ। लेकिन तुमने कुछ नहीं किया। हम अपने धर्म अपने बुतों और अपने बुज़ुर्गों के ख़िलाफ़ तुम्हारे भतीजे की बातें सहन नहीं कर सकते। उसे बाज रखो, वरना हम उससे भी और तुमसे भी लड़ेंगे।"

अबू तालिब ने देखा कि बात बढ़ती जा रही है तो अपने प्रिय भतीजे को बुलाकर कहा, "भतीजे ! मुझपर इतना बोझ न डालो जिसका उठाना मेरे बस से बाहर हो।"

प्यारे नबी (सल्ल०) ने महसूस किया कि जिस पत्थर पर पाँव जमाए रखे थे, वह अब सरकनेवाला है। फिर भी इस नाज़ुक मरहले पर अपने श्रेष्ठ पद की ऊँचाइयों की लाज रखी और फ़रमाया—

"चचा जान ! ख़ुदा की क़सम ! ये लोग अगर मेरे दाएँ हाथ पर सूरज और बाएँ हाथ पर चाँद रखकर चाहें कि इस मिशन को छोड़ दूँ, तो भी मैं इससे बाज़ न आऊँगा, यहाँ तक कि या तो अल्लाह इस मिशन को ग़ालिब कर दे या मैं इसी जद्दोजेहद में ख़त्म हो जाऊँ।'

प्यारे नबी (सल्ल०) के भीतर से वह शक्ति बोल रही थी जो इतिहास को उलट-पलट देती है। अबू तालिब का दिल भी पसीज गया। उन्होंने कहा कि "भतीजे जाओ, जो कुछ तुम्हें पसन्द है उसकी दावत दो। मैं किसी वजह से तुमको नहीं छोड़ूँगा।"

बात तो ज़रा बाद की है, पर ऊपर की कोशिश ही की एक कड़ी है कि हज़रत हमज़ा व उमर (रज़ि०) के इस्लाम लाने के बाद एक बार और क़ुरैश के सरदारों की मंडली अबू तालिब के पास आई। उसकी स्कीम थी कि समझौता हो जाए। प्रतिनिधि मंडल ने कहा कि जो स्थिति है, आपके सामने है, अपने भतीजे को बुलवाइए, उसके बारे में हमसे और हमारे बारे में उससे वचन लीजिए कि वह हमें न छेड़े, और हम उसे न छेड़ें। वह हमारे धर्म से वास्ता न रखे, हम उसके मज़हब से वास्ता न रखेंगे। प्यारे नबी (सल्ल०) को इस बार फिर बुलाकर सारा क़िस्सा बताया गया। क़ुरैश की बात तो धर्म की बात थी, लेकिन क्रान्ति-दूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) तो पूरी मानवता को धर्म से अधिक जीवन-व्यवस्था का पैग़ाम दे रहे थे, जिसे दूसरे शब्दों में 'दीन' कहा जा सकता है। फिर प्यारे नबी (सल्ल०) ने प्रतिनिधि मंडल को जवाब यह दिया कि—

"मेरा एक कलिमा है। अगर इसे मान लो तो सारा अरब तुम्हारे वश में होगा और सारा अजम तुम्हारे पीछे चलेगा।"

ज़रा उस वक़्त के पीड़ादायक और निराशाजनक माहौल और ईमानवालों की थोड़ी तादाद और मक्कावालों की ज़बरदस्त दुश्मनी को सामने लाइए और फिर सोचिए कि यह सिर्फ़ ख़ुदा के नबी ही का मक़ाम है कि ऐसे में वह अपनी दावत के भविष्य को दूर तक देखकर बात करे। प्यारे नबी (सल्ल०) तो मानो अँधेरों की भीड़ में कह रहे थे कि सुबह होनेवाली है और सूरज निकलनेवाला है।

हज का मौसम एक बड़ा मसला था। बाहर से जब लोग आते तो प्यारे नबी (सल्ल०) दीन का पैग़ाम उन तक ज़रूर पहुँचाते। ऐसा ही मौक़ा आनेवाला था कि वलीद बिन मुग़ीरह के घर पर क़ुरैशी सरदारों की सभा हुई। वलीद ने कहा कि हज का मौसम क़रीब है। अरब की मंडलियाँ आएँगी। वे तुम्हारे इस आदमी (यानी मुहम्मद सल्ल०) का क़िस्सा सुन चुकी हैं, इसलिए उनकी टोह होगी और यह व्यक्ति जा-जाकर उनसे मिलेगा। यह बहुत ख़तरे का मौक़ा है, पहले से कोई उपाय कर लो।

फिर बहस होती रही कि उसे 'काहिन' कहकर आनेवालों को चौंका दिया जाए या उसे आसेब ज़दा क़रार दिया जाए, या कवि कहा जाए, या यह कि वह जादूगर है। बहस में हर आरोप के सामने आने पर सरदारों ने ख़ुद ही उसके बेबुनियाद होने का उल्लेख किया। जब कोई बात तय न हो सकी तो फिर सबने वलीद ही की ओर रुख़ किया कि कुछ तुम ही कहो, ऐ अबू अब्दे शम्स?

और अबू अब्दे शम्स ने ख़ूब बातें कहीं, यहाँ तक कह डाला कि "यह पैग़ाम ग़ालिब होगा, इसे मग़लूब नहीं किया जा सकेगा और यह सबको कुचल डालेगा

तुम्हारी सारी बातें बेकार की हैं। काम चलाने के लिए जादूगरी का आरोप प्रभाव डाल सकता है। लोगों को बताया जाए कि उसकी बात फैलने से बाप-बेटे, मियाँ-बीवी और भाई-भाई में जुदाई पड़ रही है।"

देखा आपने, एक व्यक्ति का दिल मान रहा है कि मुहम्मद का पैग़ाम महान है और वह ग़ालिब भी होगा, मगर फिर भी विरोध करने का फ़ैसला होता है, और वह भी इस तरह कि विभिन्न मनगढ़ंत आरोपों को जाँचा जाता है कि किससे काम चल सकता है। ऐसे होते हैं असत्यवादी !

रबीआ बिन उबादा जो बाद में इस्लाम लाए, उस हज के मौसम में दस साल के बच्चे थे। उनका बयान है कि मैंने देखा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक-एक क़बीले के लोगों में जाकर कहते कि मैं तुम्हारी ओर अल्लाह का भेजा हुआ रसूल हूँ और तुमसे कहता हूँ कि अल्लाह की इबादत करो, उसके साथ किसी को शरीक न ठहराओ, बुतों से किनारा कर लो, मेरी तस्दीक़ करो और मेरा साथ दो, यहाँ तक कि मैं अल्लाह की ओर से सारी बात खोलकर रख दूँ।

फिर रबीआ कहते हैं कि एक आदमी अदनी हुल्ला (चादर) ओढ़े हुज़ूर (सल्ल०) के साथ-साथ लगा था और जब प्यारे नबी (सल्ल०) अपनी बात कह चुकते तो वह पुकारकर कहता कि ऐ बनी फ़्लाँ ! यह व्यक्ति तुमको लात व उज़्ज़ा से हटाकर बिदअत और गुमराही की ओर खींच रहा है। इसकी बात हरगिज़ न सुनो। वह व्यक्ति था—अबू लहब।

इसी तरह ज़ुल-मजाज़ के बाज़ार में एक बार आप अपनी दावत दे रहे थे और अबू जहल मिट्टी उठा-उठाकर आप पर फेंकता और लोगों से कहता कि इसके क़रीब न आना।

फिर सत्य के इन विरोधियों ने जब देखा कि वे नबी (सल्ल०) के चट्टान से अधिक मज़बूत इरादों को विरोध से हिला नहीं सकते, तो उन्होंने सौदेबाज़ी का रास्ता अपनाया। बड़ी नर्मी से आपसे अर्ज़ किया कि देखो मुहम्मद ! हम भी तुम्हारे क़रीब हो सकते हैं, बस इतना करो कि हमारे बुत और हमारे ख़ुदाओं के ख़िलाफ़ कुछ न कहो, हो सके तो अपने क़ुरआन में थोड़ा घटा-बढ़ा लो या चाहो तो बिलकुल ही एक नया क़ुरआन ले आओ, जिसमें कुछ हमारा भी ख़याल रखा गया हो। आपने जवाब दिया कि यह मेरे अधिकार में नहीं है। उससे बड़ा ज़ालिम कौन होगा जो कोई बात अपने पास से गढ़कर अल्लाह से जोड़ दे।

विरोधी सरदारों ने एक माँग यह भी की कि मुहम्मद ! तुम अगर अपने क्षेत्र से तुच्छ लोगों, नीचों, ग़ुलामों और लौंडियों को निकाल दो, तो फिर हम भी तुम्हारे पास आकर बैठेंगे और तुम्हारा कलाम सुनेंगे। तुम्हारे इन मामूली साथियों में भला

हम बड़े लोग कैसे बैठ सकते हैं? इससे आपने इनकार कर दिया कि ये लोग जो हर प्रकार के स्वार्थ के बंधनों से मुक्त होने की वजह से आगे आए हैं और मेरा साथ देकर तकलीफ़ें उठा रहे हैं और क़ुरबानियाँ दे रहे हैं, मैं इनको कैसे छोड़ सकता हूँ?

एक और ज़बर्दस्त वार किया गया। हरम में क़ुरैश की सबसे बड़ी मजलिस ने उत्बा बिन रबीआ को अपना नुमाइंदा बनाकर हुज़ूर (सल्ल०) के पास भेजा कि हमारी ओर से उस व्यक्ति के सामने यह पेशकश करो कि अगर मक़सद दौलत हो तो हम चन्दा करके माल का ढेर लगा देते हैं, अगर सरदारी और बादशाही चाहते हो तो हम तुम्हें सरदार बना देते हैं। अगर किसी जिन्न का साया है, या जादू का असर है तो हम हर मुमकिन इलाज कराते हैं, मालूम करके आओ कि मुहम्मद असल में क्या चाहता है? यानी यह सारी पेशकश हुज़ूर (सल्ल०) की निष्ठा के निषेध पर आधारित थी। फिर प्यारे नबी (सल्ल०) ने उत्बा से कहा कि तुमने अपनी बात कह ली, अब मेरी बात सुनो! यह कहकर आपने सूरा हा०मीम० की कुछ आयतें तिलावत कीं, जिनका अनुवाद इस तरह है—

"यह हा०मीम० है। यह बड़ी मेहरबान और रहमवाली हस्ती की ओर से भेजी गई है। यह एक लेख है, जिसकी एक-एक आयत निखरी हुई है। यह क़ुरआन है अरबी भाषा में समझ-बूझ से काम लेनेवालों के लिए! क़ुरआन (ईमान लानेवालों को) ख़ुशख़बरी सुनानेवाला, (और इनकार करनेवालों को) तंबीह करनेवाला। अत: उन (यानी मक्कावालों) में से अधिसंख्य ने इससे मुँह मोड़ा और सुनकर हँस देते हैं और वे कहते हैं, हमारे दिल इस सच्चाई के विरोधी हैं, जिसकी ओर तुम बुलाते हो और हमारे कानों में बोझ है और हमारे और तुम्हारे दरमियान एक परदा रोक बन गया है, तुम अपना काम करो, हम अपना काम किए जाएँगे।"

—क़ुरआन

उत्बा उठा और साथियों से उसने जाकर कहा—

"बात यह है कि मैंने ऐसा कलाम सुना है जैसा पहले कभी नहीं सुना! ख़ुदा की क़सम! न वह काव्य है, न जादू है और न कहानत है। ख़ुदा की क़सम! इससे कोई बड़ा नतीजा निकलनेवाला है। ऐ क़ुरैश! मेरी बात मानो, इस आदमी को उसके हाल पर छोड़ दो। अरबों ने उससे निपट लिया तो तुम्हें निजात मिल जाएगी और अगर वह अरब पर छा गया, तो उसका राज्य तुम्हारा राज्य होगा उसके ज़रिए तुम तमाम लोगों में भाग्यशाली बन जाओगे।"

अन्दाज़ा कीजिए, किस क़द्र सही समझा उत्बा ने! उसने यह भी अन्दाज़ा क

लिया कि निरी मज़हबदारी का मामला नहीं है कि उससे एक राज्य ज़ाहिर होनेवाला है। उसने बहुत बड़ी क्रान्ति को इस कलाम के परदे के पीछे देख लिया।

वही पेशकश शाम के सरदारों ने ख़ुद प्यारे नबी (सल्ल०) के सामने रखी। तनिक जवाब सुनिए—

"तुम लोग जो कुछ कह रहे हो, मेरा मामला उससे अलग है। दावत से मेरा मक़सद माल व दौलत या सरदारी और बादशाही हासिल करना नहीं। मुझे तो ख़ुदा ने तुम्हारी ओर अपना पैग़म्बर बनाकर भेजा है—सो मैंने ख़ुदा की हिदायतें तुम तक पहुँचा दी हैं। अगर मेरी दावत को तुम क़बूल कर लो तो यह तुम्हारे लिए दुनिया और आख़िरत की भलाई का ज़रिया है, और अगर तुम इसे मेरी ओर वापस फेंक दो, तो मैं धैर्य के साथ अल्लाह के हुक्म का इन्तिज़ार करूँगा।"

इस जवाब पर ध्यान देने के बजाए विरोधियों ने और ही क़िस्से छेड़ दिए। जैसे, कहा कि तुम जानते हो कि हमारी ज़मीन तंग है और पानी की कमी है। तुम ख़ुदा से कहो कि यहाँ से पहाड़ों को हटा दे और शाम (सीरिया) व इराक़ की तरह नदी बहा दे, फिर यह कि ख़ुदा से कहो कि वह हमारे बाप-दादाओं को उठा खड़ा करे, जिनमें क़ुसई बिन किलाब भी हों, ताकि हम उस चतुर व्यक्ति से तुम्हारे बारे में पूछ सकें, नहीं तो फिर हमपर अज़ाब ही ला दो। प्यारे नबी (सल्ल०) का एक ही जवाब था, "मुझे इस काम के लिए नहीं भेजा गया।"

# हक़ के दीवानों पर क्या गुज़री

हक़ के विरोधी नीयतों के लिहाज़ से खोटे और दलीलों के लिहाज़ से खोखले होते हैं। उनके सामने असल मसला अपनी सत्ता और स्वार्थ का होता है। तबदीली की कोई दावत अगर उठे और वह ठोस दावत हो और उसके अलमबरदार आस्था, बुद्धि और चरित्र की दृष्टि से मज़बूत हों, तो फिर विरोधी बहुत जल्द छोटे हथियारों पर आ जाते हैं और ओछी हरकतें करने लगते हैं।

मक्का में हुज़ूर (सल्ल०) की दावत के ज़ाहिर होने के साथ ही मानसिक पीड़ा पहुँचाने का काम भी शुरू हो गया और शारीरिक रूप से तंग करने का भी, पर बाक़ायदा हिंसा और दरिंदगी की लहर ज़रा आगे चलकर उठी और तेज़ी से उठती चली गई। आइए, हिंसा के दौर के कुछ दृश्य देखिए—

ख़ब्बाब बिन अल-अरत्त तमीमी को उम्मे नमार ने इस्लाम आने से पहले के अज्ञानता-युग में एक ग़ुलाम (दास) के रूप में ख़रीदा। यह जब ईमान लाए तो हक़ के दुश्मनों ने धधकते अंगारे बिछाकर उनको आग के बिस्तर पर लिटाया और छाती पर एक व्यक्ति खड़ा हो गया, ताकि करवट न ले सकें। अंगारे पीठ के नीचे ठंडे हो गए और मांस जगह-जगह से जल गया। बाद में हज़रत उमर (रज़ि०) को एक बार उन्होंने पीठ से कमीज़ उठाकर निशान दिखाए। बर्फ़ की तरह के सफ़ेद दाग़ सारी पीठ पर थे। यह लोहे का काम करते थे, और उनकी जो रक़में क़ुरैशवालों के ज़िम्मे थीं, उन्होंने वह सब दाब लीं और कहा कि जब तक मुहम्मद (सल्ल०) का इनकार न करोगे, एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी। हक़ का यह जाँबाज़ जवाब में यह कहता है कि तुम लोग जब तक मरकर ज़िंदा न हो जाओ, ऐसा नहीं हो सकता।

हज़रत बिलाल हबशी (रज़ि०) उमैया बिन ख़ल्फ़ के ग़ुलाम थे। यह भी ईमान लाए, जब सूरज ठीक सर पर आ जाता तो अरब की तपती रेत पर उनको लिटाकर सीने पर भारी पत्थर रख दिया जाता। इस हालत में उमैया उनसे कहता कि इस्लाम से बाज़ आओ, वरना ख़त्म हो जाओगे। हज़रत बिलाल (रज़ि०) बस 'अहद, अहद' (एक है, एक है) पुकारते। उमैया ग़ुस्से से बिफर जाता और आपके गले में रस्सी डालकर शहर के लौंडों के सुपुर्द कर देता कि गली-गली घसीटते फिरें। कभी आपको जानवर की खाल में लपेटा जाता, कभी लौह कवच पहनाकर तेज़ धूप में बिठाया जाता। वह पहले ही की तरह 'अहद, अहद' पुकारते। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने उनको ख़रीदकर आज़ाद कर दिया।

बड़ा क़िस्सा तो यासिर और आले यासिर का है।

यासिर असल में क़हतानी थे। किसी सिलसिले में वह मक्का आए और अबू हुज़ैफ़ा मख़ज़ूमी से मैत्री सम्बन्ध बनाकर यहीं रह पड़े और शादी कर ली। यासिर सहित पूरे घराने ने इस्लाम अपना लिया, ख़ास तौर पर हज़रत अम्मार बिन यासिर पर बड़ा ज़ुल्म ढाया जाता। उनको जलती ज़मीन पर लिटाया जाता। क़ुरैश उनको इतना मारते कि बार-बार बेहोश हो जाते। उनके माँ-बाप को भी बड़ी पीड़ाएँ दी गईं। कभी पानी में डुबकी दी जाती, कभी अंगारों पर तड़पाया जाता। सुमैया (रज़ि०) जो हज़रत अम्मार (रज़ि०) की माँ थीं, उनको इस्लाम लाने पर अबू जहल ने बरबरतापूर्वक बरछी मारकर हलाक कर दिया। अम्मार (रज़ि०) के बाप यासिर भी ज़ुल्म सहते-सहते शहीद हो गए। हुज़ूर (सल्ल०) का गुज़र होता तो फ़रमाते, "सलामुन अला, आलि यासिर"! साथ ही उनको ख़ुशख़बरी देते, "तुम्हारे लिए जन्नत की बशारत है।" अम्मार (रज़ि०) के बारे में फ़रमाते कि वह सिर से पैर तक ईमान से भरा हुआ है।

हज़रत सुहैब (रज़ि०) को इस बेदर्दी से मारा जाता कि होश खो बैठते। अबू फ़ुकैह को पाँव में रस्सी डालकर गर्म रेत पर घसीटा जाता। उमैया ने एक बार ज़ोर से गला घोंटा तो ऐसे लगा कि जान निकल गई, पर बचे रहे। एक बार भारी पत्थर सीने पर रखा गया तो बेचैनी के मारे उनकी ज़बान बाहर निकल आई। उनको लोहे का कवच पहनाकर जलती ज़मीन पर लिटाया जाता। उन्हें हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) ने ख़रीदकर आज़ाद कर दिया।

लुबैना नामी लौंडी को तो उमर इतना मारते कि थक-हारकर हाथ रोकते। दम लेकर फिर मारने लगते।

ज़ुनैरा (रज़ि०) उमर के घराने की लौंडी थीं, इसलिए वह इन्हें पूरी बेदर्दी से मारते। एक बार अबू जहल ने पूरी निर्दयता से मारा तो उनकी आँखें चली गईं। उन्हें भी हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने ख़रीदकर आज़ाद कर दिया। नहदिया और उम्मे उबैस (रज़ि०) भी लौंडियाँ थीं। उनपर भी ज़ुल्म के पहाड़ तोड़े गए।

ज़रा सोचिए, क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदार लौंडियों और ग़ुलामों पर अपनी ताक़त को आज़माकर दीने हक़ के ख़िलाफ़ अपना ग़ुस्सा ठंडा करते। वह ठंडा तो क्या होता, और भड़क जाता। कितना ओछा तरीक़ा था। हर वह नज़रिया और मज़हब जिससे पस्ती आए, वह अपने पस्त होने का एलान करता है।

अब कुछ आज़ादों का भी हाल सुनिए—

हज़रत उसमान (रज़ि०) जो उम्र के लिहाज़ से इज़्ज़त के योग्य थे और

दौलतवाले भी थे, उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) का साथ देने का फ़ैसला किया तो उनको अपने चचा ने रस्सी से बाँधकर पीटा।

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) ने मुहम्मद (सल्ल०) के इंक़िलाबी कलिमा को अपनाया तो जोश में आकर सीधे काबा पहुँचे और ऊँची आवाज़ से कलिमा पढ़ा। क़ुरैश चारों ओर से टूट पड़े, इतना मारा कि आपको ज़मीन पर गिरा दिया। संयोगवश हज़रत अब्बास का उधर से गुज़र हुआ। उन्होंने कहा कि यह तो क़बीला ग़िफ़ार का आदमी है और तुम्हें व्यापार के लिए इसी क़बीले के इलाक़े से गुज़रना पड़ता है। यह सुनकर लोग रुक गए। दूसरे दिन फिर ऐसा ही हुआ।

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) को अन्तरात्मा के जागने की सज़ा यह दी गई कि उनके चचा उन्हें चटाई में लपेटकर नाक में धुवाँ देते, पर हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) पुकारकर कहते कि मैं अब कुफ़्र तो हरगिज़ नहीं करूँगा।

साद बिन ज़ैद रज़ि० (हज़रत उमर के चचेरे भाई) को हज़रत उमर ने रस्सियों से बाँध दिया। साद बिन वक़्क़ास (रज़ि०) को भी मारा-पीटा गया। अब्दुल्लाह बिन मसऊद ने इस्लाम का पैग़ाम क़बूल किया तो ईमानी ताक़त की बुनियाद पर हरम पहुँचकर पहली बार ऊँची आवाज़ से क़ुरआन पढ़ा। सूरा रहमान की तिलावत शुरू की ही थी कि दुश्मन टूट पड़े और मुँह पर तमाँचे मारने लगे। उन्होंने तिलावत इस हाल में भी जारी रखी। वापस हुए तो चेहरा लहूलुहान था।

उसमान बिन मज़ऊन हरम में क़ुरैश की मजलिस में बैठे थे कि लबीद ने एक पद पढ़ा। दूसरा पढ़ा तो उसमान बिन मज़ऊन ने कहा कि यह बात तुमने ग़लत कही। लबीद का ख़ून खौल गया कि यह जुर्रत—और हक़ बात कहने की जुर्रत—बड़ों-बड़ों के सामने हक़ बात कहने की यह जुर्रत इस्लाम के मानव कल्याण आंदोलन ने सबमें पैदा कर दी थी। किसी ने कहा कि यह आदमी मूर्ख है, जिसने हमारे बाप-दाद के धर्म से बग़ावत कर ली है। हज़रत उसमान (रज़ि०) भी कहाँ चुप रहनेवाले थे, जवाब पर जवाब दिया। इसपर बात करनेवाला व्यक्ति उठा और उसने उसमान बिन मज़ऊन के चेहरे पर ऐसा थप्पड़ मारा कि उनकी आँख फूट गई। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने पूरी जुर्रत से कहा कि मेरी जो आँख बच रही है वह भी क़ुरबान होने को तैयार है।

हज़रत उम्मे शरीक ईमान ले आईं तो उनके रिश्तेदारों ने उन्हें चिलचिलाती धूप में खड़ा कर दिया। इस हालत में वे उनको शहद जैसी गर्म चीज़ खाने को देते और पानी न पिलाते। तीन दिन लगातार इसी हाल में गुज़र गए। इनसे इस्लाम छोड़ देने की माँग की गई, वह हवास में न थीं। कुछ न समझीं, फिर आसमान की ओर इशारा करके बात बताई गई। जब समझ गईं तो कहा कि ख़ुदा

की क़सम ! मैं तो अपने अक़ीदे पर क़ायम हूँ।

हद यह कि हज़रत अबू बक्र और तलहा, वलीद बिन वलीद, अय्याश बिन अबी रबीआ और सला बिन हिशाम (रज़ि०) को पीड़ाएँ दी गईं।

ख़ालिद बिन आस (रज़ि०) ने जब इस्लाम क़बूल करके क्रान्ति-दूत को अपना रहनुमा माना तो उनके बाप ने इतना मारा कि सर ज़ख़्मी हो गया। उनको भूखा रखने की भी सज़ा दी गई।

पूरा मक्का एक गर्म भट्टी बना हुआ था, जिसमें हर मुसलमान को तपाया जा रहा था। घर-घर और गली-गली ज़ुल्म के अड्डे क़ायम हो गए थे।

लेकिन अनुपम है यह स्थिति कि ज़ुल्म व सितम की चक्कियों में पिसने के बावजूद कोई एक भी ऐसा व्यक्ति न था जो पीछे पलटा हो, जिसकी अन्तरात्मा ने हार मार ली हो। मर्दों की तरह औरतें और आज़ादों की तरह लौंडियाँ और ग़ुलाम एक ऐसे ईमान का प्रदर्शन कर रहे थे कि जिसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। ख़ुदा को ख़ुदा मानने और रसूल को रसूल और रहनुमा मानने का यह है नमूना व कसौटी। मार खानेवालों के सीनों में जो इंक़िलाबी लहर दौड़ रही थी, वह और भी ज़ोर पकड़ गई। उनके सब्र ने ज़ालिमों को भी थका दिया। ज़ालिम हार गए; क्योंकि वे किसी एक व्यक्ति को भी उसकी जगह से न डिगा सके। प्यारे नबी (सल्ल०) जहाँ मानव-कल्याण की मुहिम के सिपाहियों के संकल्प और धैर्य का इतमीनान हासिल करते, वहाँ आपको यह भी एहसास था कि आख़िर इनसानी सहन-शक्ति की भी कोई हद होती है। ज़ुल्म व सितम की चक्की कहीं रुकती नज़र नहीं आ रही थी, बल्कि दिन-ब-दिन ज़ोर पकड़ती जा रही थी। प्यारे नबी (सल्ल०) अपने साथियों का हाल देख-देखकर कुढ़ते, पर कोई ज़ोर न चलता था। सहारा सिर्फ़ ख़ुदा का था, ईमानी शक्ति का था, दुआ व ज़िक्र का था, सत्य की विजय की शक्तिपूर्ण आशाओं का था। नबी (सल्ल०) साथियों को तसल्ली दिलाते कि ख़ुदा कोई रास्ता निकालेगा, हालात बता रहे थे कि इस्लामी आंदोलन का मुबारक पेड़ मक्के की कंकरीली ज़मीन में फल-फूल न सकेगा, यह सौभाग्य धरती के किसी और भाग को प्राप्त होना है, साथ ही चूँकि दीने इस्लाम के मानव-कल्याण आंदोलन का पिछला इतिहास बताता था कि यहाँ एक मरहला हिजरत का भी ज़रूर आया करता है, इसलिए प्यारे नबी (सल्ल०) के दिल में यह ख़याल मौजूद था कि आपको और आपके साथियों को वतन छोड़ना होगा। प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपने मज़लूम साथियों को मशविरा दिया कि ज़मीन में किसी और तरफ़ निकल जाओ, ख़ुदा जल्द ही सबको इकट्ठा कर देगा। पूछा गया कि किधर जाएँ? हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हब्शा चले जाओ" यह इसलिए कि

हब्शा में ईसाइयत की बुनियाद पर एक न्यायप्रिय सरकार शासन कर रही थी, इस देश की चर्चा पहले से सुनी जा रही थी, इसी लिए हुज़ूर (सल्ल०) ने इसके बारे में फ़रमाया कि यह सच्चाई की धरती है। बाद में प्यारे नबी (सल्ल०) की राय और शब्द सच निकले।

नुबुव्वत के पाँचवें साल हुज़ूर (सल्ल०) की इंक़िलाबी जमाअत के 11 मर्दों और चार औरतों का क़ाफ़िला हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान के नेतृत्व में रात के अँधेरे में हब्शा को रवाना हुआ। हज़रत उसमान के साथ उनकी बीवी यानी प्यारे नबी (सल्ल०) की प्यारी बेटी हज़रत रुक़ैया भी हिजरत के इस सफ़र पर पहले जानेवालों में से थीं। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इस मुबारक जोड़े के बारे में फ़रमाया कि हज़रत लूत और हज़रत इबराहीम के बाद यह पहला जोड़ा है, जिसने ख़ुदा की राह में वतन छोड़ा।

यह बात नोट करने की है कि जिस तरह इस्लाम लाने में पहल करनेवाली एक महिला थीं, जिस तरह पीड़ाओं को सहन करने में मर्दों के साथ-साथ औरतें भी अपना हिस्सा पा रही थीं और जमाव में उन्होंने अपने समान दर्जे का सुबूत दे दिया, उसी तरह अब ठीक हब्शा की हिजरत के लिए दूसरे देश को जानेवाले काफ़िले में भी वे शरीक थीं।

मुहाजिरों के इस क़ाफ़िले के निकलने के बाद जब क़ुरैश को ख़बर हुई तो पीछा करने के लिए आदमी दौड़ाए, लेकिन पीछा करनेवाले जब जद्दा की बन्दरगाह पहुँचे तो मालूम हुआ कि जानेवाले जा चुके। उन्हें तुरन्त ही नौकाएँ तैयार मिल गईं, अगर ख़ुदा की ओर से ऐसा न होता तो न जाने क्या होता। इन मुहाजिरों ने थोड़ी सी मुद्दत (रजब से शव्वाल तक) हब्शा में गुज़ारी थी कि यह अफ़वाह पहुँची कि क़ुरैश ने इस्लाम क़बूल कर लिया है, सब लोग पलट आए। लेकिन मक्का के क़रीब पहुँचकर मालूम हुआ कि अफ़वाह ग़लत थी। मजबूर होकर उनमें कुछ छिपते- छिपते मक्का पहुँचे और कुछ ने किसी की हिमायत हासिल कर ली, नतीजा यह निकला कि पहले से बढ़कर ज़ुल्म होने लगा।

मुसलमानों की वापसी के बाद हिंसा का ज़ोर और बढ़ गया, इसलिए दोबारा मुहाजिरों का ज़्यादा बड़ा क़ाफ़िला निकला, जिसमें 85 मर्द और 17 औरतें शामिल थीं। ये तमाम लोग हब्शा पहुँचे। वहाँ उनको शांतिपूर्ण वातावरण मिला और वे इस्लाम के नक़्शे पर ज़िंदगी बसर करने लगे।

इधर मक्के में इस्लाम विरोधियों ने इस मामले पर वार्ता करके एक योजना बनाई। अब्दुल्लाह बिन रबीआ और अम्र बिन आस को दूत बनाकर भेजा कि ये हब्शा के बादशाह से जाकर बात करें और मुहाजिरों को वापस लाएँ। नज्जाशी

और उसके दरबारियों और पादरियों के लिए बहुमूल्य भेंटें दी गईं, बड़ी तैयारी के साथ ये दूत रवाना हुए। उन्होंने हब्शा पहुँचकर पहले तो पादरियों और दरबारियों से मुलाक़ातें कीं और उनको रिश्वतें दीं और मुहाजिरों के बारे में उन्हें चक्कर में डाला कि उन्होंने एक मज़हबी फ़ितना हमारे शहर में खड़ा किया है, जो ईसाई धर्म के लिए भी उतना ही ख़तरनाक है, जितना हमारे धर्म के लिए। उनकी कोशिश यह थी कि नज्जाशी बादशाह उनकी बात यकतरफ़ा तौर पर सुने और मुहाजिरों को बोलने का मौक़ा दिए बिना उन्हें हमारे हवाले कर दे। वातावरण बनाकर ये दूत दरबार में पहुँचे, फिर अपना मक़सद बयान किया कि मक्का के बड़ों ने हमें भेजा है कि आप हमारे आदमियों को हमारे साथ वापस कर दें। दरबारियों और पादरियों ने ताईद की। नज्जाशी ने दोतरफ़ा बात सुने बिना कार्रवाई करने से इनकार कर दिया।

दूसरे दिन दोनों फ़रीक़ दरबार में तलब किए गए। मुसलमानों को जब हुक्म मिला तो उन्होंने अपने और ईसाई बादशाह के धार्मिक मतभेदों को सामने रखकर मशविरा किया। तय पाया कि इस दरबार में वही कुछ कहेंगे, जो कुछ ख़ुदा के नबी (सल्ल०) ने हमें सिखाया है, फिर जो हो, सो हो। यह होती है ईमानवालों की रविश। दरबार में पहुँचे तो तयशुदा शिष्टाचार के अनुसार बादशाह को सज्दा नहीं किया। दरबारियों ने बुरा माना और सवाल किया कि सज्दा करने से रुके क्यों? हज़रत जाफ़र मुसलमानों के उस वक़्त नुमाइन्दे थे। उन्होंने निडर होकर जवाब दिया कि हम लोग सिवाए अल्लाह के और किसी को, यहाँ तक कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को भी, सज्दा नहीं करते। रिश्वत, चापलूसी और ख़ुशामद से काम लेनेवालों के मुक़ाबले में सिद्धांत और नियम पर आधारित यह रवैया कितना मुमताज़ नज़र आता है।

अब मक्का के दूतों ने अपना दावा पेश किया कि ये मुहाजिर हमारे भगोड़े अपराधी हैं। इन्होंने नया धर्म गढ़ लिया है और एक बिगाड़ पैदा करनेवाला तूफ़ान खड़ा कर दिया है, इसलिए इनको हमारे हवाले किया जाए।

हज़रत जाफ़र (रज़ि०) उठे और इजाज़त तलब की कि पहले वह मक्का के दूतों से कुछ सवाल कर लें। इजाज़त मिल गई। उन्होंने एक-एक करके कुछ सवाल पूछे और सबका जवाब मक्का के दूतों को नहीं में देना पड़ा। पूछा, क्या हम किसी के ग़ुलाम हैं, जो आक़ा से भाग आए हैं? क्या हम किसी को नाहक़ क़त्ल करके आए हैं? क्या हम किसी का कुछ माल लेकर आए हैं? इनमें से कोई भी बात सही है तो हमें वापस भेज दिया जाना चाहिए।

जब पोज़ीशन पूरी तरह साफ़ हो गई, तो अब हज़रत जाफ़र ने शाह और

दरबारियों के सामने यह भाषण दिया—

"ऐ बादशाह ! हम एक जाहिल क़ौम थे, बुत पूजते थे, मुर्दार खाते थे, बदकारियाँ करते थे, पड़ोसियों को सताते थे, भाई-भाई पर ज़ुल्म करता था। मज़बूत लोग कमज़ोरों को खा जाया करते थे। इस बीच हमारे दरमियान एक व्यक्ति पैदा हुआ, जिसकी सज्जनता, सच्चाई और दयानत को हम लोग पहले से ही जानते थे। उसने हमको इस्लाम की दावत दी और यह सिखाया कि हम पत्थरों को पूजना छोड़ दें, सच बोलें, खूँरेज़ी से बाज़ आएँ, यतीमों का माल न खाएँ, पड़ोसियों को आराम दें, पाकदामन औरतों पर बदनामी का दाग़ न लगाएँ। नमाज़ पढ़ें, रोज़े रखें, सदक़ा दें। अतः हमने शिर्क और बुतपरस्ती छोड़ दी और तमाम बुरे कामों से रुक गए। यह है हमारा जुर्म, जिसकी वजह से हमारी क़ौम हमारी दुश्मन बन गई और हमको मजबूर करती है कि फिर उसी गुमराही की ओर लौट जाएँ। इसलिए हम अपना ईमान और अपनी जानें लेकर आपकी ओर हिजरत कर आए हैं। यह है हमारी कहानी।"

बात सच्ची हो और कहनेवाला भावनाओं को उंडेल दे तो अनिवार्य रूप से वह असर करती है। नज्जाशी का दिल नरम पड़ गया। उसने क़ुरआन सुनने की फ़रमाइश की। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) ने सूरा मरयम का एक हिस्सा पढ़ा। अल्लाह की आयतों को सुनकर नज्जाशी की आँखें डबडबा गईं। वह पुकार उठा, "ख़ुदा की क़सम ! यह कलाम और इंजील दोनों एक ही चिराग के प्रतिबिम्ब हैं।" बल्कि यह भी कहा कि "मुहम्मद तो वही रसूल हैं जिनकी ख़बर ईसा मसीह ने दी थी। अल्लाह का शुक्र है कि मुझे इस रसूल (सल्ल०) का ज़माना मिला।" साथ ही यह फ़ैसला सुना दिया कि मुहाजिरों को वापस नहीं किया जा सकता।

नाकामी की चोट खाकर मक्का के दूतों ने दरबारियों और पादरियों से मशविरा किया और तय हुआ कि कल फिर दरबार में मुसलमानों से हज़रत ईसा के बारे में उनका अक़ीदा मालूम किया जाय, मुमकिन है कि नज्जाशी के अन्दर तास्सुब की आग भड़क उठे।

दूसरे दिन दरबार में जाकर अम्र बिन आस ने यही किया और बादशाह के कान भरे कि मुसलमान हज़रत ईसाई (अलै०) के बारे में बड़ा ख़राब अक़ीदा रखते हैं। नज्जाशी ने दुबारा मुसलमानों को बुलवाया और उनसे पूछा, मुसलमानों का फिर यही फ़ैसला था कि नतीजा चाहे कुछ भी हो, बात वही कही जाए, जो हक़ है। हज़रत जाफ़र ने दरबार में कहा—

"हमारे पैग़म्बर ने बताया कि हज़रत ईसा (अलै०) ख़ुदा के पैग़म्बर हैं और अल्लाह का कलिमा हैं।"

नज्जाशी ने ज़मीन से एक तिनका उठाया और कहा, "अल्लाह की क़सम ! जो तुमने कहा है, ईसा उससे इस तिनके भर भी ज़्यादा नहीं है।"

हुक्म दिया कि तमाम तोहफ़े मक्कावालों को वापस कर दिए जाएँ।

मक्का के दूत मुँह लटकाए वापस आ गए।

# हालात का ज़बरदस्त उतार-चढ़ाव

कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई काम जब तरक़्क़ी करता है तो जलनेवालों और दुश्मनों का विरोध और बढ़ जाता है, यही मक्का में हुआ। दो मुख्य व्यक्तियों का ख़ुदापरस्तों की पार्टी में आ मिलना जहाँ क्रान्ति-दूत और आपके साथियों के लिए ताक़त मिलने की वजह बना, वहाँ इस्लामी आंदोलन की इस नई दिशा ने विरोधियों को और ज़्यादा गतिशील कर दिया।

प्यारे नबी (सल्ल०) के प्यारे चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) ने दूसरे सरदारों की तरह न दुश्मनी की और न किसी ज़ालिमाना कार्रवाई में हिस्सा लिया, पर उनकी रुचि ज़्यादातर सैर-सपाटे और शिकार में थी, इस वजह से सत्य-व्यवस्था की दावत पर भी पूरी तवज्जोह न हुई थी। एक दिन हमेशा की तरह शिकार से वापस आ रहे थे कि अब्दुल्लाह बिन जुदआन की लौंडी रास्ते में मिली और उसने ताना देते हुए कहा, "अबू अम्मारा! काश तुम थोड़ी देर पहले आते तो देखते कि अबू जहल ने तुम्हारे भतीजे मुहम्मद (सल्ल०) के साथ क्या व्यवहार किया।"

फिर विस्तार में बताया कि "मुहम्मद (सल्ल०) सफ़ा पहाड़ी के पास से गुज़र रहे थे कि अबू जहल ने उनपर गालियों की बौछार शुरू कर दी, फिर उनपर मिट्टी और गोबर फेंका और शारीरिक पीड़ा भी पहुँचाई।" वह कहने लगी, "अफ़सोस कि बनू हाशिम के इस यतीम की हिमायत में कोई हाथ न उठा।"

हज़रत हमज़ा गुस्से से भर उठे और उसी हालत में कमान हाथ में लिए काबा की ओर लपके। अबू जहल अभी वहीं था और क़ुरैश के साथ बकवासें कर रहा था। हज़रत हमज़ा ने आगे बढ़कर अपनी कमान इस ज़ोर से उसके सिर पर दे मारी कि वह लहूलुहान हो गया। साथ ही कहा कि "तुम मुहम्मद को गालियाँ देते हो। आज से मेरा दीन भी वही है, जो मुहम्मद का है। तुझमें हिम्मत है तो मुझे इससे रोक के दिखा।" बनू मख़्ज़ूम के कुछ लोग अबू जहल की हिमायत के लिए उठे पर ख़ुद अबू जहल ने उनको रोका कि "अबू अम्मारा को छोड़ दो। मैंने वाक़ई इसके भतीजे को बहुत गालियाँ दी हैं, इसलिए इसको गुस्सा आ गया है।"

यहाँ से हज़रत हमज़ा सीधे हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँचे और कहा कि "भतीजे! ख़ुश हो जाओ कि मैंने अम्र बिन हिशाम से तुम्हारा बदला ले लिया है।"

जवाब मिला कि "चचा जान! मेरी ख़ुशी तो इसमें है कि आप बुतपरस्ती छोड़कर दीने हक़ को अपना लें।"

विचार कीजिए, अपनी निजी भावनाओं की तसकीन का कोई शौक़ नहीं, प्यारे नबी (सल्ल०) को सिर्फ़ दीन की तरक़्क़ी और एक क़रीबी रिश्तेदार की भलाई और असल कामयाबी मंज़ूर है। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) रात भर बेचैन रहे, सुबह प्यारे नबी (सल्ल०) की सेवा में पहुँचकर दीने हक़ क़बूल कर लिया।

हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने की ख़बर मक्का के मुशरिकों के लिए दुख और रंज की वजह बनी, पर प्यारे नबी (सल्ल०) के इंक़िलाबी ख़ेमे में ख़ुशी की लहर दौड़ गई।

इस घटना की प्रतिक्रिया में अबू जहल की दुश्मनी और भड़क उठी। गुस्से में उसने एलान कर दिया कि जो आदमी मुहम्मद को ख़त्म करके उसका सर मेरे पास लाएगा, सौ लाल ऊँट या हज़ार औक़िया चाँदी इनाम में दूँगा। ख़ास तौर पर अबू जहल ने उमर को, जो उसके नौजवान भांजे थे, बहुत उत्तेजित किया। उमर तलवार सौंतकर उठे कि अच्छा मैं इस काम को अंजाम दूँगा।

सीधे हज़रत अरक़म (रज़ि०) के घर की ओर चले। रास्ते में उनके क़बीले के एक दोस्त नुऐम बिन अब्दुल्लाह मिल गए। उनके पूछने पर उमर ने बताया कि मुहम्मद को क़त्ल करने जा रहा हूँ। नुऐम ने कहा कि पहले अपने घरवालों की तो ख़बर लो! उमर ने हैरत से पूछा, "मेरे कौन से घरवाले?" नुऐम ने बताया कि तुम्हारी बहन फ़ातिमा और बहनोई सईद बिन ज़ैद, दोनों मुसलमान हो चुके हैं और मानव-कल्याण की ओर बुलानेवाले की पैरवी करनेवालों में शामिल हो चुके हैं।

हज़रत उमर ने अरक़म के घर का विचार छोड़कर अपने बहनोई के घर का रुख़ किया। मियाँ-बीवी दोनों हज़रत ख़ब्बाब बिन अरत्त (रज़ि०) से क़ुरआन मजीद सीख रहे थे। दरवाज़े पर ज़ोर से दस्तक हुई। महसूस हो गया कि यह उमर की दस्तक है। हज़रत ख़ब्बाब बिन अरत्त (रज़ि०) घर के पिछले हिस्से में चले गए। क़ुरआन के पन्ने हज़रत फ़ातिमा ने छिपा दिए, फिर दरवाज़ा खोल दिया गया।

उमर ने गज़बनाक होकर कहा, "मैंने सुना है कि तुम दोनों मुसलमान हो गए हो। तुम्हें इस हरकत का मज़ा चखाने आया हूँ।" फिर वह हज़रत सईद पर टूट पड़े। लंबे बाल पकड़कर उनको ज़मीन पर दे मारा और बेतहाशा पीटना शुरू कर दिया। हज़रत फ़ातिमा शौहर को छुड़ाने के लिए आगे बढ़ीं, तो भाई के डंडे की एक चोट फ़ातिमा के चेहरे पर पड़ी। वह लहूलुहान हो गईं, पर उनके दृढ़ निश्चय का यह हाल था कि पुकार उठीं, "हाँ, हमने इस्लाम को अपना लिया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की पैरवी में दाख़िल हो गए हैं। अब तुम जो कुछ चाहे कर

लो। हिदायत का यह चिह्न हमारे सीनों से नहीं मिट सकता।"

ख़ून में नहाई बहन ने डबडबायी आँखों के साथ यह दृढ़ निश्चई वाक्य कहा, तो हीरे का जिगर फूल की पत्ती से कट गया। ग़ुस्से की जगह लज्जा उभरी। प्यार से कहने लगे, अच्छा, तो जो कुछ तुम पढ़ रहे थे, मुझे भी दिखाओ। हज़रत फ़ातिमा ने कहा कि "मुझे डर है कि तुम उसको नष्ट कर दोगे। उमर ने अपने माबूदों की क़सम खाकर कहा कि मैं इसे पढ़कर वापस कर दूँगा। हज़रत फ़ातिमा को अब कुछ उम्मीद बँधी कि शायद भाई हिदायत की राह अपना ले। फिर उन्होंने कहा कि उमर! यह ख़ुदा का कलाम है। जब तक तुम नहा करके बदन पाक न करोगे इसे छू नहीं सकते।

उमर ने ग़ुस्ल किया। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने किताब के पन्ने सामने रखे। रिवायतों में दो सूरतों के नाम हैं। कहा गया है कि इन पन्नों में सूरा 'ता०हा०' लिखी हुई थी और यह भी कहा गया है कि 'अल-हदीद' थी। बहरहाल बिसमिल्लाहिर्रमानिर्रहीम कहते ही उनका शरीर सिंहर उठा, फिर ज्यों-ज्यों उमर तिलावत करते गए, क़ुरआन की शान, ज़ोर और भाषा का प्रवाह और रस उमर के मन को छूता चला गया, यहाँ तक कि उनकी आँखों में आँसू भर आए और वह पुकार उठे—

"अश्हदु अल-लाइला-ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन-न मुहम्मदर-रसूलुल्लाह।"

(मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई उपास्य नहीं और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद सल्ल० अल्लाह के रसूल हैं।)

अब हज़रत ख़ब्बाब बिन अरत्त (रज़ि०) सामने आ गए। उन्होंने कहा, "उमर! मुबारक हो! हुज़ूर (सल्ल०) ने कल दुआ माँगी थी कि अल्लाह उमर बिन हिशाम (अबू जहल) या उमर बिन ख़त्ताब में से जिसको तू चाहे इस्लाम के दायरे में भेज दे।"

हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) के साथ उमर (रज़ि०) हुज़ूर के पासा पहुँचे। दाख़िल हुए तो प्यारे नबी (सल्ल०) ने पूछा, "उमर! किस नीयत से आए हो?" धीमी आवाज़ में बोले, "अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाने के लिए।"

यह सुनकर प्यारे नबी (सल्ल०) के तमाम सहाबी ख़ुशी से अल्लाहु अकबर पुकार उठे।

दूसरी रिवायतों से मालूम होता है कि इस्लाम पहले ही से हज़रत उमर (रज़ि०) के दिल में रास्ता बना रहा था। उनका आन्तरिक संघर्ष ही उनको यहाँ तक ले आया और घटनाओं ने अचानक उनकी ज़िंदगी का रुख़ फेर दिया। ख़ास

बात यह है कि ठीक उस वक़्त हज़रत उमर (रज़ि०) ईमान ले आए, जबकि मुसलमानों पर बेइन्तिहा ज़ुल्म हो रहा था। उमर (रज़ि०) जैसा व्यक्ति क्रान्ति से दोचार हो तो यह कैसे सम्भव है कि माहौल में कोई नया ज्वारभाटा न पैदा हो। उन्होंने विचार करके अन्दाज़ा किया कि क़ुरैश में जमील बिन मअ्मर जुमही बात को अच्छी तरह फैला सकता है। सुबह-सुबह उसके यहाँ पहुँचे और उसे बताया कि मैं मुहम्मद (सल्ल०) के दीन में दाख़िल हो गया हूँ। जमील जल्दी से चादर समेट मस्जिदे हराम में पहुँचा और गला फाड़कर एलान किया कि ऐ गिरोहे क़ुरैश ! उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) साबी (विधर्मी) हो गया है।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने पुकारकर कहा यह ग़लत कहते हैं, "मैं मुसलमान हूँ।"

क़ुरैश के लोग उनपर टूट पड़े। हज़रत उमर (रज़ि०) अकेले ही ख़ूब लड़े। इसी बीच एक क़ुरैशी सरदार आस बिन वाइल सहमी पहुँचा। उसने मालूम किया, मामला क्या है ? बात समझ ली तो कहा कि इस व्यक्ति ने अपने लिए एक रास्ता पसन्द कर लिया है, तो अब तुम्हें क्या ?

हज़रत उमर (रज़ि०) ने मार तो खाई, पर हरम में खुलेआम नमाज़ पढ़ने का एलान कर दिया। दूसरे मुसलमान भी नमाज़ के लिए हरम में जमा होने लगे। हालात में कितनी बड़ी तबदीली थी।

हक़ के दुश्मन अपनी सारी तदबीरों के बावजूद यह मंज़र देख रहे थे कि हक़ का सैलाब आगे ही आगे बढ़ रहा है और एक क्रान्ति चुपके-चुपके बड़े व्यक्तियों को अपनी लपेट में ले रही है। अब उन्होंने इस तबदीली के सामने बाँध बाँधने के लिए एक नया क़दम उठाया।

नुबुव्वत के सातवें साल के मुहर्रम महीने में मक्के के तमाम क़बीलों ने मिलकर एक समझौता किया कि बनू हाशिम से बाईकाट किया जाए, न उनसे रिश्तेदारी रखी जाए, न शादी-ब्याह का ताल्लुक़, न लेन-देन, न मिलना-जुलना और न खाने-पीने का कोई सामान उन तक पहुँचने दिया जाए, यहाँ तक कि बनू हाशिम मुहम्मद को हमारे सुपुर्द कर दें कि हम उन्हें क़त्ल कर दें। समझौता लिखित था। यह दौर तीन वर्ष के बाद ख़त्म हुआ।

बनू हाशिम ने बेबस होकर शेबे अबी तालिब में पनाह ली, मानो पूरा ख़ानदान इस्लामी आंदोलन के सबसे बड़े दावत देनेवाले की वजह से एक तरह की क़ैद या नज़रबन्दी में डाल दिया गया। इस नज़रबन्दी का दौर लगभग तीन वर्ष का था। इस दौर में जो हाल हुआ, उसे जानकर पत्थर भी पिघलने लगें। पेड़ों के पत्ते तक खाए गए, सूखे चमड़े के टुकड़े उबाल-उबालकर पेट भरा गया।

मासूम बच्चे जब भूख के मारे बिलखते तो क़ुरैश उनकी आवाज़ों पर ख़ुशी से झूम उठते।

एक बार हकीम बिन हिज़ाम ने अपनी फूफी हज़रत ख़दीज़ा की ख़िदमत में कुछ गेहूँ अपने ग़ुलाम के हाथ चोरी-छिपे भेजे। रास्ते में अबू जहल ने देख लिया और गेहूँ छीनने लगा। अबू बख़्तरी का गुज़र हुआ। उसने अबू जहल से कहा कि छोड़ो भी, भतीजे ने फूफी के लिए गेहूँ भेजे हैं, तो क्या हुआ। इसी तरह हिशाम बिन अम्र भी चोरी-छिपे नज़रबन्दों के लिए कुछ अन्न भिजवाते।

यही हिशाम बिन अम्र इस ज़ालिमाना समझौते को निरस्त करने के लिए उठा। असल में एक ज़ुल्म जब बराबर जारी रहता है, तो धीरे-धीरे मानव स्वभाव उसके ख़िलाफ़ अच्छी भावनाएँ उभार देता है। यह व्यक्ति ज़ुहैर बिन अबी उमैया के पास गया और बड़ी प्रभावपूर्ण बातचीत की। फिर उसने मुतइम बिन अदी के साथ मुलाक़ात की। फिर अबुल बख़्तरी और ज़मआ बिन असवद को हमवार किया गया।

हाशिम ने अपने हामियों के मशविरे से पूरी स्कीम बनाने के बाद एक दिन काबे का तवाफ़ किया और फ़ारिग़ होकर मज्मे की ओर आया और कहा कि मक्कावालो! क्या यह उचित है कि हम खाना खाएँ और कपड़े पहनें और बनू हाशिम भूख से तड़प रहे हों और वे कुछ ख़रीद भी न सकें। फिर उसने ललकार कर कहा कि "ख़ुदा की क़सम! मैं उस वक़्त तक न बैठूँगा, जब तक कि ताल्लुक़ात को तोड़ देनेवाले इस ज़ालिमाना लेख-पत्र को टुकड़े-टुकड़े न कर दूँ।"

अबू जहल झल्ला उठा और चीख़कर बोला—

"झूठे हो तुम, ख़ुदा की क़सम! तुम उसे फ़ाड़ नहीं सकते।"

ज़मआ बिन असवद ने अबू जहल को जवाब दिया—

"तुम ख़ुदा की क़सम! सबसे ज़्यादा झूठे हो। यह समझौता जिस ढंग से तैयार किया गया है, हम उसे पसन्द नहीं करते हैं।"

अबू बख़्तरी बोल पड़ा, "ठीक कहता है, ज़मआ बिन असवद, न हम इसको पसन्द करते हैं और न हम इसको मानते हैं।"

मुतइम ने भी ताईद की। हिशाम ने और भी ताईद की, अधिक लोगों को यूँ विरोधी पाकर जब अबू जहल ने देखा कि धरती पाँव तले से सरक रही है, तो वह बेबस हो गया। अब समझौते को काबे की दीवार से लोग उतारने को गए तो यह देखकर हैरान रह गए कि उसे दीमक चाट चुकी थी। सिर्फ़ "अल्लाह के नाम" के शब्द बाक़ी थे। हफ़ीज़ जालंधरी के लफ़्ज़ों में—

"जो फ़ानी था, सो फ़ानी था, जो बाक़ी था, सो बाक़ी था।"

नज़रबन्दी के दौर का ख़ात्मा हो गया और ख़ुदा का वह नबी (सल्ल०) जो सारी मानवता का उपकारी था, अपने घरवालों सहित आज़ादी का फ़िज़ा में दाख़िल हुआ। यह नुबुव्वत का दसवाँ साल था, जबकि पहले से ज़्यादा सख़्त दौर की शुरुआत होनेवाली थी।

इस साल में सबसे पहला हादसा यह हुआ कि हज़रत अली के बाप अबू तालिब की वफ़ात हो गई, दूसरा हादसा हज़रत ख़दीजा की वफ़ात का था।

अबू तालिब विरोधियों के मुक़ाबले में प्यारे नबी (सल्ल०) के लिए ढाल बने रहे। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) सिर्फ़ प्यारे नबी (सल्ल०) की बीवी ही नहीं थीं, बल्कि पहली ईमानवाली महिला भी थीं और सही अर्थों में दुख-दर्द की साथी। आख़िर दम तक सच्चे साथ का हक़ अदा कर गईं। इस्लामी आंदोलन के लिए माल भी ख़र्च किया, क़दम-क़दम पर मशविरे भी दिए, हिम्मत भी दिलाई, मदद भी की और उन्हीं से प्यारे नबी (सल्ल०) की औलाद हुई।

इन दो ज़ाहिरी सहारों के हट जाने की वजह से विरोध का तूफ़ान और ज़्यादा तेज़ी पकड़ गया। प्रकृति ने शायद यह चाहा हो कि सच्चाई अपना रास्ता आप बनाए, नेकी अपनी हिफ़ाज़त ख़ुद करे।

ऊपर की दोनों दुखद घटनाओं की वजह से इस साल को "ग़म का साल" कहा जाता है। इस साल के बाद ज़ुल्म और सितम की कार्रवाइयाँ तेज़ से तेज़तर हो गईं।

अब क़ुरैश इंतिहाई घटिया हरकतों पर उतर आए। लौंडों के झुंड के झुंड प्यारे नबी (सल्ल०) के पीछे लगा दिए जाते, जो शोर मचाते और नमाज़ के दौरान तालियाँ पीटते और सीटियाँ बजाते। रास्ता चलते हुए प्यारे नबी (सल्ल०) पर गन्दगी फेंक दी जाती, गालियाँ दी जातीं। कुछ गन्दे स्वभाव के भी थे, जो प्यारे नबी (सल्ल०) पर थूक देते।

एक बार अबू लहब की बीवी उम्मे जमील पत्थर लिए प्यारे नबी (सल्ल०) की खोज में हरम तक आई कि बस एक ही वार में काम-तमाम कर दे, पर प्यारे नबी (सल्ल०) के मौजूद होने के बावजूद वह न देख सकी।

उसने एक अरबी पद कहकर आपके बारे में यह विचार व्यक्त किए—

"हमने सर्वाधिक निंदित व्यक्ति से मुँह मोड़ा, उसकी पुकार को न सुना और उसके 'दीन' (धर्म) से घृणा की।"

एक बार अबू जहल प्यारे नबी (सल्ल०) को पत्थर से हलाक करने का इरादा

करके पहुँचा, पर ख़ुदा ने ऐसा रौब डाल दिया कि वह कुछ न कर सका।

एक बार पूरी टोली बैठी थी कि प्यारे नबी (सल्ल०) का गुज़र हुआ। उन्होंने पूछा कि तुम ऐसा और ऐसा कहते हो। प्यारे नबी (सल्ल०) ने हक़परस्ताना जुर्रत के साथ कहा कि "हाँ, मैं ऐसा कहता हूँ।" पूरी टोली आपपर टूट पड़ी। जब हमलावर रुक गए, तो फिर उनसे फ़रमाया कि 'मैं तुम्हें पैग़ाम देता हूँ कि तुम ज़बह हो जानेवाले हो।"

हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल०) अल्लाह के घर का तवाफ़ कर रहे थे। क़ुरैश के कुछ सरदार हतीम में बैठे थे। जब प्यारे नबी (सल्ल०) उनके सामने से गुज़रते तो वे बुरी बातें ज़बानों पर लाते। तीन बार ऐसा हुआ आख़िरी बार प्यारे नबी (सल्ल०) ने नाराज़ होकर कहा कि "ख़ुदा की क़सम ! तुम बग़ैर इसके बाज़ न आओगे कि ख़ुदा का अज़ाब जल्द तुमपर टूट पड़े।" हज़रत उसमान (रज़ि०) कहते हैं कि हक़ का रौब था कि उनमें से हर आदमी काँप रहा था। अपनी बात कहकर प्यारे नबी (सल्ल०) घर को चले तो हज़रत उसमान और दूसरे लोग साथ हो लिए। इस मौक़े पर प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तुम लोगों को ख़ुशख़बरी हो, अल्लाह यक़ीनन अपने दीन को ग़ालिब करेगा, अपने दीन की मदद करेगा और ये लोग जिन्हें देखते हो अल्लाह उनको बहुत जल्द तुम्हारे हाथों से ज़बह कराएगा।"

देखने में माहौल कितना निराशाजनक था, पर नुबुव्वत की निगाह भविष्य को देखकर ऐसे ही माहौल में एक यक़ीनी बशारत (शुभ-सूचना) दे रही थी।

# तायफ़ का सफ़र

प्यारे नबी (सल्ल०) एक दिन सुबह ही घर से निकले और सुख-शान्ति का ख़ुदाई पैग़ाम सुनाने के लिए अनेक मुहल्लों और कूचों में फिरे, लेकिन पूरा दिन इस तरह बीता कि आपको एक व्यक्ति भी ऐसा न मिला जो बात सुनता। विरोधियों ने नई स्कीम यह बनाई कि मुहम्मद (सल्ल०) को जब कोई आता देखे, तो इधर-उधर सरक जाए। अगर कोई मिला भी तो उसने उपहास और गुंडागर्दी का प्रदर्शन किया। जिनकी भलाई के लिए प्यारे नबी (सल्ल०) गली-गली घूम रहे थे, वे अपनी भलाई से ख़ुद भाग रहे थे। उस दिन जब आप घर वापस हुए तो तबियत में बड़ी घुटन थी।

इसका दूसरा मतलब यह था कि मक्का की खेती अब बंजर होती जा रही थी। तमाम अच्छे तत्त्व प्यारे नबी (सल्ल०) के चारों ओर सिमट आए थे, बाक़ी ज़्यादातर कूड़ा-करकट रह गया था। शायद इसी दुखद तजुर्बे से प्रभावित होकर आपने मक्का से बाहर जाकर दावत फैलाने का प्रोग्राम बनाया। मक्का हक़ की दावत के लिए कुछ ऐसा बंजर हो गया था कि नया मैदान खोजने के लिए एक दिन ज़ैद बिन हारिसा को साथ लेकर प्यारे नबी (सल्ल०) तायफ़ रवाना हो गए।

यह कठिन यात्रा पैदल तय की और रास्ते में जो क़बीले आबाद थे, उनके सामने अल्लाह की हिदायत रखी। आने-जाने में लगभग एक महीना लग गया।

तायफ़ बड़ा हरा-भरा क्षेत्र था। वहाँ ख़ुशहाली थी, इसलिए लोग ख़ुदा को भूले हुए थे, चरित्र और नैतिकता के बंधनों से आज़ादी हासिल किए हुए थे। फिर सूदख़ोरी की आदत ने तायफ़वालों की मानवीय भावनाओं को बहुत दबा दिया था।

तायफ़ पहुँचकर प्यारे नबी (सल्ल०) ने बनू सक़ीफ़ के सरदारों से मुलाक़ात की। ये थे अब्दे या लैल, मसऊद और हबीब। एक के घर में क़ुरैश की एक औरत बनू जम्ह में से थी। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इन्हें बड़ी ख़ूबसूरती से अल्लाह के दीन की बात बताई और उनसे हिमायत तलब की।

ये बिलकुल उल्टी खोपड़ी के निकले। एक ने कहा—

"अगर वाक़ई ख़ुदा ने ही तुमको भेजा है, तो वह काबे का ग़िलाफ़ टुकड़े-टुकड़े कराना चाहता है।"

दूसरा बोला—

"अरे, क्या ख़ुदा को तुम्हारे अलावा रिसालत के लिए कोई मुनासिब आदमी

न मिल सका।"

और तीसरे ने यूँ ज़बान खोली—

"मैं तो तुमसे बात नहीं करूँगा। अगर तुम वाक़ई रसूल हो तो, तुम जैसे आदमी को जवाब देना बेअदबी है। और अगर तुमने ख़ुदा पर झूठ बाँधा है तो तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि बात की जाए।"

ज़हर में बुझे हुए ये तीर नबी (सल्ल०) के ज़ेहन में गड़ गए।

पर आपने बड़े धैर्य से फ़रमाया कि "अच्छा, ख़ैर तुम अपनी ये बातें अपने ही तक रखो और आम लोगों में न फैलाओ।"

पर इन ज़ालिमों ने अपने यहाँ के घटिया और बाज़ारी लौंडों, नौकरों और ग़ुलामों को उकसाकर आपके पीछे लगा दिया कि जाओ इस व्यक्ति को बस्ती से निकाल आओ। गुंडों की टोली आपके आस-पास जमा हो गई। गालियाँ देने और तालियाँ पीटने के अलावा ये लोग प्यारे नबी (सल्ल०) पर पत्थर बरसा रहे थे, निशाना लगाकर टखनों पर मारते ताकि ज़्यादा तकलीफ़ पहुँचे। प्यारे नबी (सल्ल०) जब निढाल होकर बैठ जाते तो तायफ़ के गुंडे बाज़ू पकड़कर उठा देते, फिर वही पत्थरबाज़ी और पीड़ा पहुँचाने का काम। ख़ून बहुत बह रहा था और प्यारे नबी (सल्ल०) की जूतियाँ अन्दर-बाहर से लहू से भर गई थीं। एक भीड़ तमाशाइयों की भी जमा हो गई। सक़ीफ़ के सरदारों की गुंडा टीम ने आपको शहर से निकालकर उत्बा और शैबा के बाग़ तक पहुँचा दिया। आपने बिलकुल बेसुध होकर अँगूर की एक बेल के तने से टेक लगा ली। ज़ैद बिन हारिसा ने ख़ून साफ़ किया, कुछ बदन को सहलाया। बाग़ के मालिक आपको कुछ दूर से देख रहे थे और जो दुखद घटना घटित हुई थी, उसे भी किसी क़द्र देख चुके थे। इसी मौक़े पर आपने अपनी मशहूर लम्बी दुआ पढ़ी, जिसका एक हिस्सा इस तरह है—

> "ऐ अल्लाह! अपनी ताक़त की कमी, अपनी बेसर व सामानी और लोगों के मुक़ाबले में अपनी बेबसी की फ़रियाद तुझी से करता हूँ, तू ही मेरा मालिक है, आख़िर तू मुझे किसके हवाले करनेवाला है? क्या उस दुश्मन के जो मुझसे बुरे मन से पेश आता है, या ऐसे दुश्मन से जो मेरे मामले पर क़ाबू पाए हुए है? लेकिन अगर मुझपर तेरा ग़ज़ब नहीं, तो मुझे कुछ परवाह नहीं। तेरे ही नूर व जमाल की पनाह तलब करता हूँ, जिससे सारी अंधियारियाँ रौशन हो जाती हैं और जिसके ज़रिए दुनिया के तमाम मामले सँवर जाते हैं—अलावा तेरे, कहीं से कोई ताक़त नहीं मिल सकती।"

बाग़ के मालिकों ने अपने दास अद्दास के हाथ एक तश्तरी में अँगूर भिजवाए। आपने बिसमिल्लाह पढ़कर हाथ बढ़ाया तो ये शब्द सुनकर दास हैरान हुआ। फिर जब उसे बातों-बातों में हुज़ूर (सल्ल०) के नबी होने की जानकारी हुई तो हाथ-पाँव चूमने लगा। एक रंग तायफ़ के सरदारों का था और एक नमूना इस दास का। दास जब वापस बाग़वालों के पास पहुँचा तो उन्होंने उसे डाँटा कि तुम हाथ-पाँव क्यों चूम रहे थे? देखो, अपने 'दीन' से न फिर जाना। अद्दास ने कहा कि 'इससे बढ़कर ज़मीन में कोई चीज़ भली नहीं। उस व्यक्ति ने मुझे एक ऐसी बात बताई है जिसे नबी के सिवा कोई नहीं जान सकता।

वहाँ से ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) ने आपको कंधों पर उठाकर क़र्नुस्सअ्लब नामी जगह तक पहुँचाया, जहाँ ख़ून को धोया और आप (सल्ल०) ने कुछ आराम किया। यहाँ ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया कि तायफ़वालों के लिए बद्दुआ कीजिए। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इनकार फ़रमा दिया और भविष्य को सोचकर फ़रमाया कि अगर ये लोग ख़ुदा पर ईमान नहीं लाते, तो उम्मीद है कि इनकी नस्लें ज़रूर एक ख़ुदा की इबादत करनेवाली होंगी। सोचिए! कितने लोग होंगे जो किसी के हक़ में नेकी करने जाएँ और आगे से तौहीन भरा ज़ालिमाना व्यवहार हो, तो फिर भी उनकी भावनाओं में कोई उग्रता न आए और बदले की कोई भावना न उभरे। एक इसी घटना से अन्दाज़ा किया जा सकता है कि मानवता की सेवा के लिए जो हस्ती उठी थी, वह कितनी महान और श्रेष्ठ थी।

क़र्नुस्सअ्लब से दो व्यक्तियों का यह काफ़िला नख़ला को रवाना हुआ। यहाँ किसी मौक़े पर जिबरील (अलै०) आए और बताया कि पहाड़ों का इंचार्ज फ़रिश्ता हाज़िर है। अगर आप इशारा करें तो वह इधर और उधर के पहाड़ों को मिला दे और मक्का और तायफ़ दोनों को पीसकर रख दे, पर आपने यह बात स्वीकार नहीं की।

फिर इसी सफ़र में एक जगह पर जिन्नों की एक जमाअत आकर क़ुरआन सुनती है और हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ पर ईमान लाती है। इस तरह ख़ुदा ने प्यारे नबी (सल्ल०) पर यह स्पष्ट किया कि अगर तमाम इनसान सत्य-सन्देश को रद्द कर दें तो हमारी दूसरी मख़लूक़ रचनाएँ ऐसी मौजूद हैं जो आपकी पुकार का जवाब देंगी।

प्यारे नबी (सल्ल०) कई दिन नख़ला नामी जगह पर रहे, फिर वहाँ से चले तो सीधे हिरा की गुफ़ा में पहुँचे। यहाँ से मुतइम बिन अदी की हिमायत में आप हरम में तशरीफ़ लाए, जबकि अदी के बेटे हथियार लगाकर साथ-साथ घूम रहे थे। शहर में आकर पहले आपने हरम में नमाज़ अदा की, फिर घर तशरीफ़ ले गए।

तायफ़ में प्यारे नबी (सल्ल०) पर जो गुज़री, उसे कुछ शब्दों में समेटकर आप तक पहुँचाया है। इन शब्दों से हम उस बेचैनी का अन्दाज़ा नहीं कर सकते जो प्यारे नबी (सल्ल०) को वहाँ के सरदारों की घटिया बातें और अमानवीय व्यवहार से पहुँची और न उन घावों की टीसों को अपने देहों में महसूस कर सकते हैं, जो टख़नों पर लगनेवाले पत्थरों का नतीजा थे।

एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) ने मालूम किया, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! क्या आपपर उहुद के दिन से भी सख़्त दिन कोई गुज़रा है? फ़रमाया, तेरी क़ौम की ओर से और तो जो तकलीफ़ पहुँची, सो पहुँची, पर सबसे बढ़कर सख़्त दिन वह था जब मैंने तायफ़ में अब्द या लैल के बेटे के सामने दावत रखी और उसने उसे रद्द कर दिया। इस दर्जे का सदमा हुआ कि क़र्नुस्सुअ्लब के स्थान पर जाकर मुश्किल से तबियत सँभली।

तायफ़ से वापस आकर प्यारे नबी (सल्ल०) इसके बजाए कि दिल तोड़कर बैठे रहते, आपने और ज़्यादा सरगर्मी से काम शुरू कर दिया। ख़ुदा के हौसलामंद पैग़म्बर, जो दुनिया भर के हितैषी होते हैं और पूरी मानव-जाति के लिए हित व कल्याण की राहें खोलने को उठते हैं, उनका निश्चय व संकल्प एक रास्ता बन्द होने पर नया रास्ता निकाल लेता है।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने जब मक्का के बाद तायफ़ को भी बंजर पाया तो यह तरीक़ा अपनाया कि शहर मक्का से बाहर किसी भी ऐसे रास्ते पर निकल जाते, जिस पर आना जाना होता हो। कोई भी मुसाफ़िर बाहर से आता, उसे अपना पद और सन्देश बताते और कभी किसी पड़ोसी बस्ती में जाकर वहाँ के क़बीले के सरदार से बात करते, साथ ही आपने मक्का के आस-पास के 14-15 क़बीलों तक अपनी दावत पहुँचाई।

उस ज़माने में आप क़बीला किन्दा की बस्ती में चले गए। क़बीले का सरदार मलीह था। इसी तरह क़बीला अबू अब्दुल्लाह तक भी पहुँचे। वहाँ बड़े दिलचस्प तरीक़े से बातें कीं। फ़रमाया, "तुम लोगों के दादा का नाम अब्दुल्लाह था। तुम उस नाम की लाज रखो और उस नाम के मुताबिक़ अपनी ज़िन्दगी को ढाल लो।"

फिर किसी मौक़े पर आप क़बीला बनू हनीफ़ा के इलाक़े में पहुँचे। वहाँ क़बीलेवालों ने आपके साथ तायफ़वालों से भी बढ़कर बुरा व्यवहार किया। याद रहे कि मुसैलमा कज़्ज़ाब, जिसने बाद में नुबुव्वत का झूठा दावा किया, इसी क़बीले का सरदार था।

शेष दूसरे क़बीले के लोगों से हज के मौसम में उनके तम्बुओं तक जा-जाकर

उनसे मुलाकातें कीं और दावत दी। यह सिलसिला पहले की तरह जारी रहा।

समय और काल की वार्ता से हटकर प्यारे नबी (सल्ल०) क़बीला बनू आमिर बिन सअ्सआ के पास गए और उनके सरदार बहैरा बिन फ़रास को इस्लाम की दावत दी। बहैरा ने पूछा कि "अगर मैं आपका साथ दूँ और आपको विरोधियों पर ग़लबा हासिल हो जाए, तो क्या आपके बाद हुकूमत मुझे मिलेगी ? प्यारे नबी (सल्ल०) ने जवाब दिया कि 'यह तो अल्लाह के वश में है, वह जिसे चाहेगा मेरा जानशीं बना देगा।'" असल में बहैरा बिन फ़रास प्यारे नबी (सल्ल०) की दावत का यह मतलब ले रहा था कि उसके नतीजे में प्यारे नबी (सल्ल०) की हुकूमत क़ायम हो सकती है। प्यारे नबी (सल्ल०) ने राजनीतिक सौदेबाज़ी से इनकार कर दिया, क्योंकि 'सच्चा दीन' सौदागरी का कोई सामान नहीं है।

क़बीला बनू हुज़ैल बिन शैबान ने इस्लाम के पैग़ाम को ख़ूब तवज्जोह से सुना। प्यारे नबी (सल्ल०) की बहुत इज़्ज़त की। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी साथ में थे। हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) ने क़बीला के सरदार मफ़रूक़ से प्यारे नबी (सल्ल०) का परिचय कराया कि जिस नबी की चर्चा हर ओर है, वह यही हैं। मफ़रूक़ ने प्यारे नबी (सल्ल०) से पूछा कि आपका पैग़ाम क्या है ? प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह कि अल्लाह एक है और मैं उसका रसूल हूँ।" फिर सूरा अनआम की आयत 152 की तिलावत फ़रमाई। मफ़रूक़ के साथ सरदार मुसन्ना और हानी बिन क़बसिया भी थे। सबने कहा कि "कलाम बहुत अच्छा है, लेकिन हमारे लिए यकायक अपने अक़ीदे को बदल लेना और अपने बाप-दादा का दीन छोड़ देना बहुत मुश्किल है। इसके अलावा किसरा से हमारा समझौता है कि हम उसके सिवा किसी के प्रभावाधीन नहीं होंगे।"

प्यारे नबी (सल्ल०) ने उसकी सीधी-सच्ची बातों को पसन्द फ़रमाया और कहा कि "अपने दीन की अल्लाह आप मदद करेगा।"

14-15 क़बीलों तक आप अपनी दावत पहुँचाने गए। पर इन क़बीलों का दुर्भाग्य कि इनमें से कोई व्यक्ति भी ईमान न लाया, मानो प्रत्यक्ष रूप से ये कोशिश बेअसर जा रही थी। इसके बावजूद कभी भी इस्लाम की शीतल छाया में आने की दावत देनेवाले प्यारे नबी (सल्ल०) पर बेदिली और निराशा की स्थिति नहीं पैदा हुई, जो अमली कोशिशों को ठण्डा करने का कारण बने।

ज़ुल्म जब अपनी इंतिहा को पहुँच गया और कोशिशों के बावजूद, समाज की खेती में दावत का बीज डालने के बावजूद, हरियाली न पैदा हो सकी तो इसका खुला मतलब था कि अब कोई बड़ी घटना घटित होनेवाली है।

# मेराज का वाक़िआ

नियम है कि जब हक़ के दुश्मनों का कष्ट पहुँचाना हद से बढ़ जाता है और जब दुख उठानेवाले ख़ुदापरस्तों की रूहें पुकारती हैं कि "ख़ुदा की मदद क़ब आएगी" तो उन्हें जवाब मिलता है कि "बस अब ख़ुदा की मदद क़रीब आ गई है।" इसी नियम के मुताबिक़ मेराज के शानदार उत्सव में ख़ुदा की ओर से हुज़ूर (सल्ल०) को आगे के लिए खुली ख़ुशख़बरियाँ और हिदायतें दी गईं।

मेराज की हक़ीक़त यह है कि प्यारे नबी (सल्ल०) को ख़ुदा के सान्निध्य का ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ, ग़ैब की दुनिया की सैर कराई गई, ख़ास-ख़ास आयतों और निशानियों का अवलोकन कराया गया और आनेवाले नए दौर के लिए हिदायतें दी गईं।

मेराज एक बड़ा मोजज़ा (चमत्कार) है। प्यारे नबी (सल्ल०) को बहुत-से मोजज़े दिए गए, लेकिन विरोधियों की ओर से मोजज़ों (दैवी चमत्कार) की बार-बार माँग पर आमतौर से इनकार कर दिया गया, क्योंकि मोजज़ा देखकर विरोधी ईमान नहीं लाते, बल्कि उसे जादू कहकर सज़ा के हक़दार बन जाते हैं। प्यारे नबी (सल्ल०) का असल ज़ोर दलीलों पर था, बेहतरीन इनसानी भावनाओं को अपील करने पर, कुफ़्र और शिर्क से भरी ज़िन्दगी की ख़राबियाँ स्पष्ट करने

---

1. कुछ लोग जो हक़ीक़तों की जानकारी नहीं रखते, आपत्ति करते हैं कि इस रद्द व कद् का मक़सद क्या था। इसका मक़सद यह था कि अल्लाह की ओर स्पष्ट किया गया कि एक इनसान को जो स्थान अपने पालनहार के सामने हासिल है और उसकी जिन अनगिनत नेमतों—ज़िंदगी से लेकर ईमान तक और हवा-पानी से लेकर सूरज-चाँद के घूमते रहने और दिन व रात के अदल-बदलकर आने तक—से वह फ़ायदा उठाता है। उनकी वजह से हक़ यही आता है कि वे दिन-रात में 50 बार अपने रब के सामने अपने आपको झुका कर ख़ुदा का शुक्र व ज़िक्र करे। दूसरी ओर यह स्पष्ट होता है कि नबी अपनी उम्मतों के लिए कितने मेहरबान होते हैं कि हज़रत मूसा (अलै०) बार-बार जो मशविरा देते हैं, नबी (सल्ल०) उसके अनुसार ख़ुदा से कमी का निवेदन करते हैं। तीसरे यह कि नबी (सल्ल०) का यह फ़रमाना कि 'अब और ज़्यादा कमी के लिए कहते हुए मुझे शर्म आती है, इससे यह शिक्षा मिलती है कि ख़ुदा की इबादत में हद से ज़्यादा कमी या छूट माँगना भी बन्दे के लिए उचित नहीं। साथ ही यह कि पाँच नमाज़ों की अदाएगी में कोताही करने पर हक़वालों को शर्म आनी चाहिए। चौथे अपने प्यारे नबी (सल्ल०) ने नमाज़ों में कमी करने के लिए जो कोशिश की है, उसकी क़द्र करते हुए पाँच वक़्तों की नमाज़ की अदाएगी में हमें कोई कोताही नहीं करनी चाहिए। पाँचवें यह कि अब हर दिन की पाँच नमाज़ों का अदा करना, सवाब के लिहाज़ से पचास नमाज़ें अदा करने के बराबर माना जाएगा।

पर, ख़ुदापरस्तीवाले चरित्र का प्रदर्शन करने और ज़ुल्म के मुक़ाबले में सब्र दिखाने पर, कोशिश यह की गई कि लोग हक़ को परखकर और हक़ को हक़ समझकर मानें और बातिल को बातिल समझकर छोड़ दें। फिर भी जहाँ और जब अल्लाह ने पसन्द फ़रमाया, प्यारे नबी (सल्ल०) को मोजज़ों से नवाज़ा और ईमानवालों ने और उनके विरोधियों ने अपने-अपने स्वभाव और पात्र के अनुसार उनसे प्रभाव ग्रहण किया।

मेराज का वाक़िआ सन् 50 मीलादी और सन् 10 नबवी में पेश आया। सही तारीख़ के निर्धारण में मतभेद पाए जाते हैं। मशहूर रिवायत के मुताबिक़ तारीख़ 27 रजब थी और दिन सोमवार था। प्यारे नबी (सल्ल०) उम्मे हानी के मकान पर आराम फ़रमा रहे थे कि जिबरील (अलै०) आए, आपको जगाकर साथ ले गए। हरम में सीना चीरकर उसे पाक किया और वह ईमान व हिकमत से भर गया। फिर सवारी के लिए बुराक़ नामी एक जानवर पेश किया। वह इतना तेज़ रफ़्तार था कि इधर प्यारे नबी (सल्ल०) उसपर सवार हुए और उधर बैतुलमक़्दिस जा पहुँचे। यह मानो पहली मंज़िल थी, जहाँ लाने का मक़सद यह था कि इस्लाम के जिस भलाई के राष्ट्रीय आंदोलन को ज़िंदा करने के लिए आख़िरी पैग़म्बर उठा था, उस आंदोलन का एक बड़ा पुराना केंद्र उसे दिखा दिया जाए और हक़ की दावत के पिछले रहनुमाओं से मुलाक़ात कराई जाए। मस्जिदे अक़्सा में पिछले तमाम नबी जमा थे। उन्होंने बड़े प्रेम-भाव से स्वागत किया और जमाअत के साथ दो रकअत नमाज़ अदा की गई, जिसकी इमामत आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने की।

ख़ैर, नमाज़ हो चुकी तो हज़रत जिबरील (अलै०) हुज़ूर (सल्ल०) को सवार कराके आसमानों पर ले चले। आख़िर तक अलग-अलग आसमानों के द्वार ख़ास तौर से खोले जाते रहे। विभिन्न आसमानों पर हज़रत आदम, हज़रत यह्या और हज़रत ईसा, हज़रत यूसुफ़, हज़रत इदरीस, हज़रत हारून और हज़रत मूसा और आख़िर में हज़रत इबराहीम (अलै०) से ख़ास मुलाक़ात हुई।

मेराज के सफ़र में सच्चे रसूल (सल्ल०) को विभिन्न जुर्मों के मुजरिमों को शिक्षाप्रद सज़ाओं का शिकार दिखाया गया।

फिर जब विशेष सान्निध्य का कोई स्थान आया, तो क़ुरआन के दिए हुए ज्ञान के मुताबिक़ हुज़ूर (सल्ल०) पर ख़ास वह्य की गई। यह वह्य क्या थी? इसे क़ुरआन में खोजें तो सूरा बक़रा की आख़िरी आयतों के अलावा ज़्यादातर सूरा बनी इसराईल में ज़िक्र की गई है, जिसकी शुरुआत ही मेराज के तज़किरे से होती है।

सूरा बनी इसराईल में भविष्य की यह ख़ुशख़बरी शामिल है कि मुहम्मदी

क्रान्ति सफल होगी, हक़ का ग़लबा हो जाएगा और बातिल मैदान छोड़ देगा।

इसमें यह खुला इशारा भी मौजूद है कि मक्कावाले हुज़ूर (सल्ल०) को और आपके साथियों को हिजरत पर मजबूर कर देंगे। इसलिए हिजरत की दुआ की तालीम दी गई। हिजरत के बाद जिहाद का दौर आएगा।

यहूदियों को सीधे-सीधे साफ़-साफ़ कह दिया गया कि तुम्हें अपने कुकर्मों की वजह से दुनिया की इमामत (सरदारी) और मानवता के नेतृत्व से हटाया जा रहा है। अब तुम्हारे लिए एक ही मौक़ा है। तुम अगर मुहम्मद (सल्ल०) पर ईमान लाकर उनका साथ दो तो बच निकलोगे वरना बुरा हाल होगा।

मक्का के इस्लाम-विरोधियों को भी तंबीह की गई कि अब वे जो रवैया अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की दावत के मुक़ाबले में इख़तियार करेंगे, उसी के मुताबिक़ उनसे मामला किया जाएगा। फ़ैसले की घड़ी अब क़रीब आ गई है।

इस मौक़े पर ख़ुदा की ओर से प्यारे नबी (सल्ल०) को रहन-सहन और खान-पान व्यवस्था के वे बुनियादी उसूल बताए गए, जिनके मुताबिक़ इस्लामी स्टेट को काम करना होगा। इन उसूलों की संक्षिप्त रूपरेखा यह है—

1. अल्लाह की तौहीद पर पूरा यक़ीन रखो, और शिर्क से बचो।

2. माँ-बाप की इज़्ज़त व इताअत करो।

3. रिश्तेदारों, मिस्कीनों और मुसाफ़िरों के हक़ों को अदा करो और अनुचित तरीक़े से माल ख़र्च न करो।

4. अगर हक़दारों की ख़िदमत का सिलसिला किसी मजबूरी से रुक जाए तो भले तरीक़े से उनसे माज़रत करो।

5. माल के निकालने और ख़र्च करने यानी दोनों शक्लों में बीच का रास्ता अपनाओ।

6. निर्धनता के डर से नस्लकुशी (सन्तान-वध) न करो।

7. ज़िना से पूरी तरह बचो और गन्दे काम के क़रीब भी न फटको।

8. नाहक़ ढंग से किसी की जान न लो।

9. नाबालिग़ यतीमों के मालों की रक्षा करो।

10. अपने वादों और समझौतों की पाबंदी करो।

11. लेन-देन में नाप-तौल के पैमाने, तराज़ू और बाट ठीक रखो।

12. जो बात तुम्हारे ज्ञान से परे हो, उसके पीछे न पड़ो, क्योंकि इनसान को सुनने, देखने और मन व मस्तिष्क का हिसाब ख़ुदा को देना है।

13. ज़मीन पर घमण्ड की चाल न चलो।

मेराज के मौक़े पर दिए हुए यही वे ख़ुदाई उसूल थे, जिन पर प्यारे नबी सल्ल०) ने नमूने के इस्लामी राज्य को क़ायम किया। प्यारे नबी (सल्ल०) के बाद भी दीनी बुज़ुर्गों और न्यायप्रिय बादशाहों के सामने यही उसूल थे और आगे भी जहाँ कहीं इस्लामी व्यवस्था को ज़िंदा करने की बात होगी, इन्हीं उसूलों को बुनियाद बनाना होगा।

धरती से ऊपर अल्लाह की तजल्लियों के दरमियान जब हुज़ूर (सल्ल०) को इन उसूलों पर आधारित फ़रमान दिया गया होगा, तो आपको भविष्य के क्षितिज पर ज्योति-पुंज उभरता दिखाई दिया होगा। कोई भौतिकवादी मक्का और तायफ़ के निराशा भरे माहौल में होता, तो शायद वह निराश होकर अपनी सरगर्मियों की चादर लपेट चुका होता लेकिन यह क्रान्ति-दूत का पैग़म्बरी विवेक था, जो तजल्लियों और बशारतों से सिंचित होकर यह महसूस कर रहा था कि सुबह आ रही है।

अर्शे इलाही से क्रान्ति-दूत को दूसरा उपहार पाँच वक़्त की नमाज़ों का मिला। अब तक सिर्फ़ दो वक़्त, दो-दो रकअत नमाज़ पढ़ी जाती थी। मशहूर रिवायत है कि अल्लाह ने हर दिन पचास नमाज़ों के फ़र्ज़ करने का हुक्म दिया। हुज़ूर (सल्ल०) वापस हुए तो हज़रत मूसा (अलै०) से मुलाक़ात हुई, उन्होंने बात सुनी तो अपनी उम्मत की मनोदशा का अनुभव होने की वजह से कहा कि "वापस जाइए और कम कराइए।" हुज़ूर (सल्ल०) वापस गए, फिर कुछ कमी हो गई। हज़रत मूसा (अलै०) ने फिर वापस भेजा, ग़रज़ यह कि दो-तीन बार जाने पर हर दिन की पाँच नमाज़ें फ़र्ज़ की गईं। हज़रत मूसा (अलै०) ने फिर मशविरा दिया कि और कमी कराइए। मगर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अब मुझे और कुछ कहते हुए शर्म आती है।[1]

इस मुबारक मौक़े पर ख़ास तौर से हुज़ूर (सल्ल०) को तहज्जुद की नमाज़ अदा करने का हुक्म दिया गया और ख़ुशख़बरी दी गई कि इसके ज़रिए आप 'मक़ामे महमूद' तक पहुँचेंगे।

अल्लाह की आयतों और तजल्लियों से मालामाल होकर जब आप वापस हुए तो पहले तो बैतुलमक़दिस ही में उतरे, फिर वहाँ से बुराक़ पर सवार होकर सुबह निकलने से पहले मक्का मुकर्रमा पहुँच गए। सुबह-सुबह जब आपने मेराज के वाक़िए का ज़िक्र क़ुरैश के सामने किया तो उन्होंने पहले तो ताज्जुब किया, फिर मज़ाक़ उड़ाने के लिए तालियाँ बजाईं। क़ुरैश में से जो लोग बैतुलमक़दिस को देख चुके थे, उन्होंने इम्तिहान के तौर पर वहाँ की निशानियाँ पूछीं। जो सवाल आपसे पूछे गए, उनके सही जवाब आपने दिए। फिर पूछा गया कि रास्ते का कोई

वाक़िआ बताइए? फ़रमाया कि फ़लाँ जगह पर एक तिजारती कारवाँ देखा, जो शाम (सीरिया) से मक्का आ रहा था। इस कारवाँ का एक ऊँट गुम हो गया, जो बाद में खोजते-खोजते उनको मिल गया। वह कारवाँ, अगर अल्लाह ने चाहा तो, तीन दिन में मक्का पहुँच जाएगा और एक मटमैले रंग का ऊँट सबसे आगे होगा। तीसरे दिन यही हुआ, पर हक़ के दुश्मन फिर भी विरोध ही करते रहे।

इधर यह क़िस्सा हुआ, उधर कुछ लोग हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के पास गए और उन्हें बताया कि मुहम्मद (सल्ल०) कहते हैं कि मैं आज की रात बैतुलमक़दिस गया और सुबह से पहले वापस आ गया। क्या आप इस दावे की तस्दीक़ करते हैं? हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) ने उन लोगों से कहा कि अगर प्यारे नबी (सल्ल०) ने ऐसा ही फ़रमाया है, तो बिलकुल सच फ़रमाया। मैं तो इससे बढ़कर हुज़ूर (सल्ल०) की बयान की हुई ख़बरों की दिन-रात तस्दीक़ करता हूँ। देखा, आपने रसूल को जब एक बार रसूल मान लिया तो फिर उसके हर इर्शाद पर शक व शुबहे में पड़ना और दलीलें तलब करना ईमानवालों का काम नहीं।

ग़ैब के परदे के पीछे जिस क़ल्ब व नज़रवाले ने कायनात के फ़रमाँरवा की ख़ास आयतों और तजल्लियों का अवलोकन किया हो और आख़िरत की दुनिया की एक झलक देख ली हो, उसके लिए फिर इस ज़रा-सी दुनिया की उम्र के छोटे से दौर में मुसीबतों और परेशानियों से साबक़ा पड़ना क्या अहमियत रखता है। यूँ भी हुज़ूर (सल्ल०) का ईमान सारी दुनिया से ज़्यादा रौशन और मज़बूत था, फिर आपके पास फ़रिश्ते आते थे, वह्य उतरती थी, उसके बाद क्या मूल्य रह जाता है किसी दुश्मन की गालियों और शरारतों का। फिर ख़ुदा का करना यह भी हुआ कि मेराज के सफ़र में वह कुछ दिखा दिया गया, जिसका ज़िक्र क़ुरआन में है और जिसका प्रचार व प्रसार हर दिन आप फ़रमाते थे, तो ऐसी हस्ती की निगाह में तो रास्ते में रुकावट बननेवाला पहाड़ भी राई के दाने से ज़्यादा अहमियत नहीं पा सकता था और न ही उसे निराशा पस्त कर सकती है।

इस तरह हुज़ूर (सल्ल०) के सामने बहुत ही शानदार भविष्य हर दिन क़रीब से क़रीबतर हो रहा था।

# मदीना : इस्लामी आन्दोलन का नया केन्द्र

मेराज के दौरान जो निशानियाँ और तजल्लियाँ हुज़ूर (सल्ल०) की नज़र से गुज़रीं, वे हुज़ूर (सल्ल०) और ईमानवालों के साहस और संकल्प की बढ़ोत्तरी का कारण बनीं और जो वह्य इस मरहले में की गई, उसने भविष्य के मार्ग-चिह्नों को उजागर करके नेकी और सच्चाई के आंदोलन में नई गति पैदा कर दी।

मक्का में ईमान व अख़लाक़ के पनपने की संभावनाओं के ख़त्म हो जाने के बाद हुज़ूर (सल्ल०) तायफ़ से पूछने गए थे कि क्या तुम सच्चाई की मशाल उठा सकते हो? तायफ़ ने जवाब दिया कि मैं तो मक्का से भी बढ़कर अयोग्य हूँ। हुज़ूर (सल्ल०) के एक कान में तायफ़ की 'न' की आवाज़ पहुँची ही थी कि दूसरे कान के परदों से यसरिब की बहुत धीमी सी आवाज़ बहुत दूर से आकर टकराई कि मैं मदीनतुन्नबी और दीने हक़ का मरकज़ बनने को तैयार हूँ। मैं नूरे हक़ की मशाल को उठाऊँगा, सारी दुनिया तक रौशनी पहुँचाऊँगा, मेरी गोद में नेकी की व्यवस्था पलेगी, बढ़ेगी और मेरे पालनों में नया इतिहास बनेगा।

मक्का और तायफ़ क़रीब थे, पर दूर हो गए, यसरिब दूर था, पर क़रीब हो गया।

रसूले अकरम (सल्ल०) को सपने में एक ऐसा दारुल हिजरत (हिजरत की जगह) दिखाया गया था, जहाँ बाग़ थे और खजूरों के झुंड, पानी और साया, पर बात अभी इशारे ही तक सीमित थी।

मदीना को यह सआदत इसलिए मिली कि वहाँ के निवासियों—औस व ख़ज़रज—ने इस्लाम के लिए दिल व नज़र के दरवाज़े ख़ुशी-ख़ुशी खोल दिए, जैसे तपते रेगिस्तान के प्यासे मुसाफ़िर रहमत की बारिश का इन्तिज़ार कर रहे हों। वाक़ई वे इन्तिज़ार ही कर रहे थे। मदीना में यहूदियों का ख़ासा ग़लबा था। उनके 20-21 क़बीले थे। पास-पड़ोस की बस्तियाँ उनकी थीं, उनके पास बहुत दौलत थी और वे सूदख़ोरी करते थे। यहूदी और औस व ख़ज़रज़ पहले एक दूसरे से अलग-थलग रहे, फिर समझौता करके साथी बन गए, फिर यहूदियों ने समझौता तोड़ दिया, इधर औस व ख़ज़रज में गृह-युद्ध शुरू हो गया, ख़ास तौर पर बुआस की लड़ाई में दोनों ख़ानदानों के नामी सरदार मारे गए।

यहूदियों में से एक ऐयाश रईस फ़तयून नामी उठा, जिसने फ़रमान जारी किया कि उसके प्रभाव-क्षेत्र में जो लड़की भी ब्याही जाए, वह उसके साथ रात गुज़ारकर दाम्पत्य जीवन में क़दम रखे। यहूदियों ने बिना कुछ कहे-सुने इस हुक्म

के आगे अपने को झुका दिया। जिस दिन इस शैतानी हुक्म की चोट पहली बार ग़ैर यहूदी क्षेत्रों पर पड़ी तो यह मालिक बिन अजलान की बहन की शादी का दिन था। ठीक बारात के दिन वह भाई के सामने से बड़ी बेपरदगी के साथ गुज़री। मालिक ने मलामत की तो बहन ने कहा कि कल जो कुछ पेश आनेवाला है, वह इससे ज़्यादा सख़्त है। इस ताने की चुभन इतनी तेज़ थी कि मालिक ने फ़तयून को जाकर क़त्ल कर दिया और शाम देश को चला गया। वहाँ ग़स्सानी हुक्मराँ अबू हबला की हुकूमत थी। उसने जब हालात सुने तो मदीने पर हमला करके बड़े-बड़े यहूदियों को क़त्ल किया और औस व ख़ज़रज को उपहार और भेंट दिए।

इन हालात में यहूदी अगरचे कमज़ोर हो गए, लेकिन उनको अपनी मज़हबी सरबराही पर नाज़ था। वे तौरात रखते थे, उनके अपने अक़ीदे थे, क़ानून थे, अख़लाक़ थे। उन्हीं की इबादतगाहों और मज़हबी मदरसों में जाकर तमाम बच्चे तालीम पाते थे, साथ ही यहूदी अनसार (मदीनावासी) के सामने अकसर यह कहा करते थे कि आख़िरी नबी जल्द ही आनेवाला है। वह आए तो फिर हम उसके साथ होकर तुम्हारी ख़बर लेंगे। यहूदियों की इन बातों ने अनसार को भी आख़िरी पैग़म्बर का इन्तिज़ार करनेवाला बना दिया था और वे अपनी जगह यह सोचते थे कि अगर आनेवाला आए, तो वे यहूदियों से बढ़कर उसका दामन थाम लें। इस तरह मदीने का माहौल मदीनतुन्नबी बनने के लिए तैयार हो रहा था।

मदीने का पहला नौजवान जिसने अपने आपको इस्लाम की मशालबरदारी के लिए पेश किया, सुवैद बिन सामित था। यह एक आशु कवि, माहिर सवार और बहादुर योद्धा था। ऐसे ही नवयुवक इंक़िलाबी आंदोलन के सिपाही बनते हैं। तायफ़ से प्यारे नबी (सल्ल०) की वापसी के बाद सुवैद बिन सामित ने हुज़ूर (सल्ल०) से मुलाक़ात की। हुज़ूर (सल्ल०) ने दावत दी। सुवैद पहले से लुक़मान की किताब से प्रभावित था। उसने कुछ पढ़ा और लुक़मान की हिकमत के विषयों पर विचार व्यक्त किए। हुज़ूर (सल्ल०) ने बताया कि मेरे पास क़ुरआन है, फिर क़ुरआन की आयतें सुनाईं। सुवैद ने तुरन्त मान लिया। यह चीज़ उससे बेहतर है और इस्लाम का हार गले में डाल लिया। यह नौजवान मदीने में वापस पहुँचा ही था कि क़त्ल हो गया। ख़ुदा की उसपर हज़ारों हज़ार रहमतें हों। कहते हैं, मरते दम तक अल्लाहु अकबर उसके लबों पर था।

प्रभावित होनेवाला दूसरा यसरिबी युवक इयास बिन मुआज़ था। यह एक प्रतिनिधि मंडल के साथ मदीना आया। ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) ने उनके डेरे पर पहुँचकर सच्चाई और नेकी का पैग़ाम दिया। क़ुरआन सुनाया। इयास ने अपने

लोगों से कहा कि यह चीज़ उससे बेहतर है जिसके लिए तुम आए हो। वे आए थे क़ुरैश से समझौता करने, और प्यारे नबी (सल्ल०) की बात मानने का मतलब समझौते के दरवाज़े का बन्द कर देना था। मंडल-प्रमुख अबुल हैसर ने मिट्टी उठाकर इयास के मुँह पर मारी और कहा कि "हम इस मक़सद के लिए नहीं आए?" इयास चुप तो हो गया, पर उसके जीवन-कृषि की मिट्टी में इस्लामी दावत के बीज ने जगह बना ली। अफ़सोस है कि मदीने का यह जागरूक युवक भी जल्द ही बुआस की लड़ाई की लपेट में आकर दुनिया से विदा हो गया।

बहरहाल मदीने में ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) और ख़ुदा के दीन की चर्चा फैलने लगी।

नुबुव्वत के 11वें साल हज के लिए मदीने से जो प्रतिनिधि मंडल आया, उसका डेरा अक़बा नामी जगह पर था। प्यारे नबी (सल्ल०) रात को वहाँ पहुँचे, दावत दी, क़ुरआन सुनाया, नेकी की तालीम दी और बुरे कामों से मना फ़रमाया। मंडली ने हुज़ूर (सल्ल०) को पहली ही नज़र में पहचान लिया और आपस में कहा कि यह तो वही नबी है जिसका ज़िक्र यहूदी करते रहते हैं। ये छः लोग थे। अल्लाह ने इनके दिल इस्लाम के लिए खोल दिए। उन्होंने एक तो यह उम्मीद ज़ाहिर की कि हो सकता है कि आपकी ज़ात और दावत के ज़रिए ख़ुदा हमारी क़ौम की फूट को दूर कर देगा, साथ ही प्यारे नबी (सल्ल०) की खिदमत में यह भी अर्ज़ किया कि हम अपनी क़ौम के लोगों को आपके दीन की दावत देंगे, फिर अगर अल्लाह ने उन्हें इस दीन पर जमा कर दिया, तो फिर आपसे ज़्यादा ताक़त रखनेवाला कोई दूसरा न होगा।

यह छोटी-सी मंडली मदीना लौटकर गई तो माहौल में एक नई हरकत उन्होंने पैदा कर दी। इस्लाम का पैग़ाम फैलने लगा और उसे ख़ूब तरक़्क़ी हुई। अनसार का कोई घर ऐसा न था, जिसमें मुहम्मद (सल्ल०) की चर्चा न हो।

अगले साल यानी नुबूवत के 12वें साल 12 व्यक्तियों का प्रतिनिधिमंडल मदीने से आया और अक़बा नामी जगह पर रसूले ख़ुदा के हाथ पर बैअत की और कुछ बड़ी पाबन्दियाँ क़बूल कीं, यानी हम अल्लाह के साथ किसी को शरीक नहीं ठहराएँगे, चोरी नहीं करेंगे, ज़िना नहीं करेंगे, किसी के ख़िलाफ़ जान-बूझकर बोहतान नहीं गढ़ेंगे और किसी भले मामले में मुहम्मद (सल्ल०) की नाफ़रमानी नहीं करेंगे। यह अक़बा की पहली बैअत थी।

आज भी अगर हुज़ूर (सल्ल०) से मुहब्बत करनेवाले कम से कम यही इक़रार बाँधें और उसे पूरा करें, तो हमारे समाजों में तेज़ी से सुधार हो सकता है।

अक़बा की इस पहली बैअत के अन्त में रसूले बरहक़ ने हज़रत मुसअब बिन

उमैर (रज़ि०) बिन हाशिम को नियुक्त किया कि वह मदीना में जाकर दावत को फैलाएँ, लोगों को क़ुरआन पढ़ाएँ और इस्लाम की तालीम दें। हज़रत मुसअब बिन उमैर (रज़ि०) ने मदीने में जाकर इस्लाम की तालीम भी सरगर्मी से फैलाई और नमाज़ों की इमामत भी की।

हज़रत मुसअब बिन उमैर (रज़ि०) ने जिस बुद्धिमत्ता से दो सरदारों उसैद बिन हुज़ैर और साद बिन मुआज़ को प्रभावित किया, उसके विस्तार में जाए बिना, उसका यह नतीजा जान लेना चाहिए कि पूरा क़बीला अब्दुल अशहल कुछ क्षणों में इस्लाम के मानव-हित आंदोलन का अलम्बरदार बन गया। मर्दों और औरतों में से सिर्फ़ एक व्यक्ति उसैरम अलग रहा। उहुद की लड़ाई के मौक़े पर इस्लाम क़बूल करके जिहाद किया और शहादत पाई और प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनके जन्नती होने की बशारत दी।

हज का ज़माना फिर आ गया और अब की बार 72 मर्दों और दो औरतों की जमाअत हज को अदा करने आई। यह क़ाफ़िला अक़बा नामी उसी जगह पर ठहरा जहाँ तीन साल से मदीना के हाजी लोग ठहरा करते थे।

प्यारे नबी (सल्ल०) हज़रत अब्बास (रज़ि०) को साथ लेकर सच्चे और अच्छे लोगों के उस गिरोह से मिलने आए। मदीने की मंडली ने हुज़ूर (सल्ल०) को अपने शहर आने की दावत दी और हर क़िस्म की मदद का विश्वास दिलाया। हज़रत अब्बास कहने लगे कि मक्का के लोग प्यारे नबी (सल्ल०) के जानी दुश्मन हैं। तुम लोग अगर उनसे कोई क़ौल व क़रार लेते हो, तो पहले सोच लो। यह नाज़ुक और कठिन काम है। यह लाल-काली ताक़तों से ख़तरा मोल लेना है। इस ज़िम्मेदारी को सोच-समझकर उठाओ, वरना बेहतर है कि कुछ भी न करो।

लोग ख़ामोश रहे। फिर प्यारे नबी (सल्ल०) ने ख़ुदा का कलाम पढ़कर सुनाया। इसके बाद उन लोगों ने यह दरख़्वास्त की कि "ख़ुदा के नबी हमारे शहर में चलकर बसिए, ताकि हम पूरी तरह फ़ायदा उठाएँ।" हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "'क्या तुम दीने हक़ के फैलाने में मेरी पूरी-पूरी मदद करोगे? मैं तुम्हारे शहर में जा बसूँ तो मेरी और मेरे साथियों की हिमायत अपने घरवालों की तरह करोगे?"

लोगों ने पूछा, "इसका क्या फ़ायदा हमें मिलेगा?"

प्यारे नबी (सल्ल०) ने जवाब दिया, "ख़ुदा की ख़ुशनूदी, आख़िरत की कामयाबी और जन्नत।'"

फिर लोगों ने कहा, "हम ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) की ओर से यह इतमीनान चाहते हैं कि हुज़ूर (सल्ल०) हमें कभी न छोड़ेंगे?"

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं; नहीं ! मेरा जीना और मरना तुम्हारे साथ होगा।"

बस यह सुनते ही सब लोग पूरे दिल की गहराइयों से रसूले ख़ुदा (सल्ल०) के हाथ पर बैअत करने लगे, जब बैअत हो चुकी तो रसूले बरहक़ ने हक़ के ग़लबे के इस्लामी आंदोलन के लिए 12 'नक़ीब' (ख़बर देनेवाले) नियुक्त किए। बनू ख़ज़रज में से 9 (नौ) और बनू औस में से 3 (तीन)। ये नक़ीब गोया मदीना की इस्लामी जमाअत के लिए रसूले ख़ुदा की ओर से नायब थे और अपनी क़ौम के तमाम मामलों के ज़िम्मेदार। इनकी नियुक्ति से सुसंगठित समाज के निर्माण का काम बाक़ायदा शुरू हो गया।

अब यह बड़ी मंडली मक्के से नई स्प्रिट लेकर मदीने वापस पहुँची तो इस्लाम के फैलाने का काम तेज़ी से होने लगा। ख़ास तौर से नौजवान नस्ल तेज़ी से आगे बढ़ी और इस ताक़त ने तबदीली की रफ़तार को तेज़ कर दिया।

कुछ साल से हक़ के आंदोलन का आसमानी लीडर बराबर इस सोच में था कि ज़मीन के किसी हिस्से में हिज़रत करके ताक़त को जमा दिया जाए और फिर एक नई दुनिया की बुनियाद डाली जाए। पहले हब्शे पर निगाह गई, पर हब्शा पनाहगाह तो बन गया, लेकिन इस्लामी व्यवस्था की प्रयोगशाला नहीं बन सकता था। अब मदीना खुले दिल से हक़ की दावत पर लपका तो हज़रत मुसअब बिन उमैर (रज़ि०) की दी हुई सविस्तार रिपोर्ट की रौशनी में हुज़ूर (सल्ल०) का दिल मदीना ही की ओर झुकाव महसूस करने लगा। हब्शा से वापस आनेवालों को हुज़ूर (सल्ल०) मदीना ही रवाना कर देते। अक़बा की दूसरी बैअत के बाद तो आपने अकसर साथियों को यही हिदायत की कि वे मदीना चले जाएँ।

मक्का के सरदार इस ख़तरे को महसूस कर रहे थे कि अगर मदीना में इस्लामी आंदोलन का नया केंद्र बन गया तो वह ताक़त पकड़कर उनके लिए चुनौती बन जाएगा। साथ ही उनका शाम की ओर जानेवाला कारोबारी रास्ता मुहम्मदी जमाअत के क़ब्ज़े में होगा। अतः मदीना जानेवाले जिस मुहाजिर पर क़ाबू चलता, वे उसे रोकते, तंग करते और नुक़सान पहुँचाने की कोशिश करते। कुछ से उनका माल छीन लेते, ऐसा होते-होते मक्के के कई घर वीरान और कई मुहल्ले सुनसान हो गए।

# प्यारे रसूल (सल्ल०) की हिजरत

मुहम्मदी दावत के अलमबरदारों के लिए मक्के में ज़ुल्म की भट्टी अपने अन्तिम तापमान तक पहुँच चुकी थी।

प्यारे नबी (सल्ल०) की निगाहें देख रही थीं कि हिजरत सामने खड़ी है। मदीने में जिस तेज़ी से दीने हक़ की फ़सल उग रही थी, उससे हौसला पाकर हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने साथियों को वहाँ भेजना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि अलावा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) के और कोई नुमायाँ शख़्सियत मक्के में बाक़ी न रही थी। कमज़ोर लोगों को क़ुरैश ने जबरन रोक रखा था।

दीने हक़ के आंदोलन के दुश्मन इस बात से परेशान थे कि मुहम्मदी दावत का बीज बहुत बड़ा पेड़ बन चुका था। उनके सामने तौहीद के स्रोत से तबदीली का एक तूफ़ाने नूर चला आ रहा था और वे समझते थे कि इसमें उनकी शिर्क भरी मज़हबी व्यवस्था, उनके ओहदे और जाहिलाना रस्में, सब कुछ बह जानेवाली हैं।

एक दिन मक्का के सरदार दारुन्नदवाः नामक पब्लिक हाल में जमा हुए और सोचा जाने लगा कि मुहम्मद (सल्ल०) के ख़िलाफ़ क्या कार्रवाई की जाए। अलग-अलग प्रस्तावों पर वार्ता हुई। आख़िर अबू जहल के दिमाग़ ने बड़ी ज़ोरदार स्कीम सबके सामने रख दी।

स्कीम यह थी कि सारे क़बीलों से एक-एक मज़बूत और इज़्ज़तदार नौजवान को लिया जाए। वे सशस्त्र हों। ज्यों ही मुहम्मद (सल्ल०) उनके सामने आएँ, सब यकबारगी हमला करके उनको क़त्ल कर दें। इस तरह मुहम्मद (सल्ल०) का ख़ून क़बीलों में बँट जाएगा और अकेले बनू अब्दे मनाफ़ सारे क़बीलों से टक्कर न ले सकेंगे।

प्रस्ताव ऐसा ज़ोरदार था कि सारे लोगों ने अपनी सहमति व्यक्त कर दी।

आनेवाली रहस्य भरी रात आ गई। यह नुबुव्वत के तेरहवें साल के सफ़र महीने की सत्ताइसवीं तारीख़ थी और थी जुमा की रात।

साज़िश की रात हज़रत अली (रज़ि०) को बुलाकर फ़रमाया कि मुझे हिजरत का हुक्म हो चुका है। आज रात मुझे अपने मकान पर नहीं सोना है। मेरे बजाए तुम सोए रहना। सुबह उठकर लोगों की अमानतें, जो मेरे पास हैं, उनको वापस कर देना। चरित्र की यह बुलन्दी देखिए कि हुज़ूर (सल्ल०) को अपने क़ातिलों के

अमानतें वापस करने का इतना ध्यान था। फिर हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के घर पहुँचे। हिजरत के प्रोग्राम को बताया। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने पहले से दो ऊँटनियाँ इसी ज़रूरत से पाल रखी थीं। एक हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश की। पर आपने ज़िद करके क़ीमत तय की और ख़रीद लिया। जल्दी में असमा बिन्ते अबी बक्र ने अपना कमर पटका फाड़कर एक टुकड़े में खाने का सामान और दूसरे से मश्कीज़े का मुँह बाँधा।

मुक़र्रर की हुई घड़ी आ पहुँची और राहे हक़ के दो मुसाफ़िरों का क़ाफ़िला रात के अँधेरे में निकल खड़ा हुआ। क्या यह मोजिज़ा नहीं कि गली-गली में पहरा लगा था, तलवारें तनी हुई थीं, पर रसूले ख़ुदा (सल्ल०) और उनके सच्चे साथी उनसे बचकर साफ़ निकल गए।

मक्का को छोड़ते हुए हुज़ूर (सल्ल०) की भावनाओं में जो हलचल हुई वह इन शब्दों में प्रकट हुई—

"ख़ुदा की क़सम! तू अल्लाह की सबसे बेहतर और प्रिय धरती है। अगर यहाँ से मुझे निकाला न जाता, तो मैं कभी न निकलता।"

थोड़ी ही देर में नबी (सल्ल०) और सिद्दीक़ (रज़ि०) दोनों सौरे गुफा में थे। इधर हज़रत अली प्यारे नबी (सल्ल०) के बिस्तर पर चादर ताने सो रहे थे।

क़ुरैश ने रात भर हुज़ूर (सल्ल०) के मकान का घेराव किए रखा। पूरे शहर की नाकेबन्दी की गई थी। रात के अन्त में हुज़ूर (सल्ल०) के मकान में घुसकर आवाज़ दी। बिस्तर से हज़रत अली (रज़ि०) उठकर सामने आ गए। उनसे कुछ ज़्यादती की। यह ख़बर जब फैली कि मुहम्मद (सल्ल०) तो मक्का से जा चुके हैं तो पूरी मुशरिक पार्टी के पाँव तले से ज़मीन निकल गई। मशविरा करके पीछा करने के लिए आदमी चारों ओर दौड़ाए गए। कुछ पता न चला। खोजनेवाले कुछ लोग सौरे गुफा के मुहाने तक पहुँचे। अंदर से हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने जब उनके क़दमों को देखा तो इस नाज़ुक और तारीख़ी घड़ी में उन्हें यह चिंता हुई कि अगर ये लोग अंदर दाख़िल हो गए, तो पूरे इतिहास के धारे का रुख़ बदल जाएगा। हुज़ूर (सल्ल०) के सामने ख़ुदा के ख़ास वादे और शुभ सूचनाएँ थीं, आपने अपने साथी से फ़रमाया, "चिंता न करो, अल्लाह हमारे साथ है।" और फिर ख़ुदा की ओर से हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के दिल पर तसल्ली उतरी। यह अपने आप में सआदत की एक जगह है। क़ुदरत की सुरक्षा व्यवस्था कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण थी कि दुश्मनों ने गुफा के मुहाने पर पहुँचकर आपस में कहा कि इस गुफा में किसी अदमी के दाख़िल होने की कोई संभावना नहीं। वे लोग वापस चले गए।

गुफा में हिजरत कर रहे इन मुसाफ़िरों ने तीन दिन गुज़ारे। अब्दुल्लाह बिन अबू बक्र (रज़ि०) रात को मक्के की सारी खबरें पहुँचाते। आमिर बिन फ़ुहैरा, हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की बकरियों का रेवड़ लेकर उस ओर आता और अँधेरा छा जाने पर दूध पहुँचा जाता। बकरियों के गुज़रने से इनसानी पद-चिह्न भी मिट जाता।

तीन दिन बाद अब्दुल्लाह बिन उरैक़ित निश्चित समय पर आ गया, जिसे रेगिस्तानी और पहाड़ी रास्ते का ज्ञान होने की वजह से हुज़ूर (सल्ल०) ने पहले से ही मुआवज़े पर गाइड मुक़र्रर किया था। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) का गुलाम आमिर बिन फ़हैरा भी साथ हो लिया और क़ाफ़िला सौरे गुफा से निकलकर नई मंज़िलों की ओर रवाना हो गया। यह घटना तेरहवीं नबवी साल के रबीउल अव्वल महीने की पहली तारीख़ की है।

उधर मक्का में यह एलान किया गया कि मुहम्मद (सल्ल०) और अबू बक्र (रज़ि०) में से जिसे भी कोई व्यक्ति ज़िंदा या मक़तूल हालत में लाएगा, उसे हर एक के लिए सौ-सौ ऊँट इनाम में दिए जाएँगे। बहुत-से और लोगों की तरह सुराक़ा बिन मालिक बिन जोसुम नेज़ा उठाए सवार होकर निकला। उसे ख़बर मिली कि ऐसे-ऐसे आदमी साहिलवाले रास्ते पर देखे गए हैं। घोड़ा दौड़ाता हुआ आख़िर वह क़रीब जा पहुँचा। जब उसने हमले के लिए झपटना चाहा, तो घोड़े के अगले पाँव ज़मीन में धँस गए। दो-तीन बार कोशिश की, पर हर बार ऐसा ही हुआ। समझ गया कि मामला कुछ और है। उसने हुज़ूर (सल्ल०) से माफ़ी चाही और अमान लिख देने की दरख़्वास्त की। यह अमान-नामा मक्का विजय के दिन काम आया। सुराक़ा ने सवारी और रास्ते का खाना हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश किया, पर आपने क़बूल न किया। बस, यह फ़रमाया कि तुम इतना करो कि पीछा करनेवालों को इधर आने से रोको, चुनांचे सुराक़ा को जो कोई भी मिला, उससे कहा कि इधर तो मैं देख आया हूँ तुम किसी और तरफ़ चले जाओ।

सफ़र के दौरान ही आपका गुज़र क़बीला ख़ुज़ाआ की उम्मे माबद के ख़ेमे के पास से हुआ। हुज़ूर (सल्ल०) ने उम्मे माबद से पूछा कि तुम्हारे पास खाने को कुछ है? जवाब मिला कि ख़ुदा की क़सम! कुछ होता तो आपकी ख़िदमत में दिल व जान से पेश करती। फिर एक बकरी जिसका दूध सूख चुका था, हुज़ूर (सल्ल०) ने उसके दुहने की इजाज़त तलब की। बरतन मंगवाया, इतना दूध निकाला कि आपका और आपके साथी का पेट भर गया। फिर दूध निकाला और भरा हुआ बरतन उम्मे माबद को दिया। उम्मे माबद का शौहर मरियल और बीमार बकरियों को हँकाता हुआ घर पहुँचा तो पूछा कि यह दूध कहाँ से आया?

उम्मे माबद ने कहा कि एक बरकतवाला इनसान यहाँ आया था और यह उसके मुबारक आने का नतीजा है। शौहर बोला कि यह तो वही व्यक्ति होगा, जिसे क़ुरैश खोज रहे हैं। तुम तनिक उसका हुलिया तो बताओ। उसके जवाब में उम्मे माबद ने ऐसे शानदार शब्दों और सुन्दर शैली में रसूले ख़ुदा का नक़्शा बयान किया कि उसपर काव्य के सैकड़ों संग्रह और साहित्य की हज़ारों अलमारियाँ क़ुरबान !

रास्ते में हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) सीरिया के कारोबारी सफ़र में वापस आते हुए मिले। उन्होंने रसूले ख़ुदा और हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) दोनों की सेवा में सफ़ेद कपड़ों का उपहार दिया।

फिर बुरैदा असलमी अपने सत्तर आदमियों के साथ सामने आए। निकले तो यह भी इनाम ही के लालच में थे, पर जब सामना हुआ तो मनोदशा बदल गई। प्यारे नबी (सल्ल०) से सवाल किया, कलाम सुना और अपने सत्तर साथियों सहित मुसलमान हो गए। सच है—

"शिकार करने को आए, शिकार हो के चले।"

बुरैदा ने हुज़ूर (सल्ल०) के सामने अपना यह शौक़ ज़ाहिर किया कि आपके आगे-आगे एक झण्डा होना चाहिए। हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी पगड़ी नेज़े पर बाँधकर बुरैदा को दे दी। वह झण्डा लहराता आगे-आगे चलता, नारे तकबीर बुलंद करता और एलान करता कि अम्न का बादशाह, सुलह का हामी और दुनिया को न्याय और इनसाफ़ से भर देनेवाला आ रहा है।"

मक्का से रसूले बरहक़ की रवानगी की ख़बरें मदीने में पहुँच चुकी थी। लोग हर दिन सुबह को घरों से निकलकर दूर तक आते और देर तक रास्ता देखते, धूप बढ़ती तो वापस चले जाते।

जिस दिन तशरीफ़ लाए, उस दिन भी लोग इन्तिज़ार करके लौट रहे थे कि एक यहूदी ने क़िले पर से देख लिया और पुकारा, "यसरिबवालो ! लो, तुम्हें जिस बुज़ुर्ग का इन्तिज़ार था, वे आ पहुँचे।"

यह रबीऊल अव्वल की आठवीं तारीख़ थी। अनसार मारे ख़ुशी के हथियार सज-सजकर आए। अल्लाहु अकबर की आवाज़ें गूँज उठीं। हुज़ूर (सल्ल०) कुछ दिनों तक मदीने की बाहरी बस्ती क़ुबा में ठहरे रहे। सरदार कुलसूम बिन हिदम को मेज़बानी का शरफ़ हासिल हुआ। हज़रत अली (रज़ि०) भी अमानतें अदा करके क़ुबा ही में हुज़ूर (सल्ल०) से आ मिले। मुहाजिरीन और अनसार गिरोह-गिरोह करके मुलाक़ात का शरफ़ हासिल करते रहे। हुज़ूर (सल्ल०) ने यहाँ पहली मस्जिद की बुनियाद रखी। उसके निर्माण के लिए पत्थर-गारा ढोने के काम

में ख़ुद हिस्सा लिया। यहीं आपने पहली जुमा की नमाज़ अदा की और बड़ा असरदार तफ़सीली ख़ुत्बा दिया।

कुबा में चौदह दिन गुज़ार कर जुमा की नमाज़ के बाद आप मदीना के लिए रवाना हुए। कुबा से मदीना तक दो लाइनों में अनसार सफ़े बाँधे खड़े थे। हुज़ूर (सल्ल०) के ननिहाली रिश्तेदारों ने शौक़ से हथियार लगाए। हर ओर ख़ुदा के गुण-गान की आवाज़ें बुलंद होती रहीं। औरतें छतों पर जमा थीं और स्वागत-गीत गा रही थीं। छोटी बच्चियाँ घूम-घूमकर दफ़ बजा रही थीं।

मदीने का हर मुसलमान नबी की ऊँटनी की नकेल को पकड़कर आपको अपने यहाँ ले जाना चाहता था। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऊँटनी को छोड़ दो। यह ख़ुदा की ओर से नियुक्त है।"

ऊँटनी अपने आप हज़रत अय्यूब अनसारी (रज़ि०) के घर के सामने बैठ गई और मेज़बानी का शरफ़ उन्हीं को मुक़द्दर हुआ।

आज मानो इनसाफ़ और रहमत का नया अध्याय शुरू हुआ। संघर्ष के एक नए दौर की शुरुआत और उसके साथ ही उत्कर्ष के एक नए युग का आरंभ!

# मदीने में रचनात्मक कार्य

जिन व्यक्तियों और गिरोहों के सामने कोई महान उद्देश्य होता है, वे जब उसके लिए हिजरत (देश-परित्याग) करते हैं, तो फिर वे नई जगह पर पहुँचकर खाने-कमाने पर नहीं टूट पड़ते, बल्कि सारी चिन्ता मूल उद्देश्य के लिए रास्ता बनाने की होती है। ख़ुदा की राह का सच्चा मुहाजिर (हिजरत करनेवाला) वह होता है जिसने ख़ुदा की नाफ़रमानी से बचने के लिए वतन छोड़ा हो और ख़ुदा के दीन को ग़ालिब करने की आज़ादी हासिल करने के लिए दूसरी जगह क़दम रखा हो।

मदीना आते ही अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और इस्लामी आन्दोलन के जाँनिसारों का सारा ध्यान इस बात पर था कि सत्य-व्यवस्था की स्थापना को व्यवहार रूप दिया जाए, चुनांचे इनसाफ़ और रहमत के रसूल (सल्ल०) ने पहले ही हिजरी साल में आरंभिक ज़रूरी काम किए या कम से कम ज़्यादा फैले और भारी मामलों के लिए इतना शुरू का काम कर लिया कि सन् 02 हि० में वे भी पूरे हो गए।

सबसे पहला रचनात्मक काम जो मुहम्मद (सल्ल०) और आपके साथियों ने किया, वह यह था कि नमाज़ क़ायम करने की व्यवस्था चलाने के लिए तुरन्त मस्जिद की बुनियाद रख दी। यह मस्जिद आगे चलकर राजनीति सदन भी बना, मंत्रणा-स्थली भी, न्यायालय भी, पाठशाला भी, ख़ज़ाना भी और अतिथि-गृह भी।

हुज़ूर (सल्ल०) की ऊँटनी जहाँ आकर बैठी थी, वह ज़मीन बनू नज्जार के दो यतीम (अनाथ) बच्चों की थी। यह ज़मीन आपने ख़रीदनी चाही, पर यतीमों के सरपरस्त ने क़ीमत लेने से इनकार कर दिया। आपने इसे पसंद नहीं किया और ज़मीन की क़ीमत अदा कर दी। मस्जिद की तामीर की मुहिम शुरू हुई। क़ुबा की तरह यहाँ भी तमाम मुसलमानों के साथ उनका महान नेता मज़दूर बना, पत्थर और गारा ढो रहा था।

मस्जिद बन जाने के बाद सवाल उठा कि दूर तक फैले हुए लोगों को नमाज़ के लिए किस तरह बुलाया जाए। अनेक प्रस्ताव आए। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपना एक सपना बताया कि मैंने एक व्यक्ति को ये बोल पुकारते सुना। ऐसा ही सपना हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ैद (रज़ि०) ने भी बताया। हुज़ूर (सल्ल०) ने इन बोलों को और पुकारने के इस तरीक़े को पसन्द फ़रमाया। हज़रत बिलाल (रज़ि०) को अज़ान देने पर लगाया गया। वह दिल की गहराइयों से झूमकर अज़ान देते। मस्जिद के साथ गारे और फूस के हुजरे (छोटा कमरा) या क्वार्टर हुज़ूर (सल्ल०)

की बीवियों के लिए बना दिए गए।

मस्जिद बनते वक़्त हुज़ूर (सल्ल०) की उम्र 53 साल एक माह के क़रीब थी। यह पहले हिजरी साल का रबीउल अव्वल का महीना था।

जिन लोगों को ईमान के तक़ाज़े के तहत बड़े और मुबारक काम करने होते हैं, वे बड़ी कठिन परिस्थितियों में भी उनको जल्द से जल्द पूरा कर लेते हैं। न कोई टाल-मटोल होती है, न हेर-फेर, न हीला-बहाना। मस्जिद की तामीर के साथ ही आपने उपदेशों व प्रवचनों का सिलसिला शुरू कर दिया, ताकि इस्लाम का ज्ञान फ़ैले और मस्तिष्क और चरित्र-निर्माण भी होता रहे। इसी मस्जिद में वह मदरसा भी क़ायम हुआ, जिसके छात्रों को असहाबे सुफ़्फ़ा (चबूतरेवाले) कहते हैं। सुफ़्फ़ा एक चबूतरा था, जिसपर दीन का इल्म सीखनेवाले बिन-ब्याहे युवक दिन को पढ़ते और रात को वहीं सो जाते। उनका खाना-पीना मदीनेवालों के ज़िम्मे था।

एक इलाक़े से उखड़कर और उजड़कर आनेवालों का पुनर्वास किसी दूसरी जगह पर बड़ा कठिन काम होता है। इनसानी ताल्लुक़ात ख़राब हो जाते हैं, लोगों से शालीनता विदा हो जाती है। नैतिक मूल्य नष्ट होने लगते हैं, क्योंकि स्थानीय और हिजरत करके आए लोगों में माल व जायदाद में खींचातानी शुरू हो जाती है और मदीना का हाल तो यह था कि वह आजकल के बड़े शहरों जैसा बड़ा शहर भी न था, एक मामूली-सा क़स्बा था, जिसकी कुछ हज़ार की आबादी कई बस्तियों में बँटी हुई थी। वहाँ कोई लंबे-चौड़े साधन भी न थे। बाद में इस आबादी पर पंद्रह-बीस प्रतिशत मुहाजिरों का बोझ आ पड़ा। मगर वहाँ ऐसा नहीं हुआ कि अनसार अपने माल और जायदाद को रोककर बैठे रहें और आनेवालों को तरसा-तरसाकर उनसे ज़रूरत की चीज़ों की भारी क़ीमतें वसूल करें या मुहाजिरीन शोर मचा-मचाकर छीना झपटी करने लगें, एक-दूसरे के ख़िलाफ़ बयान बाज़ी हो और जुलूस निकलने लगे और उनमें टकराव होने लगे। यहाँ तो दोनों फ़रीक़ अपने अक़ीदे और मक़सद की बुनियाद पर भाई-भाई थे। वे तो दुनिया में बदी के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़नेवाली एक जान सेना बनकर उठे थे। एक फ़रीक़ मेज़बान बना और दूसरे को मेहमान बनाकर साथ रखा, न उन्होंने तंगी दिखाई, न इन्होंने घबराहट !

फिर भी एक स्थाई और स्पष्ट भ्रातृत्व-व्यवस्था की ज़रूरत थी। मानव-कल्याण के अलमबरदार प्यारे नबी (सल्ल०) ने हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) के घर में अनसार और मुहाजिरीन की एक सभा बुलाई। उपस्थित जनों की संख्या नब्बे थी। हुज़ूर (सल्ल०) ने एक-एक अनसारी और एक-एक मुहाजिर के बीच भाई-भाई का रिश्ता क़ायम कर दिया, इस तरह मानो हर व्यक्ति के ज़िम्मे

एक ड्यूटी लगा दी। अनसार ने अपनी ज़मीनों, बाग़ों और मकानों और माल में आधा-आधा हिस्सा मुहाजिर भाइयों को पेश कर दिया। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) के सामने उनके मुँह बोले भाई हज़रत साद बिन रुबैअ् अनसारी ने यहाँ तक पेशकश की कि मैं अपनी दो बीवियों में से एक को तलाक़ देकर तुम्हारे हवाले करता हूँ। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) ने शुक्रिया के साथ इनकार कर दिया। अनसार की विरासत से भी मुहाजिरीन हिस्सा पाने लगे, मगर ऐसे मुहाजिर भी थे जो अनसार से कहते कि तुम्हारे माल तुम्हें मुबारक हों, हमें बाज़ार का रास्ता दिखा दो, हम मेहनत करके रोज़ी कमा लेंगे।

किसी फ़रीक़ ने या किसी व्यक्ति ने इस मामले में न तो कोई झगड़ा किया, न कच्ची-पक्की बात की, न किसी तरह के सन्देह को व्यक्त किया और न ही क़बीलागत और क्षेत्रगत संकीर्णताओं के तहत यह सोचा कि ये लोग जो 'धरती के सुपुत्र' (Son of the Soil) नहीं हैं, उन्हें क्या हक़ है कि हमारी रोज़ी में से हिस्सा हासिल करें।

पूरे मानवीय इतिहास में कोई नज़रिया या आन्दोलन—मुख्य रूप से वर्त्तमान युग में—मुहाजिरीन के पुनर्वास का ऐसा कोई उदाहरण नहीं ला सकता, जैसे आख़िरी नबी (सल्ल०) की पैरवी करनेवालों ने पेश फ़रमाया है। आपका मूल चमत्कार यह है कि आपने ऐसे इनसान तैयार कर दिए, जिनकी दृष्टि में ख़ुदा और रसूल और दीन के मुक़ाबले हर चीज़ निर्मूल्य थी—न वतन, न इलाक़ा, न नस्ल, न ख़ानदान, न माल व दौलत। वास्तविक इस्लाम वही है, जो इन तमाम हदबन्दियों से आदमी को परे रखे। किसी देश या इलाक़े का सर्वसम्मत संविधान बनाना और उसे समाज के सारे अहम वर्गों की रज़ामंदी से लागू करना कितना कठिन काम दिखाई पड़ता है। इस प्रगतिशील युग में भी कुछ क़ौमों ने संविधान के मामले में वर्षों लगा दिए, लेकिन कमाल है हुज़ूर (सल्ल०) की राजनीतिक सूझ-बूझ में महारत और विवेक का कि पहले ही हिजरी साल में प्यारे नबी (सल्ल०) ने यहूदियों के तीन बड़े क़बीलों और अनसार के दो बड़े क़बीलों और मुहाजिरीन के गिरोह को एक संवैधानिक समझौते पर सहमत कर लिया। आश्चर्यजनक समझदारी है कि विरोधी रुझानों के मौजूद होने के बावजूद मुस्लिम अल्पसंख्यक के नेता ने ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यक से एक ऐसी दस्तावेज़ बनवाई, जिसका सार यह था कि—

1. मदीना में जो नया समाज हुज़ूर (सल्ल०) गठित कर रहे थे, उसके लिए ख़ुदा व सम्प्रभुत्व और शरीअत के क़ानून को बुनियाद की हैसियत हासिल हो गई।

2. राजनीतिक, क़ानूनी और न्यायिक दृष्टि से अन्तिम अधिकार हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के हाथ आ गए।

3. प्रतिरक्षात्मक दृष्टि से मदीना और उसके आस-पास की पूरी आबादी एक संयुक्त शक्ति बन गई और उसके किसी भी अंश के लिए क़ुरैश की हिमायत करने के दरवाज़े बन्द हो गए। साथ ही प्रतिरक्षात्मक दृष्टि से भी निर्णायक स्थान रसूले ख़ुदा (सल्ल०) ही के लिए तय किया गया।

मदीना का यह संवैधानिक समझौता हक़ीक़त में मदीने के इस्लामी राज्य की स्थापना का स्पष्ट दस्तावेज़ था।

अन्दाज़ा कीजिए कि जिन हौसलामंदों को कोई बड़ा काम करना होता है, वे किस तरह कठिनतम परिस्थितियों में रास्ता बनाकर अपना उद्देश्य प्राप्त कर लेते हैं और जो नहीं कर सकते, वे वर्षों टामक टोइयाँ मारते रहते हैं।

# प्रतिरक्षात्मक तैयारियाँ और सैन्य प्रशिक्षण

मदीना पहुँचकर प्यारे नबी (सल्ल०) ने नमाज़ क़ायम करने, अनसार और मुहाजिरों को भाई-भाई बनाने और संवैधानिक समझौता करने से भी एक और बड़ा कारनामा अंजाम दिया, वह था मदीना की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था की स्थापना और मुसलमानों का सैन्य प्रशिक्षण।

सच तो यह है कि बहुत-सी वजहों से हुज़ूर (सल्ल०) और आपके साथियों के लिए सामरिक कार्रवाई का रास्ता कोई पसन्दीदा रास्ता न था, पर स्पष्ट है कि मुसलमानों की ज़रूरतों का लिहाज़ करके विरोधी हमलों की धारा रुकी न रह सकती थी, और हुज़ूर (सल्ल०) किसी ऐसे सीमित धर्म का आह्वान करनेवाले भी न थे जो एक गाल पर थप्पड़ खानेवाले को चुपके से दूसरा गाल आगे कर देने की शिक्षा देता हो। यहाँ तो स्कीम इंक़िलाब (क्रान्ति) की थी, और इंक़िलाब का एक मरहला अगर हिजरत होता है तो उससे आगे का दूसरा मरहला संघर्ष का भी आता है। ख़ुदापरस्ती की बुनियाद पर एक नई दुनिया बसाने के लिए जो 'उम्मते वस्त' (मध्य मार्गी गिरोह) उठी थी, उसे मालूम था कि जिस शक्ति ने उन्हें 13 साल तक हिंसा की चक्की में पीसा है और जिसने उन्हें घरों से निकाला है, उसके लड़ने के इरादे की तलवार भी सरों पर लटक रही है।

असल में कलिमा तैयिबा पढ़नेवाले पहले दिन ही से समझते थे कि इस कलिमे में संघर्ष के बीज भी मौजूद हैं। सत्य के ये शैदाई अपनी दोहरी ड्यूटी ख़ूब समझते थे कि एक क़दम जानमाज़ पर हो, तो दूसरा सत्य के लिए जान दे देने में, पर प्रतिरक्षात्मक ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए केवल भावना और चेतना ही काफ़ी नहीं होती, संगठन और प्रशिक्षण की भी ज़रूरत होती है। ख़ुदा के भेजे हुए प्रशिक्षक और मुज़क्की ने बड़े टेढ़े हालात में जमाअत को जिस सुन्दरता के साथ प्रतिरक्षा के लिए बहुत तेज़ी से तैयार किया, वह गवाह है इस बात की कि ख़ुदा ने हुज़ूर (सल्ल०) को बेहतरीन कमाण्डर और सेनापति भी बनाया।

मदीना के आस-पास तीन ओर या तो पहाड़ियाँ थीं, या घनी बस्तियाँ और बाग़, या लावे के सख़्त पथरीले मैदान, यूँ मानो प्राकृतिक आरक्षण का एक क़िला बना हुआ था, केवल उत्तर की ओर शहर का रास्ता खुला था, लेकिन मक्केवालों का दक्षिण की ओर से आकर उत्तर की ओर से हमला करना अपने लिए

पेचीदगियाँ रखता था। ख़ुदा की मरज़ी से नबी (सल्ल०) ने एक काम यह किया कि मदीने को भी मक्के की तरह हरम (Holy City of Peace) क़रा दे दिया और इसका एलान कर दिया गया। इसमें यह बात भी शामिल थी कि दुश्मन अगर मदीना के हरम की पावनता का ख़याल न रखेगा, तो ख़ुद वह भी हरमे मक्का में सुरक्षित न रहेगा।

मुसलमानों के सैनिक प्रशिक्षण के लिए नमाज़ की सफ़बन्दी की बुनियाद पर सैन्य सफ़बन्दी की तालीम दी। तीरअंदाज़ी और दौड़ों के मुक़ाबले कराए, छोटी-छोटी सैन्य टुकड़ियाँ बनाकर उनको कमाण्डरों के तहत सीमाओं पर गश्त के लिए भेजना शुरू किया। विभिन्न व्यक्तियों को रात के वक़्त पहरे की ड्यूटियाँ सौंपी गईं। सिपाहियों के पहचान शब्द व संकेत बने। हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने सिपाहियों के सीमाओं की ओर बार-बार भेजकर एक तो यह चाहा कि दुश्मनों की चलत-फिरत का हाल मालूम होता रहे, दूसरे सिपाही आस-पास के इलाक़ों के उतार-चढ़ाव को, सामरिक दृष्टिकोण से जान-समझ लें, तीसरे चारों ओर की आबादियों को यह एहसास हो जाए कि अब यहाँ एक सुसंगठित राज्य भी मौजूद है।

बद्र की लड़ाई से पहले सीमावर्ती गश्तों और निगरानी के लिए सात-आठ नुमायाँ मुहिमें रवाना हुईं। पहली हिजरी साल के रमज़ान में अमीर हमज़ा बिन अब्दुल मुत्तलिब (रज़ि०) की सरदारी में 30 आदमियों की टुकड़ी 'सैफ़ुल बहर' की ओर रवाना की गई। अबू जहल तीन सौ आदमियों को साथ लेकर मक्का से आया था, लेकिन मुसलमानों को चौकन्ना पाकर वापस चला गया। शव्वाल में 60 व्यक्तियों पर सम्मिलित एक टुकड़ी हज़रत उबैदा बिन हारिस (रज़ि०) की कमान में मक्केवालों की सैन्य स्थिति मालूम करने के लिए भेजी गई। दुश्मन के दो सौ आदमी 'सनियतुल मुर्रा' नामी जगह पर देखे गए। इनकी रिपोर्ट उस टुकड़ी ने मदीना पहुँचाई। ज़ीक़ादा में साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) के नेतृत्व में 80 सिपाहियों की टुकड़ी जोहफ़ा तक भेजी गई। हिजरत के दूसरे साल सफ़र के महीने में हुज़ूर (सल्ल०) ख़ुद भी अपने साथ सत्तर व्यक्तियों को लेकर अबवा के इलाक़े में तशरीफ़ ले गए, जहाँ से क़ुरैश का व्यापारी राजमार्ग गुज़रता था। इसी सफ़र में आपने मख़्शी बिन उमर व हज़री से समझौता किया। फिर आप रबीउल अव्वल में दो सौ सिपाहियों की टुकड़ी साथ लेकर बुवाह की ओर तशरीफ़ ले गए, जो यम्बूअ के क़रीब हैं। रास्ते में उमैया बिन ख़ल्फ़ के नेतृत्व में सौ व्यक्तियों पर सम्मिलित एक कारवाँ सामने आया। दोनों ओर से कोई छेड़ख़ानी नहीं की गई। रबीउल अव्वल ही में कर्ज़ बिन जाबिर फ़िहरी ने मदीने के

मवेशियों पर डाका डाला। सूचना मिलते ही नबी (सल्ल०) ने 70 जाँबाज़ों को साथ लेकर पीछा किया, मगर दुश्मन बचकर निकल गया। फिर जुमादल उख़्रा में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) डेढ़ सौ मुजाहिदीन की एक टुकड़ी साथ लेकर ज़ुल-उशैरा तशरीफ़ ले गए। यहाँ बनी मुदलज और बनी ज़ोहरा से समझौता किया।

रजब के महीने में अब्दुल्लाह बिन जहश के नेतृत्व में 125 मुजाहिदीन की एक मुहिम नख़ला नामी जगह के लिए रवाना हुई। क़ुरैश के एक छोटे-से क़ाफ़िले से झड़प हो गई। दुश्मन का एक आदमी मारा गया, दो क़ैदी बनाए गए, एक भाग गया और मुजाहिदीन माले ग़नीमत भी साथ ले आए। मदीने पहुँचे तो हुज़ूर (सल्ल०) ने सख़्त नापसंदीदगी ज़ाहिर फ़रमाई, क्योंकि अभी तक हुज़ूर (सल्ल०) की ओर से टकराने की इजाज़त नहीं जारी हुई थी। आपने क़ैदी रिहा कर दिए। मक़तूल के ख़ून की क़ीमत और ग़नीमत का माल क़ुरैश को रवाना कर दिया। नख़ला की घटना ने मक्कावालों में उत्तेजना भर दी।

इन तैयारियों के साथ हुज़ूर (सल्ल०) ने मदीने के आस-पड़ोस के कई क़बीलों से सम्पर्क करके उनको मित्र बना लिया। इन क़बीलों में बनी हमज़ा, जुहैना, बून ज़मरा, बनू ज़ुरआ, बनू रुबआ, बनू मुदलज और बनू ज़ोहरा वग़ैरह शामिल थे। कुछ क़बीलों के साथ संयुक्त प्रतिरक्षा का समझौता हुआ, कुछ ने सिर्फ़ इतनी बात स्वीकारी कि मुसलमानों के दुश्मनों से दोस्ताना ताल्लुक़ात नहीं रखे जाएँगे।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है कि मदीना-समझौता का भी प्रतिरक्षात्मक महत्त्व है। इसमें तमाम शरीक होनेवालों से मनवा लिया गया था कि अरबी क़बीलों में जो मुशरिक और यहूदी शामिल हों, वे मुसलमानों के अधीन और लड़ाई की शक्ल में उनके सहयोगी होंगे, साथ ही वे मक्का के क़ुरैश को जान व माल की अमान नहीं देंगे और न उनके ख़िलाफ़ मुसलमानों की ओर से लड़ाई होने पर कोई रुकावट डालेंगे। यहूदियों के साथ यह सैद्धान्तिक बात भी तय पा गई कि लड़ाई और सुलह के मामले तमाम मदीनेवालों में संयुक्त होंगे और यहूदी हर उस शक्ति से लड़ेंगे जिससे मुसलमान लड़ें और हर उस शक्ति से समझौता करेंगे जिससे मुसलमान सुलह करें। मदीना-समझौते की ये शर्तें गवाह हैं कि प्रतिरक्षात्मक दृष्टि से हुज़ूर (सल्ल०) की विवेक-दृष्टि कितनी दूर तक देखती थी। साथ ही यहूदियों से तो आपने ऐसी बातों पर अंगूठा लगवा लिया, जिन पर बाद में वे लोग अफ़सोस करते रहे होंगे।

प्रतिरक्षात्मक तैयारियों का एक पहलू यह था कि मुसलमानों में अल्लाह के

रास्ते में ख़र्च करने की ऐसी लहर दौड़ा दी गई कि हर कोई ख़ुदा व रसूल के एक इशारे पर अपना सब कुछ क़ुरबान करने के लिए तैयार था और ख़ुशहाल लोग दिल खोलकर ज़रूरतमंदों पर ख़र्च करते थे।

अब आख़िर में यह बताना भी ज़रूरी है कि हुज़ूर (सल्ल०) की प्रतिरक्षात्मक तैयारियों में यह बात भी शामिल थी कि अपने एक राह के साथियों को सामरिक और नैतिक प्रशिक्षण दें। अनुशासन का महत्त्व मात्र संगठनात्मक दृष्टि से भी बहुत है, मगर इस्लाम में यह नैतिक दृष्टि से भी बड़ा कर्तव्य है। अनुशासन को भंग करनेवाले कुछ काम पूरे किए-कराए को नष्ट कर देते हैं। पहले हम बता चुके हैं कि नख़ला की मुहिम में अब्दुल्लाह बिन जहश (रज़ि०) ने क़ुरैशी कारवाँ पर जो छापा मारा था, उसे हुज़ूर (सल्ल०) ने इस वजह से नापसन्द फ़रमाया था कि सेंट्रल कमाण्ड या हेड क्वार्टर से अभी तक हमलावर होने का हुक्म जारी नहीं हुआ था। प्यारे नबी (सल्ल०) के नेतृत्व में चलनेवाले राज्य के भीतर हर मुसलमान को अपने अक़ीदे, मिशन, ख़ुदा की इताअत (आज्ञा-पालन) की आज़ादी और ज़ुल्म के ख़ात्मे के लिए सिपाही क़रार दिया गया, यानी यह ईमानवालों की दीनी (धार्मिक) और नैतिक ज़िम्मेदारी है कि वह इस्लामी राज्य की सुरक्षा और इस्लामी आन्दोलन के रास्ते की रुकावटें दूर करने के लिए, ज़रूरत पड़ने पर, लड़ाई के मैदान में उतरें। सेना के मन में बार-बार बिठाया गया कि दुश्मन के मुक़ाबले पर आने के बाद भागना बहुत बड़ा अपराध है। (सिर्फ़ लड़ाई जारी रखते हुए सामरिक आवश्यकता के तहत कमाण्डर के हुक्म से आगे-पीछे या दाएँ-बाएँ हटा जा सकता है।) इस मामले में हुज़ूर (सल्ल०) हक़ के सिपाहियों से वचन भी लेते थे। फिर हुज़ूर (सल्ल०) का यह आदर्श सारी उम्मत (मुस्लिम समुदाय) के लिए प्रशिक्षण-साधन है कि लड़ाई पर निकलने से पहले भी अहम साथियों से मशविरा करते, फिर सेना के लिए कैम्प निश्चित करने और लड़ाई के मैदान में उनका प्रशिक्षण तय करने के लिए राएँ लेते। लड़ाई के मैदान में सफ़बंदी कराते और अमीर (प्रधान) के हुक्म से पहले तीर फेंकने या क़दम बढ़ाने या नेज़े को सामने की तरफ़ तान लेने को सख़्ती से मना फ़रमाते।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने औरतों, बच्चों, बूढ़ों, विकलांगों, लड़ाई से कोई ताल्लुक़ न रखनेवाले लोगों और इबादतगाहों में पाए जानेवाले संन्यासियों, राहिबों और मुजाविरों को क़त्ल करने से इस्लामी मुजाहिदों को हमेशा के लिए मना फ़रमा दिया। इसी तरह यह भी हुक्म दिया कि अगर किसी व्यक्ति के मुख पर इस्लाम का कलिमा आए, तो उसे क़त्ल न किया जाए और बाद में इतमीनान से उसके बारे में सविस्तार जाँच करा ली जाए। इस तरह जिस बस्ती से अज़ान की

आवाज़ सुनाई दे, ऐसी बस्ती पर हमला न किया जाए। कोई दुश्मन अगर ताबेअ बनने का एलान कर दे या समझौता या शरण चाहे, तो उसकी जान न ली जाए, बल्कि लड़ाई शुरू करने से पहले मुस्लिम सेना की ओर से यह एलान किया जाना भी हमेशा के लिए सुन्नत बन गया कि अगर दुश्मन इताअत क़बूल कर ले और हथियार डाल दे, तो उससे लड़ाई न की जाए। वह अगर इस्लाम क़बूल कर ले तो भी उसपर हमला न किया जाएगा। अगर दोनों बातें मंज़ूर न हों तो फिर तलवार फ़ैसला करेगी। हुज़ूर (सल्ल०) ने यह भी शिक्षा दी कि अगर दुश्मन के किसी व्यक्ति या गिरोह को मुसलमानों की ओर से उनका कोई मामूली व्यक्ति भी पनाह या शरण दे दे, तो ऐसी पनाह या शरण सारी फ़ौज की ओर से समझी जाएगी। प्यारे नबी (सल्ल०) ने यह शिक्षा भी दी कि दुश्मन के मारे गए लोगों की लाशों का अनादर न किया जाए, उनके नाक-कान काटकर चेहरों को बिगाड़ा न जाए।

सोचिए कि यह उस ज़माने की बात है, जब कोई सर्वसम्मत स्पष्ट अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून मौजूद न था, कोई संयुक्त राष्ट्र-संघ न बना था, कोई जेनेवा-समझौता तय नहीं हुआ था। प्यारे नबी (सल्ल०) हमारे इस दौर के सिरे पर वह पहले नेतृत्व करनेवाले व्यक्ति थे, जिन्होंने लड़ाई के मैदान तक के लिए भी दुश्मन के अधिकार और मुसलमानों के व्यवहार निश्चित किए—और आज एक यह ज़माना है कि संयुक्त राष्ट्र-संघ के अलावा बहुत-सी संस्थाएँ और समझौते और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों के मान्य मसविदे मौजूद हैं, लेकिन सुसभ्य कहलानेवाली क़ौमें जब कभी लड़ाई के मैदान में आती हैं, तो फिर हारनेवाली शक्ति की न जानें बचती हैं, न माल, स्वाभिमान, आबरू और न उनकी औरतों का सतीत्व और फिर इस सुसभ्य युग में जब कोई गिरोही संघर्ष होते हैं, या कोई क्रान्तिपूर्ण शक्ति उभरती है तो उस वक़्त जो रुसवाई और तबाही मानवता की होती है, इसका अन्दाज़ा किसी को नहीं।

अफ़सोस है कि यह भाग्यहीन दुनिया हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के मार्गदर्शन स्रोत तक न पहुँच सकी।

# जिहाद क्या और क्यों ?

प्यारे नबी (सल्ल०) के दौर की लड़ाइयों का उल्लेख देखकर प्राच्य-विद्या विशारदों द्वारा की गई आपत्तियों के आधार पर यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता रहा कि 'दीन' के काम में तलवार का क्या काम और मस्जिद के साथ लड़ाई के मैदान की सरगर्मियाँ क्यों ?

इस्लाम में जिहाद के उद्देश्य क़ुरआन में बता दिए गए हैं।——

एक यह कि इसके द्वारा इस्लामी राज्य के अस्तित्व व अधिकार, उसके निवासियों और उसकी जायदादों की रक्षा की जाए।

दूसरा यह कि उसके अक़ीदे, लक्ष्य, जीवन-व्यवस्था और सांस्कृतिक रूप-रेखा को नष्ट होने से बचाया जाए, जिसके लिए इस्लामी राज्य का गठन होता है।

तीसरा यह कि हर उस विध्वंसकारी शक्ति की रोकथाम की जाए, जो ख़ुदापरस्ताना इंक़िलाब और मानव-कल्याण आन्दोलन के फैलाव में रोक बने।

और चौथा यह कि अगर किसी ज़ालिम ताक़त के हाथों कमज़ोर इनसान, बेबस औरतें और मासूम बच्चे लगातार दुख सह रहे हैं और उन्हें सुधार व सफलता का रास्ता अपनाने से रोका जा रहा हो, तो ऐसी विध्वंसकारी शक्ति की जड़ें उखाड़ दी जाएँ।——

जिहाद की इस धारणा के विशाल क्षेत्र में प्रतिरक्षात्मक लड़ाई भी आ जाती है, मगर याद रहे कि आन्दोलनों और सभ्यताओं की हर लड़ाई एक पहलू से प्रतिरक्षात्मक होती है और दूसरे पहलू से आक्रामक, बल्कि साथ ही साथ वह सुधारात्मक व रचनात्मक भी होती है।

जिहाद की इस धारणा के अन्तर्गत प्यारे नबी (सल्ल०) और आपके साथियों का मामला विरोधियों के साथ इस तरह था जैसे कोई एक बंजर धरती को तैयार करके उसमें फुलवारी बनाना चाहता हो, लेकिन कुछ जंगली पशु एक तो उसके तैयार की हुई धरती को बार-बार ख़राब करें और फिर जब सुन्दर फूल खिलने लगें तो एक-एक पौधे को नोचकर क्यारियों को उजाड़ देना चाहें। आख़िर इन जंगली पशुओं के साथ किस क़ानून या नैतिक चेतना के तहत बेजा मुरव्वत की जा सकती है। अरब में दो शक्तियाँ आमने-सामने थीं। एक ओर विधिवत सुव्यवस्थित राज्य था, इसमें साफ़-सुथरा शालीन समाज पल-बढ़ रहा था, यह राज्य सारी दुनिया के लिए एक सफल संदेश का अलमबरदार था। दूसरी ओर शिर्क के विवेकहीन अक़ीदे थे, हर क़बीले का अलग एक अंदाज़ था, नैतिक स्तर

पतन ग्रस्त था, एक पुरानी अधकचरी सभ्यता थी जिसमें कोई बहाव न था और खड़ा पानी सड़ रहा था।

अतः मक्के और मदीने के बीच लड़ाई का जो दौर गुज़रा है उसका रूप गृहयुद्ध (Civil war) का-सा था, जिसे क्रान्ति लानेवाली शक्ति के ख़िलाफ़ पहल करके क्रान्ति विरोधी शक्ति ने शुरू किया था।

बद्र की पहली लड़ाई की पृष्ठभूमि यह थी कि हिजरत के वक़्त नबी (सल्ल०) के ख़िलाफ़ क़ुरैश के सरदारों ने क़त्ल का षड्यंत्र किया और मक्के की गलियों में हिजरत की रात को तलवारें तनी हुई थीं। अक़्बा की बैअत के वक़्त बैअत करनेवालों पर यह सच्चाई खुल गई थी कि हुज़ूर (सल्ल०) को मदीना ले जाने का मतलब लड़ाई है। फिर मक्कावालों का एक ख़ुफ़िया पत्र अब्दुल्लाह बिन उबई को मिला, जिसमें मदीनावालों को धमकी दी गई थी कि तुम ख़ुद से हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपनी सीमाओं से निकाल दो, वरना हम चढ़ाई करेंगे और तुम्हें क़त्ल करके तुम्हारी औरतों को भोग-विलास की सामग्री बना लेंगे। फिर एक सन्देश सीधे-सीधे मुसलमानों को पहुँचाया गया कि "इसपर घमंड न करो कि तुम मक्का से सही-सलामत निकल गए, हम मदीने पहुँचकर तुम्हारी ख़बर लेंगे।"

उसी ज़माने में हज़रत साद बिन मआज़ (रज़ि०) को अबू जहल ने काबा के तवाफ़ (परिक्रमा) से रोका और कहा कि मुझे यह पसन्द नहीं है कि तुम लोग बैतुल्लाह में क़दम रखो। इसके जवाब में साद बिन मआज ने कहा, "तुम हमें तवाफ़ काबा से रोकोगे तो हम तुम्हारे व्यापारिक राजमार्ग को रोकेंगे।"

घटनाओं की इन सारी कड़ियों को जोड़कर देखें तो यह बात समझ में आती है कि मक्के की ओर से मुसलमानों के ख़िलाफ़ लड़ाई का एलान पहले दिन से वातावरण में लिखा हुआ मौजूद था।

क़ुरैश को अपनी तलवार को नंगा करने में कुछ कारणों से देर हुई, वरना वे बहुत पहले क़दम उठा चुके होते। उनके सामने एक समस्या बनू किनाना की मदद की थी, जबकि उनका इलाक़ा मक्का और मदीना के बीच रोक था। बनू किनाना से क़ुरैश का पुराना बैर था। डर यह था कि वह क़ुरैश की सेना को अपने इलाक़े से गुज़रने न दे। यह ख़तरा भी था कि क़ुरैशी सेना मदीना पर हमलावर हो तो पीछे से बनू किनाना मक्के पर हमला कर दे या कम से कम क़ुरैशी सेना का रास्ता मक्के से काट दे। सुराक़ा बिन मालिक मुदलजी किनानी इस इलाक़े का सरदार था। उसे जब मालूम हुआ तो उसने ख़ुद मक्का जाकर क़ुरैश को सहायता का यक़ीन दिलाया।

मक्कावालों की दूसरी समस्या योद्धाओं के जुटाने की थी। इसका हल यह निकला कि मामला अहाबीश से तय पा गया जो योद्धा और तेज़ मिज़ाज थे और मुआवज़े पर भी लड़ाइयाँ लड़ते थे। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने मक्का के क़रीब अल-अहाबिश नामक घाटी में मक्कावालों से मैत्रीपूर्ण समझौता किया था।

एक समस्या रुपए-पैसों की थी, सो जो तिजारती क़ाफ़िला इस साल शाम (सीरिया) जा रहा था उसे मक्के के लोगों ने ज़्यादा से ज़्यादा पूँजी इकट्ठी करके दी, यहाँ तक कि औरतों ने अपने गहने और बचत के पैसे ला-लाकर पेश कर दिए। मक़सद यह था कि इस पूँजी पर जो भारी लाभ मिले, उसे मदीने के ख़िलाफ़ लड़ाई की कार्रवाई में खपा दिया जाए।

सोचा जाए तो यह तिजारती क़ाफ़िला तिजारती क़ाफ़िला न था, बल्कि इसकी कमाई हुई हर अशर्फ़ी मुसलमानों का ख़ून बहाने के लिए बरछी के फल और तलवार की धार की तरह थी। दुनिया का कोई राज्य आज भी अपने प्रभाव-सीमा में इस क़िस्म की गतिविधियों का खुला मौक़ा किसी दुश्मन-ताक़त को नहीं दे सकता। क़ुरैश के तिजारती क़ाफ़िलों के ख़िलाफ़ मुसलमानों की तरफ़ से जो कार्रवाई शुरू की गई थी, उसे नादान और तास्सुब के सारे प्राच्य-विद्या विशारदों ने लूट-मार क़रार दिया। हालाँकि वहाँ उद्देश्य यह था कि क़ुरैश तिजारत (व्यापार) के परदे में लड़ाई की तैयारियों की मुहिम जारी न रख सकें।

इस बात को यहीं छोड़कर हम एक पिछली घटना की ओर ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं। बयान हो चुका है कि नख़ला की ओर जो सैन्य टुकड़ी गश्त के लिए भेजी गई थी, उसका सामना क़ुरैश के एक छोटे-से क़ाफ़िले से हुआ। झड़प हो गई। दुश्मन का एक आदमी अम्र बिन हज़रमी मारा गया। एक व्यक्ति भाग गया, दो क़ैदी बना लिए गए। ग़नीमत का कुछ माल सैन्य टुकड़ी के क़ब्ज़े में आया। यह टुकड़ी जब मदीना वापस पहुँचा तो हुज़ूर (सल्ल०) इस कार्रवाई पर तेज़ नाराज़ हुए, क्योंकि लड़ने की इजाज़त नहीं दी गई थी। हुज़ूर (सल्ल०) ने क़त्ल किए व्यक्ति का ख़ूनबहा (प्रतिदान), ग़नीमत का माल और क़ैदी मक्का भिजवा दिए। हुज़ूर (सल्ल०) के इतना कुछ करने के बावजूद मक्का में उत्तेजना फैल गई। संयोग की बात कि मुस्लिम टुकड़ी को यह ज्ञान न था कि उसी दिन से माहे हराम (मान्य महीना) शुरू हो रहा था और माहे हराम में किसी पर हमला करना पूरे अरब की परंपरा के विरुद्ध था। बस यह बात विरोधियों के लिए प्रचार का साधन बन गई और इस घटना को क़ुरैश ने लड़ाई के लिए क़दम उठाने का बहाना बना लिया।

बरकतों भरी विचित्र स्थिति थी कि पहला रमज़ान का महीना, जिसके रोज़े

फ़र्ज़ किए गए थे, इसी में सत्य-असत्य की पहली लड़ाई हुई और विजय सत्यवालों की हुई। असत्य को पीठ पीछे भागना पड़ा।

इस महीने को, जिसमें क़ुरआन उतरना शुरू हुआ था, अल्लाह ने सब्र व तक़वा की तरबियत का ज़रिया बनाया, जिसके बिना इस्लामी जिहाद के बारे में कुछ सोचना संभव ही नहीं। इसी महीने में रोज़े की हालत में सत्य के सिपाहियों ने हुज़ूर (सल्ल०) के साथ पहाड़ियों और घाटियों के गश्त किए। रोज़े रखकर ही लड़ाई लड़ी गई और विजय भी हाथ लगी।

प्रशिक्षण का यह महीना ईमानवालों के लिए बहुत ही बड़ी परीक्षा है। रमज़ान इस बात की कसौटी बनकर आता है कि क्या दुनिया में नेकी को ग़ालिब करने और बुराई की जड़ें काट देनेवाले सिपाही क्रान्तिकारी कर्त्तव्य निभाने के लिए आगे बढ़ रहे हैं? क्या इनको मनोकामनाओं पर इतना कन्ट्रोल है कि वे अपनी सामान्य इच्छाओं को अपने ऊपर राज न करने दें, बल्कि स्वयं उनपर राज करें? अगर यह बात नहीं, तो सुन्दर उद्देश्यों के उच्चस्तरीय नारे तो हर कोई आसानी से लगा लेता है। निर्णायक बात यह है कि वह उनके लिए क़ुरबानियाँ देने और तकलीफ़ें उठाने का सामर्थ्य रखता है या नहीं। रमज़ान का महीना ख़ुदाई फ़ौज के लिए ऐसे जिहाद करनेवालों को तैयार करने की कसौटी है, जो भूख-प्यास सहकर, झूठ और ग़ीबत से दूर रहकर और सुख-सुविधा की दूसरी शारीरिक इच्छाओं को अधीन करके अल्लाह की पुकार पर लपकते हैं। वरना अगर कोई व्यक्ति खाने-पीने पर कुछ घण्टों की पाबन्दी सहन नहीं कर सकता, नींद का कोई हिस्सा क़ुरबान नहीं कर सकता, दाम्पत्य-सीमाओं के मनोविहार से कुछ दिन तक नहीं बचा रह सकता, फिर अगर वह इस्लाम की सेवाओं और इस्लामी क्रान्ति और इस्लामी स्वरूप की बातें करता है, तो ऐसी खोखली बातों से दुनिया विजित नहीं हुआ करती। दुनिया उन लोगों से विजित होती है जो दूसरों से पहले अपने साथ लड़कर अपने आप पर विजय प्राप्त कर चुके हों।

रमज़ान की बरकतों के साए में मुस्लिम मुजाहिदीन हुज़ूर (सल्ल०) के नेतृत्व में जिहाद के रास्ते पर पहली बार आगे क़दम बढ़ाते हैं।

# सत्य-असत्य की पहली लड़ाई

इस्लामी राज्य मदीना के प्रमुख (मुख्य प्रशासक) नबी (सल्ल०) फ़ौजी तैयारियों के साथ स्थिति पर नज़र रखे बराबर अन्दाज़ा कर रहे थे कि कब क्या होनेवाला है। हुज़ूर (सल्ल०) का दृष्टिकोण गतिहीन नहीं था कि बैठे देखते रहिए, जब दुश्मन हमला करेगा तो जवाब देने की फ़िक्र करेंगे, बल्कि विशुद्ध प्रतिरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी सोचा जाए तो बेहतर शक्ल यही थी कि दुश्मन ज्यों ही लड़ाई की तलवार को सान पर रखे, उस तलवार को तोड़ देने की फ़िक्र की जाए। लड़ाई को रोकने से बेहतर लड़ाई की तैयारियों को रोकना होता है।

जिस क्षण हुज़ूर (सल्ल०) को क़ुरैश के उस तिजारती क़ाफ़िले की ख़बर अपने फ़ौजी चौकसी रखनेवालों के ज़रिए मिली, जो सामरिक कार्रवाई का आरंभ था, आपने उसमें हस्तक्षेप करने का फ़ैसला किया। मेरे नज़दीक कोई वजह नहीं कि हुज़ूर (सल्ल०) के इस क़दम का विरोधी कोई ग़लत अर्थ लें और न कोई वजह इस बात की है कि हम ख़ामख़ाही शरमाकर इसपर माज़रत करते फिरें। दूसरी ओर क़ाफ़िले के सरदार अबू सुफ़ियान ने शाम की ओर जाते हुए भी मदीने की फ़िज़ा को सूँघने की कोशिश की और आते हुए भी; वह फूँक-फूँक के क़दम रख रहा था। उसे ज्यों ही ख़तरे का एहसास हुआ, उसने फ़ौजी मदद-तलब करने के लिए अपना दूत मक्के की ओर दौड़ाया। दूत ने मक्का जाकर चीख़-चीख़कर दुहाई दी कि क़ुरैश के लोगो! अपने क़ाफ़िले को मुहम्मद के हाथों से बचाने निकलो। तेज़ भावुक मनोदशा के साथ एक मज़बूत फ़ौज कील-काँटे से लैस होकर निकल खड़ी हुई। अबू लहब के सिवा तमाम बड़े सरदार शामिल थे। रसूले ख़ुदा (सल्ल०) को जासूसी-व्यवस्था से यह सूचना मिल गई, अब निर्णायक ऐतिहासिक क्षण सामने था। अगर ताक़त काफ़ी होती तो क़ुरैशी क़ाफ़िला तिजारत और मक्का की फ़ौज दोनों को निशाने पर ले लिया जाता। लेकिन फ़ैसला यही था कि दोनों में से किसी एक की तरफ़ तवज्जोह की जा सकती है।

हुज़ूर (सल्ल०) ने ज़फ़िरान घाटी में अपने साथियों को सलाह व मशविरे के लिए बुलाया। वहाँ वार्ता इस विषय पर थी कि इस मौक़े पर क्या करना चाहिए। एक अच्छे-भले बड़े गिरोह ने क़ाफ़िले की ओर कूच करने की राय दी। हुज़ूर (सल्ल०) ने फिर अपना सवाल दोहराया। हुज़ूर (सल्ल०) के मत को समझकर मुहाजिरीन की ओर से हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०), हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०), हज़रत मिक़्दाद बिन अम्र (रज़ि०) ने भरपूर अन्दाज़ में अपनी भूमिका निभाई कि ख़ुदा के हुक्म के तहत आप जिधर भी क़दम उठाएँ, हम आपके साथ

होकर लड़ें-मरेंगे और बनी इसराईल की तरह यह कहकर बैठे न रहेंगे कि मूसा ! जाओ, तुम और तुम्हारे ख़ुदा मिलकर लड़ें। हुज़ूर (सल्ल०) ने एक बार फिर सवाल दोहराया। मंशा यह थी कि अनसार जिनके साथ अक़बा के समझौते में सिर्फ़ इतनी बात तय थी कि मदीने पर हमला होने की शक्ल में वे बचाव करेंगे। अब जबकि वे सिर्फ़ क़ुरैशी क़ाफ़िले को रोकने के प्रोग्राम पर निकले थे, क़ुरैशी फ़ौज के आ जाने की वजह से बाक़ायदा सामरिक कार्रवाई ज़रूरी हो गई थी। हुज़ूर (सल्ल०) जानना चाहते थे कि उनका रवैया क्या होगा। साद बिन मुआज़ (रज़ि०) अनसार की ओर से बोले कि आप जो भी क़दम उठाएँ हम आपके साथ समुद्र में भी कूदने को तैयार हैं।

स्पष्ट रहे कि प्यारे नबी (सल्ल०) 12 रमज़ान सन् 02 हि० को मदीने से निकले। यह पहला रमज़ान था, जबकि पूरे महीने के रोज़े फ़र्ज़ किए गए। मशहूर रिवायत के मुताबिक़ मुसलमान सिपाहियों की तादाद 313 थी, कुछ शोधकार्य करनेवालों की राय में 317 थी। सफ़रा नामी जगह पर आपने बीस जाँनिसारों को भेजा कि वे क़ाफ़िले का पता मालूम करके आएँ। ख़ुद ज़फ़िरान जा पहुँचे। सूचना मिली कि क़ाफ़िला बद्र का रास्ता छोड़कर समुद्र तट के लम्बे रास्ते की ओर निकल गया है और वह काफ़ी दूर जा चुका है।

क़ाफ़िले के बचकर निकल जाने पर अबू सुफ़ियान ने क़ुरैशी फ़ौज के सरदारों को मशविरा दिया कि अब सबको लौट जाना चाहिए। कुछ सरदारों ने अबू सुफ़ियान की ताईद की, मगर अबू जहल का पारा चढ़ा हुआ था। उसने नख़ला की घटना में क़त्ल किए गए हज़रमी के भाई अला बिन हज़रमी को भड़का दिया, जिसने एक भावनात्मक बवंडर खड़ा कर दिया। आख़िर क़ुरैशी फ़ौज़ बद्र के मैदना के किनारे आ गई।

हुज़ूर (सल्ल०) ने साथियों के मशविरे से सैनिक दृष्टि से अपने कैम्प के लिए बेहतरीन जगह को चुना और सामरिक योजना को अच्छी तरह सोच लिया। दुश्मन की तादाद और मुख्य व्यक्तियों के बारे में जासूसी कराई, फिर साथियों से फ़रमाया—

"मक्का ने अपने पुत्र तुम्हारे सामने ला डाले हैं", यानी मौक़ा है कि उन फ़सादी लोगों का सफ़ाया कर दो।

दुश्मन की फ़ौज लगभग एक हज़ार लोगों पर सम्मिलित थी। उनमें से छः सौ कवचधारी, एक सौ सवार सम्मिलित थे। ऊँटों की भीड़ साथ में थी। हथियार बहुत ज़्यादा थे। खाद्य-पदार्थ पर्याप्त थे। सिपाहियों को ख़ुश करने के लिए शराब के मटके और गानेवाली लौंडियाँ साथ थीं। दूसरी ओर तीन सौ से कुछ

ज़्यादा बे-सर व सामान ख़ुदापरस्त थे। उनकी ताक़त उनके ईमान, उनके मिशन, उनके ज्ञान, उनके सब्र व तक़्वा, उनके चरित्र, और उनके संगठन की वजह से थी। हुज़ूर (सल्ल०) की मुस्लिम फ़ौज के सामने मामला सिर्फ़ एक लड़ाई जीतने का न था, बल्कि इस्लामी आन्दोलन की पूरी बाज़ी मार लेने का था। उनका अतीत, वर्त्तमान और भविष्य सब कुछ बद्र के मैदान में सिमट आया था।

और हुज़ूर (सल्ल०) ने गिड़गिड़ाकर भीगी पलकों के साथ ख़ुदा से दुआ की कि "ऐ अल्लाह ! ये हैं क़ुरैश ! ये घमण्ड और दंभ के नशे में चूर इस मक़सद से आए हैं कि तेरे बन्दों को तेरी इबादत से बाज़ रखें और तेरे रसूल को झुठलाएँ। पस ऐ अल्लाह ! तू अपनी मदद भेज, जिसका तूने मुझसे वादा कर रखा है।" फिर फ़रमाया, "अगर ये कुछ जानें ख़त्म हो गई तो फिर क़ियामत तक तेरी इबादत न होगी।" गिड़गिड़ाकर माँगी गई इस दुआ के जवाब में हुज़ूर (सल्ल०) को दुआ के क़बूल कर लिए जाने और विजय दिलाने की ख़ुशख़बरी दी गई।

अगले दिन यानी 17 रमज़ान को फ़ौजें आमने-सामने आ खड़ी हुईं। हुज़ूर (सल्ल०) ने मुसलमान सिपाहियों को पंक्तिबद्ध किया। शुरुआत ललकार से हुई, फिर जो लड़ाई हुई तो मुसलमान सिपाहियों ने 22 जानों को क़ुरबान करके दुश्मन के 70 व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा, जिनमें शैबा, उत्बा, अबू जहल, आस बिन हिशाम, उमैया बिन ख़ल्फ़ और अबुल बख़्तरी जैसे बड़े लीडर शामिल थे, साथ ही अपना कोई आदमी दिए बग़ैर दुश्मन के सत्तर व्यक्तियों को क़ैदी बनाया। बद्र की लड़ाई के कुछ पहलू बड़ा ध्यान चाहते हैं—

बद्र की लड़ाई घटनापरक गवाही है। इस बात की सिपाहियों की तादाद और हथियारों की ताक़त में ईमानी ताक़त बहुत बढ़ोत्तरी कर देती है। इसी के साथ सत्य-असत्य की यह लड़ाई क़ुरआन की इस आयत की व्याख्या है कि "विजय तो सिर्फ़ अल्लाह की ओर से है।" (क़ुरआन, 8 : 10; 3 : 126)

यह घटना एक रौशन शमा है कि लड़ाई के इंतिहाई नाज़ुक क्षण में, जबकि शक्ति की कमी इस्लामी मोर्चे पर प्रकट थी, हुज़ूर (सल्ल०) ने मक्का से आनेवाले दो मुसलिम नौजवानों की सेवा लेने से इस कारण इनकार कर दिया कि रास्ते में उन्हें दुश्मन ने गिरफ़्तार कर लिया और इस वादे पर छोड़ा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ लड़ाई में शरीक नहीं होंगे। हुज़ूर (सल्ल०) ने दोनों से फ़रमाया कि तुम जो वादा कर आए हो, अनिवार्य रूप से उसे पूरा करो। यह थी नैतिक श्रेष्ठता, जिस तक मानवता को पहुँचाना अभीष्ट था।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने न सिर्फ़ इससे मना कर दिया था कि दुश्मन की लाशों का अनादर किया जाए, बल्कि एक बड़ा गढ़ा खोदकर उनके दफ़्न

करने का इन्तिज़ाम भी किया।

ग़नीमत के माल के बारे में रिवाज था कि सब लोग अंधा-धुंद टूट पड़ते और जो कुछ किसी को हाथ लगता, ले उड़ता। इस्लामी जिहाद के निमयों ने इस अव्यवस्था को व्यवस्था में बदल दिया। ग़नीमत का सारा माल सरकार के हाथ में चला गया। बद्र के मैदान में भी मुजाहिदीन ने हर चीज़ अपने सेनापति के क़दमों में रख दी, फिर हुज़ूर (सल्ल०) ने अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ उसको बाँटा।

एक और पहलू ध्यान देने योग्य है कि दुनिया में लड़ाई में पकड़े गए क़ैदियों से बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था, पीड़ा भी पहुँचाई जाती और ज़लील भी किया जाता। हुज़ूर (सल्ल०) ने लड़ाई में पकड़े गए क़ैदियों को इंसानी शरफ़ (इज़्ज़त) बख़्शा, मदीने के बहुत-से घरों में उन्हें रखा गया और हुज़ूर (सल्ल०) ने सहाबा को ताकीद कर दी कि क़ैदियों को अच्छा खिलाएँ और पहनाएँ। इस आदेश के पालन में कुछ सहाबियों ने ख़ुद खजूरों पर गुज़र-बसर की और क़ैदियों को अच्छा खाना दिया। जिन क़ैदियों के पास कपड़ा कम था, उनको कपड़े दे दिए गए। मस्जिदे नबवी में जो क़ैदी रखे गए, उनके कराहने की आवाज़ ने हुज़ूर (सल्ल०) की नींद गायब कर दी और आप उस वक़्त तक न सो सके, जब तक कि उनके बंधन ढीले न कर दिए गए।

क़ैदियों की रिहाई के लिए हुज़ूर (सल्ल०) ने चार-चार हज़ार दिरहम प्रति क़ैदी फ़िदया मुक़र्रर किया, कुछ धनवानों के लिए इससे ज़्यादा रकमें भी। यह रक़म ढाई-पौने तीन लाख दिरहम बनती थी। क़ुरैश पर इतना माली बोझ पड़ने का दूसरा मतलब उनकी सामरिक शक्ति में कमी करना था।

बड़ी ही अहम बात यह है कि ख़ुदापरस्त विजेताओं ने पहली ही लड़ाई में इतनी ज़बरदस्त विजय पाने के बावजूद न कोई जश्न मनाया, न ढोल-ताशों, बैंड-बाजों के साथ मदीना की ओर मार्च किया। प्यारे रसूल (सल्ल०) के तैयार किए हुए मुजाहिदों की ख़ुशियाँ ख़ुदा के ज़िक्र (याद) और ख़ुदा के शुक्र में ढल गई थीं। फिर यह भी नहीं हुआ कि मुसलमान ताक़त के नशे में पड़ जाएँ या यह समझने लगें कि हमने कोई ऊँचा स्थान पा लिया है। इसके ख़िलाफ़ क़ुरआन ने उनपर प्रभावी आलोचना करके बताया कि तुममें अभी क्या-क्या कमज़ोरियाँ काम कर रहीं। और यह आलोचना खुलेआम की जाती थी और हर ओर फैल रही थी।

आख़िरी ईमान बढ़ानेवाली सच्चाई यह ध्यान देने की है कि क़ुरआन ने बद्र के दिन को फ़ुर्क़ान का दिन क़रार दिया, यानी इस लड़ाई से यह बात निखरकर सामने आ गई कि सत्य किधर है और असत्य किधर—और कौन-सी शक्ति परवान चढ़नेवाली है, और किसे मिट जाना है।

# बद्र की लड़ाई से उहुद की लड़ाई तक

बद्र की लड़ाई का उल्लेख हो चुका। उहुद की लड़ाई का अध्याय सामने है। इन दोनों बड़ी घटनाओं के बीच जो कुछ हुआ उसपर एक उचटती नज़र डाल लेनी चाहिए, पर इससे भी पहले हलकी-सी झलक उस अप्रिय स्थिति की, जो यहूदियों ने पैदा की थी, उसका उल्लेख इसलिए ज़रूरी है कि आगे प्यारे नबी (सल्ल०) की जीवन-चर्या और इस्लामी इतिहास को समझने में मदद मिलेगी।

यहूदियों से, ज़ाहिर में, यह उम्मीद होनी चाहिए थी कि एक ख़ुदापरस्त, पैग़म्बरों की नामलेवा और ख़ुदाई किताब की वारिस क़ौम आख़िरी पैग़म्बर के इस्लामी आन्दोलन से सहयोग करेगी, पर यहूदियों ने बड़ा घटिया विरोधपूर्ण रास्ता अपनाया।

क़ुरैश के विरोध में दम्भ था या श्रेष्ठ भावना, लेकिन यहूदियों के यहाँ प्यारे नबी (सल्ल०) के ख़िलाफ़ जलन पाई जाती थी, जो हीन भावना का रूप अपना लेती है। धार्मिक लोग जब पस्ती में गिरते हैं, तो फिर 'पस्ती का कोई हद से गुज़रना देखे।'

ऊँचे दर्जे के एक यहूदी आलिम की मानसिकता देखिए। उम्मुल मोमिनीन हज़रत सफ़िया (रज़ि०) बयान करती हैं कि मैं अपने हुय्या बिन अख़तब और चचा अबू यासिर बिन अख़तब की निगाह में सारी औलाद से ज़्यादा चहेती थी। जब रसूले ख़ुदा (सल्ल०) मदीना आए और क़ुबा में ठहरे रहे तो मेरे ये बाप और चचा दोनों मिलने गए। वापस आए तो इतने परेशान थे कि मेरे सलाम करने पर ध्यान न दिया। चचा ने बाप से पूछा, "क्या यह वही पैग़म्बर हैं, जिनके लिए वादा है?" बाप ने जवाब दिया, "हाँ, ख़ुदा की क़सम!" फिर चचा ने पूछा, "आगे के लिए क्या इरादा है?" कहा, "ख़ुदा की क़सम! जब तक ज़िंदा हूँ, दुश्मनी और सिर्फ़ दुश्मनी रखूँगा।" कैसी है निर्लज्जता! जान लिया, पहचान लिया, मगर मान के नहीं दिया।

लगभग यही मानसिकता थी जो तमाम यहूदियों में छाई हुई थी।

हुज़ूर (सल्ल०) की मजलिस में आते तो ऐसे शब्दों में और ऐसी शैली में बातें करते कि एक पहलू तौहीन का और मज़ाक़ उड़ाने का होता, ऊट-पटाँग सवाल करते। जैसे—

ख़ुदा ने सब कुछ पैदा किया, आख़िर ख़ुदा को किसने पैदा किया?

कभी माँग करते कि अगर आप पैग़म्बर हैं, तो हमें ख़ुदा की एक झलक दिखा दीजिए।

कभी कहते कि ख़ुदा सामने आकर हमसे बात करे।

अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने के हुक्म का मज़ाक़ उड़ाते। कहते : लो जी (नऊज़ुबिल्लाह) ख़ुदा भी दीवालिया हो गया है कि लोगों से चन्दे और क़र्ज़ माँगता है।

मुसलमानों को सदक़ा देने से रोकते कि क्यों पैसा बरबाद कर रहे हो, यह तो चार दिन का खेल है।

मुसलमान हुक्म सुनकर कहते, "समिअ्ना व अतअना" (हमने सुना और इताअत की)। और ये उनकी आवाज़ों में आवाज़ मिलाकर कहते, "समिअना व असैना" (हमने सुना और नाफ़रमानी की)।

अपने आदमियों को कहते कि जाओ, थोड़ी देर के लिए मुसलमान हो जाओ, फिर वापस आ जाना और कहना कि अन्दर का हाल देखकर निराशा हुई।

कुछ लोगों को जासूस बनाकर मजलिसों में भेजते, रातों को सारी रिपोर्टें लेकर हुज़ूर (सल्ल०) सहाबा किराम (रज़ि०) और इस्लामी आन्दोलन के ख़िलाफ़ शातिराना चालें सोचते।

यहूदियों की ऐसी हरकतों का नतीजा यह हुआ कि वे मुनाफ़िक़ों (कपटाचारी) का गिरोह पैदा करने में सफल हो गए। मुनाफ़िक़ ज़ाहिर में मुसलमानों की तरह दिखाई देते, जब कोई ख़ास मौक़ा आता, तो रुकावटें डालते, कोई ज़िम्मेदारी सामने आती तो सटक जाते।

नख़लावाली घटना पर प्रचार किया कि देखो जी, ये नये ख़ुदापरस्त हराम महीनों का आदर भी नहीं करते। बाद में जब हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) उम्मुल मोमिनीन बनीं तो तूफ़ान उठा दिया कि लो जी, नऊज़ुबिल्लाह! अपनी बहू के साथ शादी कर ली है, क्योंकि हज़रत ज़ैद (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के मुँह बोले बेटे मशहूर थे। क़ुरआन ने बाद में स्पष्ट किया कि मुँह बोले बेटे को सगे बेटे के स्थान पर नहीं रखा जा सकता। इन गन्दे ज़ेहन के लोगों ने एक मौक़े पर हज़रत आइशा (रज़ि०) पर आरोप लगाकर एक भारी संकट में डाल दिया। उहुद की लड़ाई को जानेवाली फ़ौज से उनके तीन सौ आदमी अलग हो गए।

फिर उन्होंने अपनी दौलत के डंक ग़रीब मुहाजिरीन को लगाए, बल्कि ख़ुद प्यारे नबी (सल्ल०) को भी पैसे के बल पर पीड़ाएँ दीं। एक ओर ज़रूरतमंद मुसलमानों से बहुत सख़्त मज़दूरी लेते और कम मुआवज़ा देते, दूसरी ओर उन्हें क़र्ज़ देकर पूरी महाजनी शान से भारी पीड़ा पहुँचाते। यहाँ सिर्फ़ एक मिसाल काफ़ी होगी। अबू हदरद अस्लमी एक यहूदी से क़र्ज़ ले बैठे। निर्धारित समय

पर तन के मामूली कपड़ों के अलावा उनके पास कुछ न था। उन्होंने मोहलत तलब की, मोहलत नहीं मिली। यहूदी इस क़िस्से को हुज़ूर (सल्ल०) तक लाया। हुज़ूर (सल्ल०) के कहने पर भी यहूदी ने मोहलत नहीं दी, बल्कि अबू हदरद के बदन से उनका तहमद उतरवा लिया। याद रहे कि ख़ुद हुज़ूर (सल्ल०) का ज़िरह (कवच) उम्र के आख़िरी दिनों में एक यहूदी के पास रेहन था।

यहूदियों ने नाज़ुक जंगी मौक़ों पर जो ग़द्दारियाँ कीं और अपनी जगह, बार-बार हुज़ूर (सल्ल०) को क़त्ल करने की नापाक कोशिशें कीं। ज़हर भी खिलाया गया और जादू के टोनों-टोटकों से भी काम लिया गया।

ऐसे धुआँधार माहौल में रहते हुए हुज़ूर (सल्ल०) ने बद्र की लड़ाई से मक्का-विजय तक की पूरी कार्रवाइयाँ बड़ी सफलता के साथ पूरी कीं।

अब उन कुछ घटनाओं का उल्लेख जो पहली दो लड़ाइयों के बीच में हुईं—

हुज़ूर (सल्ल०) जब मदीना से बद्र पहुँचे तो सूचना मिली कि बनी सुलैम हमले के लिए इकट्ठा हो रहे हैं। आप 25 रमज़ान को माउलकद्र के स्थान पर जा पहुँचे। तीन दिन वहाँ कैम्प रखा, मगर दुश्मन का कोई निशान न मिला।

रमज़ान के ख़त्म होने में दो दिन बाक़ी थे कि सदक़तुल फ़ित्र (फ़ितरा) और ईद की नमाज़ अदा करने का हुक्म हुआ।

दूसरे हिजरी साल में ज़कात फ़र्ज़ हुई, जो नमाज़ के बाद इस्लाम का बहुत अहम रुक्न (स्तम्भ) है।

इसी दौरान हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की शादी हुई।

ठीक उस वक़्त जब हुज़ूर (सल्ल०) बद्र की लड़ाई के सिलसिले में मदीने से बाहर थे, यहूदियों के क़बीले बनी क़ैनुक़ाअ ने मदीना में फ़ितने फैलाने शुरू किए, मुसलमानों को तंग करने लगे। उनकी दुष्टता की अति यह थी कि एक अनसारी मुस्लिम महिला बाज़ार में किसी यहूदी की दुकान तक गई। उस यहूदी ने महिला को भरे बाज़ार में नंगा कर दिया। महिला ने अपनी फ़रियाद बुलन्द की। एक ग़ैरतमंद मुसलमान लपका और उसने दुष्ट यहूदी को क़त्ल कर दिया। इसके बाद यहूदियों और मुसलमानों के बीच बलवा हो गया।

प्यारे नबी (सल्ल०) वापस तशरीफ़ लाए तो आपने इस काम पर यहूदियों की निन्दा की, पर बनी क़ैनुक़ाअ ने ग़लती मानकर माफ़ी माँगने के बजाए कहा कि हम क़ुरैश नहीं है। जब हमसे मामला पड़ेगा तो हम दिखा देंगे कि लड़ाई किसे कहते हैं। मानो बनी क़ैनुक़ाअ ने मदीना-समझौता तोड़ दिया। हुज़ूर (सल्ल०) ने शव्वाल के बीच में बनू क़ैनुक़ाअ को घेर लिया। यह घेराव पन्द्रह दिन तक

चलता रहा। आख़िर में बनू क़ैनुक़ाअ ने अपने आपको हुज़ूर (सल्ल०) के हवाले कर दिया कि जो चाहें फ़ैसला करें, मामला उनके देश निकाले पर समाप्त हुआ।

बद्र के मैदान में क़ुरैश को जो रुसवा कर देनेवाली हार हुई, उसकी वजह से घर-घर में मातम मच गया, साथ ही बदले की भावना ने ज़ोर पकड़ा। अबू सुफ़ियान अब चूँकि मक्का का सरदार था, इसलिए उसकी ज़िम्मेदारी थी कि बद्र में क़त्ल किए गए लोगों का बदला ले। पूरी उत्तेजना के साथ 5 ज़िलहिज्जा को 270 सवारों के साथ हमले के लिए बढ़ा, अलबत्ता मदीना से तीन मील दूर 'अरीज़' नामक बस्ती पर जाकर गुस्सा उतारा। एक मुसलमान, यानी सॉद बिन अम्र अनसारी को क़त्ल किया, घास के ढेर को आग लगाई, कुछ मकान जलाए और भाग निकला।

हुज़ूर (सल्ल०) को ज्यों ही सूचना मिली, आप सिपाहियों की एक टुकड़ी साथ लेकर पीछा करने निकल खड़े हुए। अबू सुफ़ियान और उसके साथियों ने सत्तुओं के थैले रास्ते में गिराए, ताकि भागने में आसानी हो। इसी लिए इस घटना का नाम 'ग़ज़्व-ए-सवीक़' यानी 'सत्तू की लड़ाई' हुआ।

प्यारे नबी (सल्ल०) 9 ज़िलहिज्जा को 'ग़ज़्व-ए-सवीक़' से वापस मदीना तशरीफ़ लाए। आपने 10 ज़िलहिज्जा को दो रकअत नमाज़ ईदुल अज़हा (बक़रईद) अदा फ़रमाई और दो मेंढ़ों की क़ुरबानी दी, साथ ही मुसलमानों को भी क़ुरबानी करने का हुक्म दिया। यह पहली बक़रईद थी।

ज़िलहिज्जा की समाप्ति पर इस्लामी मदीना-राज्य के सरबराह (सल्ल०) को सूचना मिली कि बनी सालबा और बनी नज्द मस्जिद में जमा हो रहे हैं और मदीना के आस-पास लूट-मार का इरादा रखते हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत उसमान (रज़ि०) को मदीने में नायब मुक़र्रर फ़रमाया और साढ़े चार सौ मुजाहिदीन के साथ नज्द की ओर चल पड़े। इस कूच की ख़बर जब दुश्मन तक पहुँची तो वहाँ जमा हुए लोग पहाड़ों में बिखर गए। आपने सफ़र का पूरा महीना गुज़ारा और रबीउल अव्वल में मदीना वापस आ गए।

इस्लामी राज्य का एक असरदार दुश्मन काब बिन अशरफ़ यहूदी था, जो मदीने की ओर आता तो यहूदियों को ग़द्दारी पर उभारता और मक्कावालों से सम्पर्क होता तो उनको मुसलमानों के ख़िलाफ़ उकसाता। मुश्किल यह थी कि यह व्यक्ति हर ओर से घूम-घामकर अपने उस शानदार महल में चला जाता जो मदीना सीमाओं से बाहर, पर क़रीब ही स्थित था। बद्र की लड़ाई का नतीजा सुना तो यह जल-भुन गया। सीधा मक्का पहुँचा। क़त्ल किए गए लोगों का पुरसा किया और मक्कावालों को मुसलमानों के ख़िलाफ़ दोबारा तलवार उठाने के लिए

भड़काया, उसने एक मुहिम के तौर पर बद्र में क़त्ल किए गए लोगों पर मरसिए (शोकगान) पढ़ना शुरू किए। लोगों को ख़ूब रुलाता। इसी सिलसिले में अनेक क़बीलों का दौरा किया बाद में मदीना आया तो मुसलमान महिलाओं के नाम ले लेकर इश्क़िया अशआर (प्रेम-काव्य) पढ़ता और हुज़ूर (सल्ल०) के ख़िलाफ़ अपशब्द कहता, यानी इस्लामी आंदोलन के जवाब में अच्छा-भला विध्वंसकारी और विरोधी आन्दोलन उसने अकेले चला रखा था।

ज़ाहिर बात है कि अपनी करतूतों की दृष्टि से वह शत्रु गुट में का एक आदमी था, मुसलमानों और इस्लामी राज्य के हक़ में खुला अपराधी। उसके ख़िलाफ़ मुहम्मद बिन मुसलमा एक टुकड़ी लेकर कार्रवाई करने गए तो बहुत ही सही, बल्कि ज़रूरी, क़दम उठाया गया। इस टुकड़ी ने काब बिन अशरफ़ को रात के वक़्त ख़त्म किया। यह 14 रबीउल अव्वल की घटना है। यहूदियों को सूचना मिली तो बहुत घबराए और हुज़ूर (सल्ल०) से आकर मिले। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनके सारे करतूत उनके सामने रखे तो वे चकित रह गए, फिर उनसे एक वचन-पत्र लिखवाया कि यहूदियों में आगे कोई व्यक्ति ऐसी हरकतें नहीं करेगा।

ग़तफ़ान युद्ध के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) ने रबीउल अव्वल का महीना मदीने में गुज़ारा। रबीउस्सानी के शुरू में रिपोर्ट मिली कि बहरान नामक स्थान, जो हिजाज़ की खान है, वहाँ बनी सुलैम मुसलमानों के ख़िलाफ़ क़दम उठाने के लिए जमा हो रहे हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने मदीने में अब्दुल्लाह बिन उम्मे मक्तूम को नायब बनाया और तीन सौ सहाबा के साथ रवाना हो गए। बनी सुलैम को जब हुज़ूर (सल्ल०) के रवाना होने का इल्म हुआ तो वे बिखर गए।

क़ुरैश बद्र के तजुर्बे के बाद इतने भयभीत हो गए थे कि उन्होंने शाम का पुराना तिजारती रास्ता छोड़कर इराक़ का रास्ता अपनाया। जुमादल उख़रा में मक्का से एक तिजारती क़ाफ़िला अधिक माल लेकर चला। हुज़ूर (सल्ल०) तक ख़बर पहुँच गई। आपने ज़ैद बिन हारिसा (रजि०) के नेतृत्व में एक सौ सिपाहियों की टुकड़ी क़ाफ़िले की ताक में रवाना थी। ये मुजाहिदीन ज्यों ही क़ाफ़िले के सामने पहुँचे, उन्होंने हमला कर दिया। तिजारत के माल पर उनका क़ब्ज़ा हो गया, पर तमाम लोग क़ाफ़िले के बड़ों सहित भाग गए, सिर्फ़ क़ाफ़िले के लीडर फ़रात बिन हय्यान अजली को गिरफ़्तार कर लाए, जो मदीना आकर मुसलमान हो गए। इस क़ाफ़िले से हासिल होनेवाला ग़नीमत का माल का जो ख़ुम्स (पाँचवाँ हिस्सा) सरकारी ख़जाने में दाख़िल किया गया, उसकी मालियत 20 हज़ार दिरहम थी।

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) की बेटी हज़रत हफ़सा (रज़ि०) के शौहर हज़रत ख़ुनैस बद्र की लड़ाई में शहीद हो गए थे। अब हज़रत उमर (रज़ि०) को इस

विधवा हो जानेवाली युवती की चिन्ता हुई। हज़रत हफ़सा (रज़ि०) का भाग्य चमका और आप तीसरी हिजरी साल के शाबान महीने में नबी (सल्ल०) के हरम में दाख़िल हुईं।

घटनाओं के पिछले सिलसिले से अन्दाज़ा कीजिए कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर सिर्फ़ बद्र की घटना के बाद के कुछ महीनों में कितना ज़्यादा बोझ पड़ा और रक्षात्मक ज़रूरतों से लगातार सफ़र करना पड़ा। इन घटनाओं से इस सच्चाई का भी पता चलता है कि 'दीन तो शहादत गहे उलफ़त में क़दम रखना है।'[1] इसकी सीमाएँ सिर्फ़ मेहराब व मिंबर तक सीमित नहीं हैं। फिर यह बात भी समझ में आती है कि दीन को कुफ़्र और शिर्क पर सम्मिलित व्यवस्थाओं के मुक़ाबले में ग़ालिब करने की कोशिश कोई खेल नहीं। यह एक इंक़िलाबी मुहिम है, जिसमें क़दम-क़दम पर त्याग व बलिदान से काम लेना पड़ता है।

1. ऐसा प्रेम जिसकी बेदी पर बलि चढ़ जाना हो।

# उहुद की लड़ाई

'जंगे सवीक़' के बाद अगरचे अबू सुफ़ियान की बदला लेने की क़सम देखने में तो पूरी हो चुकी थी, पर ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) के हाथों तिजारती क़ाफ़िले के लड़ने की वजह से एक लाख दिरहम का जो नुक़्सान क़ुरैश को हुआ था और बद्र के क़ैदियों के फ़िदये में जो ढाई लाख दिरहम देने पड़े, उनकी वजह से मक्का में बदले की भावना की लहर बहुत तीव्र होती जा रही थी। उसी लहर के दबाव की वजह से अबू सुफ़ियान ने मदीने पर चढ़ाई करने का एलान कर दिया और गली-कूचों में बदले की आवाज़ें ऊँची उठने लगीं।

बद्र की लड़ाई के वक़्त तिजारत का जितना सामान शाम से आया था, उसका मुनाफ़ा पहले ही सामरिक कोष में जमा था। उसमें बढ़ोत्तरी के लिए और ज़्यादा जंगी चंदा इकट्ठा किया गया।[1] अम्र जोम्ही और मुसाफ़िह दो कवियों ने अरब क़बीलों का दौरा किया और जगह-जगह अपने काव्य से लोगों की भावनाओं में उत्तेजना पैदा की। कनाना और तहामा के दो क़बीलों ने भी क़ुरैश से सहयोग का फ़ैसला किया। इस तरह तीन हज़ार सिपाहियों की सेना जमा हो गई। मक्का से रवाना होते हुए उन लोगों ने औरतों को भी साथ लिया, ताकि उनकी वजह से सिपाहियों में लाज-शर्म पैदा हो और लोग भागें नहीं। इस सेना ने उहुद पहाड़ के क़रीब ऐनैन नामी जगह पर आने के बाद पड़ाव डाला।

हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने जो बद्र की लड़ाई के बाद ईमान ले आए थे, पर अभी तबदीली को ज़ाहिर नहीं किया था। प्यारे नबी (सल्ल०) को द्रुतगामी दूत के ज़रिए क़ुरैश की सारी तैयारियों और इरादों की सूचना दे दी। यह दूत सेना के पहुँचने से तीन दिन पहले हुज़ूर (सल्ल०) के पास पहुँच गया था।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने सूचना मिलते ही, हज़रत अनस और हज़रत मूनिस (रज़ि०) को दुश्मनों की सेना का पता लगाने के लिए रवाना किया। उन्होंने जानकारी दी कि सेना मदीना के इलाक़े में आ गई है। वह चरागाहों को तबाह व बरबाद कर रही है। फिर हज़रत ख़ब्बाब बिन अरत्त और अधिक जाँच-पड़ताल करके आए और बताया कि मुशरिकों ने मदीने से दो मील दूर उहुद पहाड़ के

---

1. वाक़दी की सनद से शाह फ़रीदुल हक़ ने लिखा है कि पचास हज़ार मिस्क़ाल सोना लड़ाई के ख़र्चे में लगाया गया, उतना ही रिज़र्व फ़ंड में रखा गया। सामान ढ़ोने के लिए एक हज़ार ऊँटों का इन्तिज़ाम किया गया।

क़रीब पड़ाव डाल दिया है।

उधर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सारा मामला मशविरे के लिए सहाबा के सामने रखा। हुज़ूर (सल्ल०) की अपनी राय यह थी कि मदीना से बाहर निकलने के बजाए मदीने के अन्दर रहकर लड़ा जाए। संयोगवश मुनाफ़िकों का सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई की राय भी यही थी। पर बहुत-से ऊँचे दर्जे के साथियों को इससे मतभेद था, पूरक रूप से वे साथी जो किसी वजह से बद्र में शरीक न हो सके। अब उनमें बड़ी बेताबी दिखाई दे रही थी। इस फ़रीक़ की राय यह थी कि मदीने में रहकर लड़ने की शक्ल में दुश्मन हमको बुज़दिली का ताना देंगे और हमारे बाग़ और खेत उजाड़ेंगे। न चाहते हुए भी हुज़ूर (सल्ल०) घर तशरीफ़ ले गए और सशस्त्र बाहर आए। जान निछावर करनेवाले साथियों को यह खटक हुई कि उनका यह आग्रह हुज़ूर (सल्ल०) को नागवार तो नहीं गुज़रा। उन्होंने अपनी राय वापस लेने का प्रस्ताव रखा, पर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नबी जब हथियार लगा ले तो जायज़ नहीं है कि दुश्मन से फ़ैसला किए बग़ैर उन्हें उतारे।" मक़्सद यह था कि नबी जैसी ऊँची हस्ती के फ़ैसले हवा के झोंकों की तरह रुख़ नहीं बदलते। सोच और बहस पहले, और फ़ैसला बाद में, और जब फ़ैसला हो जाए तो फिर वह अटल।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने एक हज़ार मुजाहिदीन के साथ, 6 शव्वाल सन् 03 हि० को जुमे की नमाज़ के बाद मदीने से कूच किया। हज़रत इब्ने उम्मे मक्तूम (रज़ि०) को अपने पीछे नायब बनाया। यह सेना जब मदीना और उहद के बीच एक स्थान 'शौत' पर पहुँची तो अब्दुल्लाह बिन उबई तीन सौ मुनाफ़िक़ों को साथ लेकर इस्लामी सेना से अलग हो गया। अलग होने की वजह यह बताई कि हमारी राय को चूँकि माना नहीं गया, इसलिए हम अपने आपको हलाकत में डालने के लिए तैयार नहीं हैं। अब सिर्फ़ 700 मुजाहिदीन रह गए। रात को यहीं पड़ाव किया गया। रात के आख़िरी हिस्से में हुज़ूर (सल्ल०) के हुक्म से सेना ने कूच किया और उहुद के क़रीब जाकर फ़ज्र की नमाज़ अदा की।

शनिवार को नमाज़ से फ़ारिग़ होने के बाद नबी (सल्ल०) ने मदीने को सामने और उहुद को पीछे रखकर सफ़ें (लाइनें) बनाईं। यह जगह मदीने से चार मील दूर थी।

इस लड़ाई का एक अहम मामला उहुद पहाड़ी के पीछे एक दर्रे की निगरानी के लिए पचास तीरअंदाज़ों को मुक़र्रर करना था, जिसकी कमान हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि०) के सुपुर्द थी। हुज़ूर (सल्ल०) ने इस टुकड़ी के ज़िम्मेदार को हुक्म दिया कि हम किसी भी स्थिति में हों, तुम लोग इस दर्रे को

किसी हालत में न छोड़ना।[1]

प्यारे नबी (सल्ल०) ने झण्डा मुस्अब बिन उमैर (रज़ि०) के सुपुर्द किया, जिन्होंने रईसी की ज़िंदगी से फ़क़ीरी ज़िंदगी तक उतरकर भी कमाल दिखाया था और उहुद की लड़ाई में भी ख़ास मिसाल क़ायम कर दी। दाहिने और बाएँ दोनों हिस्सों पर हज़रत ज़ुबैर बिन अब्बाम और मुंज़िर बिन अम्र (रज़ि०) को नियुक्त किया। अपनी तलवार हज़रत अबू दुजाना को प्रदान की, जिन्होंने इस तलवार का हक़ अदा कर दिखाया।

क़ुरैश के तीन हज़ार सिपाहियों में से सात सौ कवचधारी थे, दो हज़ार घोड़े और तीन हज़ार ऊँट थे। मर्दों को लड़ाई पर उकसाने के लिए मक्का के सरदारों की औरतें मौजूद थीं। लड़ाई के वक़्त सबसे पहले क़ुरैश की औरतें पद गाते हुए बढ़ीं। उसके बाद अबू आमिर अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन सैफ़ी मैदान में निकला। उसने क़ुरैश को यह झांसा दे रखा था कि मैं जब सामने जाऊँगा तो औस क़बीले के सारे लोग मुझसे आ मिलेंगे। हुआ यह कि क़बीला औस के लोगों ने पुकारकर कहा कि ऐ ख़ुदा के नाफ़रमान! ख़ुदा तेरी आँख कभी ठंडी न करे। अबू आमिर को बड़ी शर्मिन्दगी हुई और मुँह लटकाए वापस चला गया। बहाना यह किया कि अब मेरे क़बीले के लोगों के दिल बदल गए हैं। फिर तलहा बिन अबी तलहा ललकारता हुआ आया और मुक़ाबले में हज़रत अली (रज़ि०) निकले, जिन्होंने उसका ख़ात्मा कर दिया। फिर उसमान बिन अबी तलहा ने मुशरिकों का झंडा सँभाला, पर हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की तलवार ने उसका काम तमाम कर दिया। फिर उसकी जगह अबू साद बिन अबी तलहा ने झंडा उठाया तो हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) ने ताककर एक तीर उसके हलक़ पर मारा और दोज़ख़ में पहुँचा दिया। फिर मुसाफ़िह बिन तलहा आया तो हज़रत आसिम बिन साबित के एक ही वार ने उसे मिट्टी में मिला दिया।

लड़ाई ने जब ज़ोर पकड़ा तो हज़रत अबू दुजाना (रज़ि०) लपके और सफ़ों को चीरते चले गए, जो भी सामने आया उसका सफ़ाया कर दिया। मक्केवालों की ओर से शुरू में सिबाअ बिन अब्दुल उज़्ज़ा ललकारता हुआ आया, हज़रत हमज़ा (रज़ि०) का एक वार इसके लिए काफ़ी साबित हुआ।

वहशी बिन हर्ब, जुबैर बिन मुतइम का दास था। उसने आज़ाद होने की शर्त पर हज़रत हमज़ा (रज़ि०) को शहीद करने की ज़िम्मेदारी ली। कैसी भीरुता थी

1. इर्शाद यूँ था कि "अगर तुम देखो कि हमारी बोटियाँ परिंदे नोचे लिए जा रहे हैं, तो भी तुम अपनी जगह से न हटना।"

के पत्थर की आड़ लेकर छिपकर बैठा और ताककर नाफ़ की जगह नेज़ा मारा जो पार हो गया। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) लड़खड़ाए और शहीद हो गए।

लड़ाई जब ज़ोरों पर आई तो मुसलमानों के बहादुरी भरे हमलों की वजह से क़ुरैशी बहादुरों के पाँव उखड़ने लगे। धीरे-धीरे उनमें से कुछ लोग इधर-उधर भागने लगे। उकसाहट दिलानेवाली औरतों ने भी भागकर पनाह ली। अब मुसलमान खुलकर पूर्ण विजय की ओर बढ़ रहे थे। मगर वे लड़ाई समाप्त होने से पहले ही ग़नीमत का माल समेटने में लग गए।

धन का लोभ और अनुशासन से बेपरवाई के रहे-सहे प्रभावों ने काम किया और उनका कड़ुआ फल मुसलमानों को भुगतना पड़ा। लड़ाई का पलड़ा अपनी फ़ौज के ख़िलाफ़ पलटने में हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि०) की टुकड़ी के कुछ लोगों ने दर्रे की जगह को छोड़ दिया जहाँ वे नियुक्त किए गए थे, हालाँकि हुज़ूर (सल्ल०) ने बड़ी ताकीद की थी कि हमपर जो कुछ भी गुज़रे, तुम जगह से न हिलना और हुज़ूर (सल्ल०) का इस ठिकाने को इतना महत्त्व देना यह बताता है कि आपकी सूझ-बूझ लड़ाई के मामले में भी बहुत आगे थी। हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर साथियों को रोकते रह गए, पर कुछ लोग ग़नीमत का माल समेटने के लिए जगह छोड़ गए। अब हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) के साथ दस लोग थे। ख़ालिद बिन वलीद जैसे युवा सेनापति ने इस अहम ठिकाने को कमज़ोर पाकर उधर से हमला कर दिया और ग्यारह के ग्यारह ख़ुदा परस्तों को शहीद कर दिया। यह और बड़ी ग़लती थी, जिसकी वजह से सज़ा और भी कड़ी हो गई। इस अप्रत्याशित यकायकी हमले से मुसलमानों के अलमबरदार हज़रत मुस्अब बिन उमैर शहीद हो गए। चूँकि हज़रत मुस्अब शक्ल के एतबार से हुज़ूर (सल्ल०) से मिलते-जुलते थे, इसलिए यह अफ़वाह उड़ गई कि हुज़ूर (सल्ल०) शहीद कर दिए गए। इस भयानक अफ़वाह ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। अब तो मुसलमानों में दोस्त-दुश्मन में अन्तर भी न रहा। अपना सामने आया तो अपनों पर भी तलवार चला दी।

ख़ालिद बिन वलीद के हमले से अच्छे-अच्छे बहादुरों के पाँव उखड़ गए, लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अपनी जगह पर जमे रहे। संकट की इस घड़ी में 14 साथियों ने हुज़ूर (सल्ल०) को झुरमुट में ले रखा था—सात मुहाजिरीन और सात अनसार—एक मौक़े पर जब क़ुरैशी मुशरिकों का रेला आया तो हुज़ूर (सल्ल०) ने पुकार कर कहा कि कौन व्यक्ति हमारे लिए अपनी जान की बाज़ी लगाता है। इस पुकारपर हज़रत ज़ियाद बिन सकन (रज़ि०) और उनके पाँच अनसारी साथी उठे और एक-एक करके सब हुज़ूर (सल्ल०) की हिफ़ाज़त करते

हुए शहीद हो गए। इन्हीं हज़रत ज़ियाद का क़िस्सा है कि हुज़ूर (सल्ल०) के कहने पर उनके तड़पते देह को जब क़रीब लाया गया तो उन्होंने अपने गाल मुबारक क़दम से लगा दिए।

हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास के भाई उत्बा बिन अबी वक़्क़ास को मौक़ा मिल गया, उसने एक पत्थर ही उठाकर हुज़ूर (सल्ल०) पर वार कर दिया। पत्थर मुबारक चेहरे पर लगा और हुज़ूर (सल्ल०) का निचला दाँत शहीद हो गया और निचला होंठ सख़्त ज़ख़्मी। अब्दुल्लाह बिन क़मिआ ने एक ऐसा सख़्त वार किया कि मुबारक गालों पर चोट लगी और ख़ुद (कवच) की दो कड़ियाँ गालों में धँस गईं। हुज़ूर (सल्ल०) के देह पर चूँकि उहुद के दिन दो कवच थे, इसलिए चोटों की पीड़ा और बोझ की वजह से एक गढ़े में गिर गए। हज़रत अली (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) का हाथ पकड़ा। हज़रत तलहा (रज़ि०) ने कमर से सहारा दिया, हुज़ूर (सल्ल०) खड़े हो गए और फ़रमाया कि जो व्यक्ति ज़मीन पर चलते-फिरते ज़िंदा शहीद को देखना चाहे, वह तलहा को देख ले। पहाड़ पर चढ़ने में ख़ासी परेशानी हुई। हज़रत तलहा ने बैठकर पीठ को सीढ़ी बना दिया। हुज़ूर (सल्ल०) उनके कंधों पर पाँव रखकर पहाड़ पर चढ़े।

हज़रत तलहा (रज़ि०) ने दुश्मनों के इतने हमले रोके कि उनकी उंगलियाँ कट गईं और सत्तर घाव उनके देह पर थे। इसी तरह हज़रत दुजाना ने भी बड़ी बहादुरी दिखाई और बड़े घाव खाए। एक बार तो आप प्यारे नबी (सल्ल०) के सामने दुश्मनों की ओर पीठ करके ढाल बनकर खड़े हो गए और जितने तीर आए, उन्हें अपनी देह पर रोका।

परेशानी के इस तूफ़ान में सबसे पहले हज़रत काब बिन मालिक (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) को पहचाना और ऊँची आवाज़ से पुकारा, "ऐ मुसलमानो! मुबारक हो कि हुज़ूर (सल्ल०) ज़िंदा मौजूद हैं।" यह आवाज़ सुनते ही हर ओर से ईमानवाले आ-आकर हुज़ूर (सल्ल०) के चारों ओर जमा होने लगे। यह आवाज़ जब मुशरिकों ने सुनी और मुसलमानों को जमा होते देखा, तो उन्होंने उधर तीर बरसाना शुरू कर दिया। कितने ही तीर हज़रत काब बिन मालिक (रज़ि०) ने अपने सीने पर रोके। इसी बीच उबई बिन ख़ल्फ़ घोड़े पर सवार तेज़ी से क़रीब आया। उस मौक़े पर प्यारे नबी (सल्ल०) ने हारिस बिन ज़ुम्मा (रज़ि०) से नेज़ा लेकर उसकी गरदन पर मारा, जिससे वह बिलबिला उठा और सीधा मक्के की ओर भागा। सरफ़ नामी जगह पर घोड़े से गिरकर ख़ुदा के अज़ाब का शिकार हो गया।

दुश्मनों की फ़ौज ने बड़ी बरबरता दिखाई। मुसलमानों की लाशों का अनादर

किया। उनकी नाकें और कान काटे और पेट फाड़ दिए। अबू सुफ़ियान की बीवी ने तो अपने बाप उत्बा का बदला लेने के लिए हज़रत हमज़ा (रज़ि०) का न सिर्फ़ चेहरा बिगाड़ा, बल्कि जिगर निकालकर चबाया और हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के क़ातिल वहशी हब्शी को अपने तमाम गहने उतारकर इनाम में दिए, फिर मुस्लिम शहीदों की लाशों के कटे हुए कानों और नाकों का हार पिरोकर उसे गले में डाला।

जब प्यारे नबी (सल्ल०) घाटी पर पहुँचे तो लड़ाई ख़त्म हो चुकी थी। हज़रत अली (रज़ि०) ने मुबारक चेहरे से ख़ून धोया, सिर पर पानी डाला, फिर हुज़ूर (सल्ल०) ने उसी जगह वुज़ू किया और बैठकर ज़ुह्र की नमाज़ अदा फ़रमाई। सहाबा ने भी वैसा ही किया, जैसा आपने किया।

क़ुरैश ने जब वापसी का इरादा किया तो अबू सुफ़ियान ने बुलन्दी पर चढ़कर पुकारा, "क्या तुममें मुहम्मद ज़िंदा है?"

प्यारे नबी (सल्ल०) ने जवाब देने से सहाबा (रज़ि०) को मना फ़रमाया।

तीन बार पुकारने के बाद कहा, "अबू बक्र सिद्दीक़ हैं?"

फिर कहा, "उमर ख़त्ताब हैं?" इन नामों को भी उसने तीन-तीन बार पुकारा। जवाब न मिलने पर ख़ुश होकर साथियों से कहने लगा—

"सब क़त्ल हो गए। अगर ज़िंदा होते तो ज़रूर जवाब देते।"

हज़रत उमर (रज़ि०) इस बात की ताब न ला सके और ऊँची आवाज़ से कहा, "ऐ ख़ुदा के दुश्मन! ख़ुदा की क़सम! तूने ग़लत कहा, तेरे लिए रंज व ग़म का सामान बाक़ी है।"

फिर अबू सुफ़ियान ने नारा लगाया, "ऐ हुबल! तू सरबुलन्द हो!"

हुज़ूर (सल्ल०) के हुक्म से हज़रत उमर (रज़ि०) ने जवाब दिया, "अल्लाह सबसे बरतर और सबसे बड़ा है।"

फिर अबू सुफ़ियान ने कहा, "उज़्ज़ा देवी हमारी है, तुम्हारी नहीं।"

हज़रत उमर (रज़ि०) ने जवाब दिया, "अल्लाह हमारा मददगार है, तुम्हारा नहीं।"

अबू सुफ़ियान बोला, "उहुद की लड़ाई बद्र की लड़ाई का बदला है। अब हम और तुम बराबर हैं।"

हज़रत उमर (रज़ि०) ने जवाब दिया, "बराबरी नहीं है। हमारे आदमी जन्नत में हैं, तुम्हारे जहन्नम में हैं।"

आख़िर में अबू सुफ़ियान ने कहा, 'अब हमारा तुम्हारा मुक़ाबला अगले साल बद्र में होगा।'

लड़ाई की समाप्ति पर हुज़ूर (सल्ल०) ने शहीदों की लाशों का मुआइन किया और हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की लाश तलाश कराई। प्यारे नबी (सल्ल०) ने गिड़गिड़ाकर, रो-रोकर दुआ की, "तुमपर अल्लाह की रहमत हो।' कुछ शहीदों की लाशें उनके उत्तराधिकारी मदीना में भी ले गए, पर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "उनको शहादत की जगह पर ही दफ़्न किया जाए।"

उहुद की लड़ाई का दिन मुसलमानों के लिए दुख, तकलीफ़ और आज़माइश का दिन साबित हुआ। बहुत-से ऊँचे दर्जोंवाले सहाबा (रज़ि०) शहादत पा गए इस लड़ाई में 40 मुसलमान घायल और 70 शहीद हुए। दुश्मन के 30 आदमी मारे गए।

क़ुरैश जब उहुद से जाते हुए रौहाअ नामी जगह पर पहुँचे तो उन्हें ख़याल आया कि वे काम पूरा करने से पहले हो पलट आए हैं। मुसलमान इस वक़्त घायलावस्था में हैं, इसलिए अगर अब पलटकर हमला कर दिया जाए, तो वे ताब न ला सकेंगे। प्यारे नबी (सल्ल०) के मुख़बिरों ने इस बात की सूचना प्यारे नबी (सल्ल०) को पहुँचा दी। हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत बिलाल के ज़रिए मुनादी कराई कि मदीने के तमाम लोग लड़ाई के लिए तैयार हो जाएँ। 8 शव्वाल को मदीने से चलकर 8 मील दूर हमराउल-असद नामी जगह पर ठहरे। ख़ुज़ाआ क़बीले का सरदार माबद ख़ुज़ाई हुज़ूर (सल्ल०) के सामने उहुद की लड़ाई के शहीदों के लिए पुरसा के लिए आया था। यहाँ से लौटकर वह अबू सुफ़ियान से मिला अबू सुफ़ियान ने जब अपना नया प्रोग्राम बताया तो माबद ने कहा कि मुहम्मद (सल्ल०) बड़ी फ़ौज के साथ तुम्हारा पीछा करने और मुक़ाबले के लिए निकले हैं। अबू सुफ़ियान ने यह सुनते ही मक्का की राह ली।

प्यारे नबी (सल्ल०) हमराउल-असद नामी जगह पर तीन दिन ठहरे। फिर जब मक्का की सेना की वापसी हो गई और फ़िज़ा साफ़ हो गई तो मदीना वापस आ गए। इस मौक़े पर सहाबा किराम (रज़ि०) की शान में यह आयत उतरी—

"वे लोग जिन्होंने चोट खाने के बाद ख़ुदा और उनके रसूल (सल्ल०) के हुक्म पर लब्बैक कहा, सो जो लोग भी सुकर्मी और ख़ुदा का भय खानेवाले हैं उनके लिए भारी बदला है।" —क़ुरआन, 3 : 172

हम आगे उहुद की लड़ाई के कुछ प्रमुख शिक्षाप्रद पहलुओं का उल्लेख करेंगे।

# उहुद की लड़ाई के कुछ अहम पहलू

बद्र की लड़ाई को पहली लड़ाई और फ़ुरक़ान का दिन होने और फिर अल्लाह की मदद से कम तादाद और हाथियारवाले गिरोह के विजई होने की वजह से इस्लामी इतिहास का बहुत बड़ा 'मील का पत्थर' है और इसके प्रभाव मुसलमानों की तमाम जंगों की तारीख़ पर पड़े हैं।

लेकिन उहुद की लड़ाई भी मील का एक पत्थर है और अपनी जगह कुछ असाधारण महत्त्व की मालिक और शिक्षाप्रद कहानी है। उहुद की लड़ाई में अगरचे मुसलमान भरपूर जीत न पा सके थे, पर देखने में मामला कुछ ऐसा बराबर-बराबर रहा कि अबू सुफ़ियान ने जाते-जाते पुकारकर यह कहा कि अब हम-तुम बराबर हैं, तैयार रहो, अगले साल हम ख़बर लेंगे। लेकिन अबू सुफ़ियान की तवज्जोह इस प्वाइंट पर नहीं गई कि एक ताक़त जो प्यारे नबी (सल्ल०) के नेतृत्व में उठी थी और जो अब तक बेसर व सामानी और विकट परिस्थितियों से गुज़र रही थी, आज उसकी विरोधी भारी संख्यावाली, सरफिरी और घमंडी ताक़त का नेता अपने मुख से स्वीकार कर रहा था कि तुम हमारे बराबर की ताक़त हो। उहुद की लड़ाई के अगर इसी नतीजे को, जो दुश्मन की राय के मुताबिक़ था, सही मान लिया जाए तो भी इसका मतलब यह है कि उहुद की लड़ाई भी एक प्रकार की जीत थी, नैतिक श्रेष्ठता उससे अलग।

इस लड़ाई के कुछ पहलू अपने भीतर प्रमुख शिक्षा रखते हैं, यहाँ हम उन्हें बयान करते हैं—

1. आन्दोलनों की यह शान होती है कि वे विरोधी कैम्प में भी ऐसे समर्थक पैदा कर लेते हैं, जिनका समर्थन कुछ नाज़ुक मौक़ों पर काम आ जाता है। प्रत्यक्ष में तो इसकी कोई विशेष व्यवस्था न थी कि मक्का की सैनिक गतिविधियों की बाक़ायदा सूचना मदीने में पहुँचती रहती, मगर वहाँ हज़रत अब्बास (रज़ि०) का व्यक्तित्व ऐसा था कि शुरू ही से झुकाव प्यारे नबी (सल्ल०) की ओर था। धीरे-धीरे यह झुकाव बढ़ते-बढ़ते ईमान तक पहुँच गया, पर मस्लहत की वजह से अपने ईमान को ज़ाहिर करके मक्का से हिजरत अभी न की थी। अतः वही इस बात का ज़रिया बने कि मक्का के मुशरिकों की जंगी तैयारियों की सूचना हुज़ूर (सल्ल०) तक पहुँची। अगर ऐसा न होता तो शायद मक्कावालों की जंगी कार्रवाई ज़्यादा कठिनाइयों का कारण बनती।[1]

---

1. यूँ तो जंगी तना-तनी अबू सुफ़ियान ने पहले से पैदा कर दी थी। उसने इस्लामी जमाअत

2. दूसरी बड़ी शिक्षा यह मिलती है कि इस्लाम में मशविरे की बहुत ज़्यादा अहमियत है। हुज़ूर (सल्ल०) अगर हुक्म दे देते कि लड़ाई के लिए तैयार हो जाओ और मदीने में रहकर लड़ना है, तो कोई कुछ न कहता, पर ख़ुदा के हुक्म के तहत मशविरा करना और मशविरा करने की तरबियत देना ज़रूरी था।

मस्जिद में साथियों की आम सभा हुई। हुज़ूर (सल्ल०) ने सारा मामला उनके सामने रखा और साथ ही अपनी राय भी दी कि मदीने में रहकर लड़ना मुनासिब होगा, पर ऐसा नहीं कहा कि दूसरों के मुँह बन्द कर दिए हों या उपस्थित लोगों ने खुलकर बात करने में साहस न दिखाया हो। जमाअत ख़ुदा के स्पष्ट आदेशों के सामने तो आजिज़ी से सर झुका देती थी, पर मशविरे के मामले में खुलकर बात करती थी। चुनांचे इस सभा में बहुत-से साथियों ने बड़े जोश और उत्साह के साथ भाषण दिए और ज़्यादातर भाषणों में हुज़ूर (सल्ल०) की राय से असहमति दिखाई गई थी। हज़रत ख़ुसैमा, अबू साद बिन ख़ुसैमा, नोमान बिन मालिक और साद बिन उबादा (रज़ि०) का यही दृष्टिकोण था और हज़रत हमज़ा (रज़ि०) तो ज़ोरदार तरीक़े से यह राय देते कि लड़ाई मदीना से बाहर होगी। अयास बिन औस बिन अतीक का कहना तो यह था कि अगर हम मदीने में रहकर लड़ेंगे तो ये लोग बाद में ताने देंगे कि हमने उनको मदीने के अन्दर ही घेर लिया और निकलने नहीं दिया, साथ ही हमारे बाग़ और खेत सब उजाड़ देंगे।

इधर हुज़ूर (सल्ल०) का अन्दाज़ भी यह नहीं था कि एक बार जो राय दे दी है, उसके ख़िलाफ़ कितने ही लोग क्यों न ज़ोर-शोर से अपना दृष्टिकोण रखें, बस अपनी राय नहीं बदलना। नहीं, प्यारे नबी (सल्ल०) ने जब जमाअत के आम रुझान को स्पष्ट रूप से देख लिया तो, कुछ और कहने-सुनने के बजाए, तुरन्त उस रुझान को क़बूल कर लिया, फिर मस्जिद से घर तशरीफ़ ले गए और हथियार लगाकर वापस आए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) साथ ही गए थे और कवच आदि पहनाने में मदद की थी।

बाद में साद बिन मुआज़ (रज़ि०) चिन्तित हुए और साथियों को ध्यान दिलाया कि शायद तुम लोगों ने अच्छा नहीं किया। बेहतर है कि राय वापस ले

---

को बड़ा सख़्त ख़त लिखा था और उसमें कहा था कि क़ुरैश ने काबा में क़सम खाई है कि 'लात' का आदर और उसकी रक्षा की जाए और हम लोग आस-पास के लोगों को जमा करके बहुत जल्द घोड़ों पर सवार होकर तुम लोगों को मलियामेट कर देंगे। इशारा यह भी था कि तुम्हारी मस्जिदों को ढा देंगे, साथ ही उस ख़त में मदीने की आधी पैदावार, टैक्स के तौर पर माँगी गई थी। इस ख़त का जवाब हुज़ूर (सल्ल०) ने भी वैसे ही जोशीले शब्दों में लिखवाया।

लो। हमारी राय नबी (सल्ल०) की मंशा के ख़िलाफ़ नहीं होना चाहिए। उसैद बिन हुज़ैर (रज़ि०) ने भी ताईद की। उपस्थित लोगों में शर्मिंदगी की लहर-सी दौड़ गई। हुज़ूर (सल्ल०) हथियार लगाकर आए तो सबने अर्ज़ किया कि शायद हमने राय देने में ग़लती की हो। आप जो ठीक समझें, उसी पर अमल करें।

हुज़ूर (सल्ल०) ने जवाब दिया कि किसी नबी को यह उचित नहीं मालूम होता कि वह जब कवच पहन ले, तो फिर दुश्मन से लड़े बिना उसे उतार दे। तुम सब्र से काम लो, अल्लाह कामयाबी देगा।

हुज़ूर (सल्ल०) ने वह खटका भी दूर कर दिया जो मतभेद की वजह से सहाबा किराम (रज़ि०) में पैदा हुआ।

3. हुज़ूर (सल्ल०) का तरीक़ा यह रहा कि अपने विभिन्न साथियों को ज़िम्मेदारियाँ सौंपते और पदों को उनमें बाँट देते, जैसे इस्लामी सेना के स्थाई रूप से और इस लड़ाई के सामयिक रूप से सेनापति हक़ीक़त में आप ही थे। मगर आप सेना के सेनापति हज़रत ज़ुबैर बिन अव्वाम (रज़ि०) को नियुक्त किया। मुस्अब बिन उमैर (रज़ि०) को अलमबरदारी का पद दिया। फ़ौज के सामने दो नामी साथी हाथों में झण्डा लिए चल रहे थे। एक थे ख़ज़रज के सरदार साद बिन उबादा, दूसरे थे औस के सरदार साद बिन मुआज़।

4. शीख़ीन नामी जगह पर फ़ौज की सफ़बन्दी करके हुज़ूर (सल्ल०) ने मुआइना फ़रमाया। कई कम उम्र लड़के भी सफ़ों में शामिल थे, जैसे ज़ैद बिन साबित (रज़ि०), अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०), अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०), उसैद बिन ज़ुबैर (रज़ि०), बराअ् बिन आज़िब (रज़ि०), अज़ाया औसी (रज़ि०), इन सबको हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़ौज से अलग कराके वापसी का हुक्म दिया। हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) ने हुक्म पर अमल किया। अब समुरा बिन जुन्दुब (रज़ि०) सामने आए। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको भी अलग कर दिया। वह अलग तो हुए, मगर मन बहुत दुखी था। चलते-चलते हुज़ूर (सल्ल०) जब राफ़ेअ बिन ख़दीज तक पहुँचे तो समुरा (रज़ि०) का पूरा ध्यान इधर गया कि देखें, उनके लिए क्या फ़ैसला होता है, हुज़ूर (सल्ल०) आगे निकल गए और राफ़ेअ बिन ख़दीज (रज़ि०) लाइन में खड़े रह गए। असल में राफ़ेअ ने पंजों के बल खड़े होकर अपने कंधे दूसरों के साथ मिला लिए थे। अब तो समुरा बेताब हो गए, क्योंकि वह जानते थे कि क़द और ताक़त में वह और राफ़े बराबर-बराबर हैं। दौड़े-दौड़े अपने बुज़ुर्ग मुर्री बिन सिनान के पास गए और आँखों में आँसू भरकर कहा कि राफ़ेअ लड़ाई में शरीक हो रहा है, हालाँकि मैं उसे कुश्ती में पछाड़ सकता हूँ।

मामला हुज़ूर (सल्ल०) तक पहुँचा। दोनों को बुलाया गया, कुश्ती हुई और

समुरा बिन जुन्दुब ने राफ़ेअ बिन ख़दीज को पछाड़ दिया। नतीजा यह कि उनको भी लड़ाई में शिर्कत की इजाज़त मिल गई।

इस घटना से अन्दाज़ा किया जा सकता है कि लड़ाई जैसी भयानक आग, जिससे लोग जानें बचाते हैं, उसके लिए इस्लामी आन्दोलन के नौजवान भी बेताब भावना रखते थे। आख़िर इनके सामने ख़ुदा को ख़ुश करने का रास्ता था, न किसी सांसारिक स्वार्थ का।

5. मदीना से जिहाद के लिए निकलते हुए प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपने नाबीना (अंधे) साथी हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उम्मे मक्तूम (रज़ि०) को नायब मुक़र्रर किया। इससे जहाँ हुज़ूर (सल्ल०) की निगाह में हज़रत इब्ने उम्मे मक्तूम (रज़ि०) के स्थान का पता चलता है (और वह कुछ दूसरे मौक़ों पर भी प्रकट होता रहा), वहाँ यह सच बात भी ध्यान देने की थी कि हुज़ूर (सल्ल०) की निगाह में नज़्म (व्यवस्था, अनुशासन) ज़्यादा अहमियत रखता था, और मदीने से बाहर जाते हुए उसके हालात व मामलों को बिखरा हुआ नहीं छोड़ सकते थे।

6. फ़ौज जब शीख़ीन नामी जगह पर पहुँची तो मुनाफ़िक़ों का सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई अपने तीन सौ सहयोगियों के साथ हुज़ूर (सल्ल०) की इस्लामी फ़ौज से अलग हो गया। अलग होने की वजह उसने यह बयान की कि मेरी राय नहीं मानी गई, तो फिर क्यों हम लोग बेवजह अपनी जानों को हलाकत में डालें?

निफ़ाक़ (कपटाचार) भरा यह चरित्र इस्लामी इतिहास में अपनी एक स्थाई हैसियत रखता है, इसके ताल्लुक़ की कसौटी दीन के नियम और हुक्म नहीं होते, बल्कि अलग हो जाने के लिए इतनी ही बात काफ़ी होती है कि हमारी राय पर अमल नहीं किया गया या हमारी लीडरी नहीं मानी गई। मस्लहतों और तदबीरों के दायरे में जहाँ रात्रो का मतभेद हर-हर क़दम पर होना ज़रूरी है, वहाँ अगर सामूहिक फ़ैसलों और अमीर के हुक्मों को न माना जाए तो फिर कोई व्यक्ति संगठन-व्यवस्था में फिट नहीं हो सकता और अगर सब लोग ऐसे ही हों तो कोई संगठन नहीं चल सकता। संगठन की कोई भी ऐसी व्यवस्था जो दीन क़ायम करने के लिए बनी हो और सामूहिक तौर पर लोग निष्ठावान हों और फ़ैसले क़ुरआन व हदीस के दायरे के अन्दर मशविरे से होते हों, उससे मात्र मतभेद को बहाना बनाकर अलग हो जाना एक अनावश्यक कार्य है और ऐसा अलगाव अगर संघर्ष के नाज़ुक मरहले में हो तो यह निफ़ाक़ की निशानी भी हो सकती है। किसी व्यक्ति या गिरोह का अहं का इतना ज़ोरदार हो जाना कि वह आन्दोलन और संगठन के सामूहिक हित की परवाह न करे, दिल की बहुत बड़ी बीमारी है।

इसी तरह व्यक्ति या लीडरों से व्यक्तिगत रूप से रंजीदा होने का बदला संगठन या आन्दोलन से लेना बड़ी ख़तरनाक हरकत है।

अब्दुल्लाह बिन उबई ने यही किया कि अपनी राय को अपने अहं के नशे में इतना अहम क़रार दिया कि संगठन और आन्दोलन के लिए ठीक लड़ाई के मैदान में पहुँचकर नाज़ुक स्थिति को जन्म दे दिया। यह एक तरह से प्यारे नबी (सल्ल०) के दीन क़ायम करने की पीठ में छुरा भोंकना था, उसे तो असल में निफ़ाक़ (कपटाचार) का रोग लगा हुआ था, जिसका रोगी काम ख़राब करने के लिए बहाने ढूँढ़ता है।

ऐसे लोग एक स्वस्थ सामूहिकता से अलग तो हो जाते हैं, मगर अलग होकर ठीक अपने ही क़ायम किए हुए नियम और कसौटी पर कोई काम करके दिखा नहीं सकते। अब्दुल्लाह बिन उबई और उसके तीन सौ साथियों का कोई कारनामा तारीख़ में इसके सिवा अंकित नहीं है कि उन्होंने जब भी मौक़ा पाया ख़ुदा के रसूल और उनके साथियों के काम में रुकावट डाली।

किसी सच्चे मुसलमान का यह काम नहीं है कि 'दीन क़ायम' करने के लिए काम करनेवाले किसी दीनी संगठन से सिर्फ़ निजी राय मनवाने के लिए अलग हों, ख़ास तौर पर ऐसा निरर्थक अलगाव अगर संघर्ष के किसी मरहले में अपनाया जाए तो उसका लाभ दीन क़ायम करनेवाले आन्दोलन के विरोधियों ही को मिलता है।

दूसरी ओर उन ईमान व यक़ीनवाले लोगों का चरित्र भी बड़ा आइडियल है जो पहले ही अपनी ताक़त को तादाद और हथियार के लिहाज़ से दुश्मन से कम पा रहे थे और ठीक अन्तिम क्षणों में भी उस ताक़त का एक तिहाई हिस्सा उनसे अलग हो जाता है। इसपर भी वे अपने ईमान और इरादों पर क़ायम रहते हैं।

7. लड़ाई के शुरू होने से पहले जब दोनों फ़ौजें तैयार खड़ी थीं। मदीना के एक सर्वप्रिय व्यक्ति अबू आमिर अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन सैफ़ी मैदान में आया। औस क़बीला का यह पूर्व सरदार अपनी पारसाई की वजह से 'राहिब' (संन्यासी) कहलाता था। मदीने में जब इस्लाम फैला तो उस व्यक्ति की विरोधी भावनाएँ उसे मक्का ले गईं। यानी उस व्यक्ति का तक़वा (ईश-भय) नबी (सल्ल०) और उनकी शिक्षाओं से ताल-मेल न बिठा सका। मक्का के अज्ञानी मुशरिकों के यहाँ उसे तस्कीन मिली। यही वह हरकत थी जिसकी वजह से उसका सारा रूहानी जादू टूट गया। प्यारे नबी (सल्ल०) के लोगों में उसे अबू आमिर राहिब के बजाए, अबू आमिर फ़ासिक़ (ख़ुदा का नाफ़रमान) कहा जाने लगा।

असल में अबू आमिर ने क़ुरैश को यह यक़ीन दिला रखा था कि क़बीला औस के लोग मेरे ऊपर इतना भरोसा करते हैं कि मैं जब उनके सामने मैदान में निकलूँगा तो वे सब मेरे गिर्द जमा हो जाएँगे। वह मैदान में निकला, पर औस का कोई आदमी उसकी ओर नहीं बढ़ा, बल्कि उसकी पुकार के जवाब में यह आवाज़ गूँजी कि "ऐ ख़ुदा के फ़ासिक़! ख़ुदा कभी तेरी आँख ठंडी न करे।" अबू आमिर गरदन झुकाए वापस चला और क़ुरैशी फ़ौजवालों से यह कहा कि मेरे बाद मेरे क़बीले की सोच बदल गई है।

उस व्यक्ति पर शायद असल सच्चाई उस वक़्त भी स्पष्ट न हुई हो कि वह ख़ुद एक खोटा सिक्का बन चुका था। ऐसे तमाम लोग जो भरोसेमंद धार्मिक लोगों से अलग होकर अधर्मियों के साथ लग जाते हैं, वे हमेशा खोटे हो जाया करते हैं।

8. इसके बावजूद कि उहुद में मुसलमानों को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, पर उन्होंने ज़रा भी कमज़ोरी नहीं दिखाई, बल्कि साहस, वीरता और त्याग व बलिदान के महान उदाहरण पेश किए।

लड़ाई से पहले ही मरहले में की दुश्मनों की ललकार के मुक़ाबले में हज़रत अली, साद बिन अबी वक़्क़ास, हज़रत आसिम बिन साबित और हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के हाथों मुशरिक सेना के अलमबरदार सहित पाँच सरदार मारे गए।

हज़रत अबू दुजाना (रज़ि०) को यह पद प्राप्त हुआ कि उन्हें प्यारे रसूल (सल्ल०) ने अपनी ख़ास तलवार इस शर्त के साथ दी कि इसका हक़ अदा करो और वह हक़ यह है कि कोई मुसलमान इसकी लपेट में न आए और कोई दुश्मन इससे बचकर न जाए। यह एक सौभाग्य था जो उन्हें मिला। इसे पाकर लाल रूमाल सर पर बाँधे ख़ास अदा से इठलाते हुए हज़रत अबू दुजाना (रज़ि०) आगे बढ़े। इसपर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अल्लाह को यह चाल बहुत ही नापसन्द है, लेकिन इस वक़्त यही मुनासिब है, यानी लड़ाई के मैदान में दुश्मन के सामने विनम्रता दिखाने के बजाए सर व सीने को तानकर ही चलना चाहिए। फिर हज़रत दुजाना ने वाक़ई इस तलवार का हक़ अदा किया। वह जिधर निकल जाते, दुश्मन की सफ़ों में निर्भय होकर बढ़ते चले जाते और जिस ओर तलवार को लहराते, दुश्मनों की लाशें तड़प जातीं। लगभग यही शक्ल हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की थी; बाक़ी मुस्लिम मुजाहिद भी बेजिगरी से लड़े, यहाँ तक कि दुश्मन के क़दम उखड़ गए।

हज़रत मुस्अब बिन उमैर (रज़ि०) जैसे नौजवान ने अलमबरदारी का हक़ अदा कर दिया। इब्ने क़ुमआ के वार से दाहिना हाथ कट गया तो तुरन्त बाएँ हाथ

में अलम (झण्डा) थाम लिया। दुश्मन ने बाएँ हाथ को भी काट दिया तो कटे हाथों के सिरों से अलम को सीने के साथ दबा लिया। आख़िर जब उनको शहीद ही कर दिया तो बारी-बारी दूसरे साथियों ने अलम को उठाए रखा।

यह मुस्अब बिन उमैर मक्का के एक बांके और अच्छे कपड़े पहननेवाले नौजवान थे, पर इस्लाम क़बूल करने के बाद ऐसे दरवेश बने कि कपड़े फटे होते और बाल बिखरे हुए। शहीदों के मुआयने के वक़्त उनकी लाश को देखकर हुज़ूर (सल्ल०) का उद्‌गार बड़ा ही गहरा था। उनके देह को उनकी चादर से ढंकना मुशकिल था। सर को छिपाते तो पैर खुले रहते, पैरों पर डालते तो सर बाहर रहता। आख़िर पैरों पर घास की तह रखी गई।

9. मक्की सेना के लोग जब भागने लगे और औरतों ने पहाड़ पर शरण ली, तो मुसलमानों ने यह समझकर कि खेल पूरा हुआ, ग़नीमत का माल समेटने पर अपने ध्यान को केन्द्रित कर दिया। यह देखकर दर्रे की निगरानी करनेवाली टोली, जो हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के नेतृत्व में निगरानी कर रही थी, उसके कुछ लोग भी ग़नीमत का माल समेटने में लग गए। हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने उनको रोकने की बड़ी कोशिश की, मगर व्यर्थ। यह हुज़ूर (सल्ल०) की खुली नाफ़रमानी थी और इस नाफ़रमानी की बहुत बड़ी सज़ा मुसलमानों को मिली। इस दर्रे के नाके को कमज़ोर पाकर पीछे से ख़ालिद अपनी टुकड़ी के साथ हमलावर हुआ और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और उनके साथियों को समाप्त करके लड़ाई के मैदान की तरफ़ बढ़ा। क़ुरैश की भागती हुई फ़ौज भी पलटकर फिर हमलावर हो गई। इस यकायकी परेशानी से मुसलमान घबरा गए और उनकी सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। आपस में एक दूसरे का ख़ून बहाने की नौबत आ गई।

यह चेतावनी थी इस बात की कि ख़ुदा के यहाँ कोई जमाअत (टोली) भी ऐसी चहेती नहीं है कि वह जो ग़लतियाँ चाहे करती रहे, पकड़ न की जाए। जो ग़लती करेगा, उसे ख़ुदा के क़ानून के तहत ख़मियाज़ा भुगतना होगा। धन का हद से बढ़ा हुआ लोभ ऐसी बुनियादी कमज़ोरी थी, जिसकी वजह लड़ाई को पूर्णतया तक पहुँचाने से पहले बिना सेनापति की अनुमति के सिपाही ग़नीमत के माल पर मुतवज्जोह हो गए और उसी रौ में नाकेवालों ने अपना नाका छोड़ दिया।

सज़ा इतनी ही नहीं मिली, बल्कि इसका क्षेत्र और भी फैला हुआ था। ख़ालिद बिन वलीद के हमले से अगरचे अच्छे-अच्छे योद्धाओं के पाँव भी घबराहट की वजह से उखड़ गए, पर हुज़ूर (सल्ल०) के क़दमों में ज़रा भी लग़ज़िश न आई। औसतन 14 साथी (7 मुहाजिर और 7 अनसार) हुज़ूर (सल्ल०)

के साथ रहे, इस तादाद में थोड़ी बहुत कमी-बेशी होती रही। ऐसी हालत में उत्बा बिन अबी वक़्क़ास ने मौक़ा पाकर एक पत्थर फेंका, जिसकी चोट से हुज़ूर (सल्ल०) के नीचे का एक दाँत शहीद और निचला होंठ घायल हो गया, फिर अब्दुल्लाह बिन क़मिआ ने इस ज़ोर से हमला किया कि मुबारक गाल ज़ख़्मी हुआ और ख़ौद (कवच) की दो कड़ियाँ जबड़े की हड्डी में उतर गईं। तीसरा वार अब्दुल्लाह बिन शिहाब ज़ोहरी का था, जिसके पत्थर से आपका माथा घायल हो गया। इस सख़्त और तेज़ रेले में हुज़ूर (सल्ल०) दो कवचों के बोझ की वजह से क़रीबी गढ़े में गिर गए। हज़रत अली और तलहा (रज़ि०) ने सहारा देकर उठाया और हुज़ूर (सल्ल०) पहाड़ पर चढ़े।

10. सज़ा का तीसरा पहूल यह था कि फ़ौज के अलमबरदार हज़रत मुस्अब बिन उमैर (रज़ि०) का चेहरा चूँकि हुज़ूर (सल्ल०) के चेहरे से मिलता जुलता था, इस वजह से उनके शहीद होने पर यह कुप्रचार हो गया कि प्यारे नबी (सल्ल०) शहादत पा गए। इस अफ़वाह से बिखराव और बेचैनी अधिक बढ़ गई। मुसलमानों के अंदर एक भावना यह पैदा हुई कि अब जबकि ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) हममें नहीं रहे, तो अब लड़कर क्या लेना। यह भावना भी एक दृष्टि से स्वाभाविक थी, क्योंकि दुश्मनों में घिरे हुए मुसलमानों की ताक़त का बड़ा प्रतीक आपकी ज़ात और आपकी रहनुमाई ही थी, पर कोई भी दृष्टिकोण जो निराशा और कर्म-त्याग की ओर ले जाए, इसके पीछे भले ही कोई स्वाभाविक भावना काम कर रही हो, इस्लामी आन्दोलन में जगह नहीं पा सकता। इसलिए इसका दूसरा जवाब मुसलमानों के भीतर यह उभरा कि अब जबकि प्यारे नबी (सल्ल०) हममें नहीं रहे तो हम जानें बचाने की चिन्ता क्यों करें।" मुहम्मद (सल्ल०) अगर नहीं रहे तो मुहम्मद (सल्ल०) का रब तो ज़िंदा है। क्यों न पूरी ताक़त से लड़ कर शहीद हो जाएँ।" यह बात अनस बिन नज़र की ज़ुबान से ललकार बनकर उभरी। हज़रत अनस (रज़ि०) ख़ुद भी दुश्मनों की भीड़ में लड़ते हुए घुस गए और बहुत-से दूसरे मुसलमान भी। यहाँ तक कि हुज़ूर (सल्ल०) के ज़िंदा होने की ख़ुशियाँ भरी ख़बर फैल गई।

इस मौक़े के बारे में आयत "व मा मुहम्मदुन् इल्ला रसूल. . . " (आले इमरान, 144) उतरी, जिसमें मुसलमानों को साफ़-साफ़ सुना दिया गया कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दुनिया में शाश्वत जीवन लेकर नहीं आए। वह ख़ुदा के रसूल होने के अलावा ज़िस्मानी दृष्टि से इनसानी वजूद हैं। उनपर मौत वाक़े हो सकती है, वे क़त्ल हो सकते हैं। रसूल कोई पराप्राकृतिक जीव नहीं है। इनसे पहले भी रसूल गुज़रे हैं, वे सब वफ़ात पा चुके। (उनमें से कुछ को दुश्मनों ने क़त्ल भी किया)।

फिर क्या तुम रसूल (सल्ल०) के भौतिक देह के ख़त्म होने पर उस ईमान और दीन और आन्दोलन और संघर्ष को छोड़कर भाग खड़े होगे, जिसे रसूल (सल्ल०) ने तुम तक पहुँचाया है। ख़ुदा अगर ज़िंदा और क़ायम है, सच्चा दीन अगर बाक़ी है, दीन क़ायम करने की मुहिम अगर जारी है, तो तुम्हारी पूरी ताक़तें उसमें खप जानी चाहिए, रसूल (सल्ल०) की ज़िंदगी में भी और ज़िंदगी के बाद भी।

मालूम हुआ कि रसूलों का काम जीवन्त ख़ुदा से इनसान का ताल्लुक़ उस दीनी नक़्शे पर मज़बूत करना है जिसके हर-हर हिस्से को वे उम्मत पर वह्य की रौशनी में अपने कथन और कर्म से पूरी तरह स्पष्ट करते हैं और ख़ुदा से यही ताल्लुक़, इनसान का इनसान से ताल्लुक़ भी हर क्षेत्र और विभाग में एक विशेष तरीक़े से जोड़ता है, यानी इबादत ख़ुदा की अभीष्ट है, कोई रसूल अपनी इबादत कराने नहीं आता और यह नहीं सिखाता कि मैं अगर नहीं रहा तो ख़ुदा की इबादत व इताअत की अनेकानेक अनिवार्य व अभीष्ट शक्लों को छोड़ देना। वह अपनी तालीम व दावत और तरीक़े और चरित्र व आचरण की शक्ल में ख़ुदा-परस्ताना ज़िंदगी के तमाम तक़ाज़े संकलित करके छोड़ जाता है। और जब तक उसकी यह मीरास बाक़ी रहती है, उसकी रिसालत का दौर भी जारी रहता है, यानी उसकी रिसालत का दौर और उसकी रिसालत के अधिकार उसके दैहिक मृत्यु से ख़त्म नहीं होते।

11. परेशानी और बेचैनी के इस तूफ़ान में सबसे पहले हज़रत काब बिन मालिक (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) को पहचाना। उसकी निगाह ने कवच की कड़ियों में धँसे चेहरे की आंशिक झलक से ही पहचान लिया। आवाज़ लगाई, मुसलमानो ! ख़ुशख़बरी है, हुज़ूर (सल्ल०) ज़िंदा हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने इशारे से काब को मना फ़रमाया, मगर यह ख़बर फैलती गई।

12. कुछ घटनाएँ मुसलमानों की वीरतापूर्ण भावनाओं के अलावा रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत और फ़िदाकारी का पता देती हैं।

मुसलमानों में जब बेचैनी फैली और हुज़ूर (सल्ल०) कुछ साथियों के बीच अकेले रह गए और ऐसे वक़्त में हमलावरों ने सख़्त रेला किया तो हुज़ूर (सल्ल०) ने पुकारा, "कौन व्यक्ति हमारे लिए अपनी जान बेचता है ?" यह सुनकर हज़रत ज़ियाद बिन सकन (रज़ि०) पाँच अनसार सहित आए और हुज़ूर (सल्ल०) के सामने खड़े हो कर दुश्मनों के वार सहते और रोकते हुए बारी-बारी अपनी जानें दे दीं। आख़िरी वक़्त में ज़ियाद बिन सकन (रज़ि०) के ख़ून में लोटते देह को रसूल (सल्ल०) ने अपने क़रीब तलब किया। क़रीब लाए गए तो घिसटकर अपना गाल हुज़ूर (सल्ल०) के क़दमों पर लगा दिया, फिर ख़ुशी-ख़ुशी जान दे

दी। हज़रत तलहा (रज़ि०) का यह हाल हुआ कि दुश्मनों के वार रोकते-रोकते उँगलियाँ कट गईं और उनके देह पर सत्तर घाव लगे। पर वह बराबर ढाल बनकर हुज़ूर (सल्ल०) के सामने खड़े रहे। हज़रत अबू दुजाना (रज़ि०) इस मौक़े पर हुज़ूर (सल्ल०) के सामने दुश्मनों की ओर पीठ करके खड़े हो गए और आनेवाले तीरों को अपनी पीठ पर रोका। हज़रत क़तादा बिन नोमान (रज़ि०) अपना चेहरा हुज़ूर (सल्ल०) के चेहरे से मिलाकर खड़े हो गए और एक तीर उनकी आँख में लगा, जिससे आँख जाती रही। साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) एक नामी तीरंदाज़ थे। दुश्मनों पर ज़ोरदार तीरों की वर्षा की। प्यारे नबी (सल्ल०) अपने तरकश से तीर निकाल-निकालकर साद (रज़ि०) को देते और फ़रमाते, "मेरे माँ-बाप तुमपर फ़िदा हों, ऐ साद! तीर फेंको।" खुद प्यारे नबी (सल्ल०) ने भी अपनी कमान निकालकर तीर चलाया, फिर बाद में कमान की ताँत टूट गई।

हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि०) जो उक़्बा की बैअत में शरीक थीं, घायलों को पानी पिलाने की सेवा कर रही थीं। जब हुज़ूर (सल्ल०) की तरफ़ दुश्मनों का रेला देखा तो मशक फेंककर तीर-कमान लेकर खड़ी हो गईं। तीर चलाए, फिर हुज़ूर (सल्ल०) के ज़्यादा क़रीब जाकर लड़ने का ख़याल हुआ। तलवार सँभाली और दौड़कर पहुँची। बीच में इब्ने क़मिआ आ गया और जब उसने हुज़ूर (सल्ल०) पर वार किया तो उम्मे अम्मारा (रज़ि०) तड़पकर उसपर टूट पड़ीं। आख़िर में क़मिआ भाग गया। इस महिला को सर और गरदन पर तेरह घाव लगे। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ुशख़बरी दी कि क़ियामत के दिन भी उम्मे अम्मारा इसी तरह मेरे क़रीब होगी, जैसी उहुद के मैदान में हुईं।

13. महिलाओं का जोश देखिए कि हिंद अनसारिया को पहले सूचना मिली कि तुम्हारे भाई शहीद हो गए, फिर आगे बढ़ीं तो बताया गया कि तुम्हारे बाप को ख़ुदा ने बुला लिया, फिर तीसरी बात बताई गई कि तुम्हारे शौहर जन्नत सिधारे। धन्य है वह महिला कि उन्होंने पूरे सब्र से काम लिया और किसी के सामने किसी प्रकार के दुख को ज़ाहिर नहीं होने दिया। आख़िर पूछा तो यह पूछा कि क्या ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) ख़ैरियत से हैं? जब ख़ैरियत बताई गई तो फ़रमाया कि अब इस इतमीनान के बाद हर मुसीबत आसान है। इसी तरह हमना बिन्त जहश के शौहर, बाप और मामूँ शहीद हो गए। उन्होंने अपने ईमान के बल पर इस तीन तरफ़ी सदमें को सह लिया। वैसे मदीने में उहुद की मुसीबत की ख़बर पहुँची तो हज़रत फ़ातिमा सहित बहुत-सी महिलाएँ उहुद तक आ गईं और मदीने का शायद ही कोई घर ख़ाली रह गया होगा जिसका कोई न कोई आदमी शहीद न हुआ हो।

14. दोनों फ़रीक़ों की नैतिक तुलना का बड़ा महत्त्व है। इधर से हज़रत अबू दुजाना (रज़ि०) का यह आचरण था कि उठी हुई तलवार हिन्द (सुफ़ियान की बीवी) के सर से ऊपर ही ऊपर यह कहकर रोक ली कि यह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की तलवार है। इसे मैं किसी औरत के ख़ून में सनने नहीं दूँगा। दूसरी ओर हज़रत हमज़ा (रज़ि०) पर हमला करनेवाला हब्शी दास वह्शी पत्थर की ओट में छिपकर बैठता है और भीरुतापूर्वक ख़ुफ़िया हमला करता है।

दूसरा अन्तर यह है कि अबू सुफ़ियान की बीवी और कुछ दूसरे मुशरिक मर्दों और औरतों ने मुसलमान शहीदों की लाशों को बिगाड़ा, यहाँ तक कि हज़रत हमज़ा की लाश का जो हाल किया गया था, उसे देखकर तो हुज़ूर (सल्ल०) में भी इस विचार ने करवट ली कि अगर हमें मौक़ा मिले तो हम भी ऐसा ही करें। मगर अल्लाह की ओर से सचेत किया गया और आपने मुसलमानों को इस बात से मना कर दिया कि दुश्मन की लाशों को बिगाड़ा न जाए। इस फ़रमान का असर आज तक मौजूद है।

15. उधर अबू आमिर का जो चरित्र बताया गया, उसके मुक़ाबले में दूसरा चरित्र भी देखिए। यह साहब उसैरम नाम के थे और यहूदियों के गिरोह से जुड़े चले आ रहे थे, पर स्वभाव के नेक थे और यहूदियों को अक्सर यह एहसास दिलाते रहते कि मुशरिकों के मुक़ाबले में तुम्हें समझौते के मुताबिक़ मुहम्मद (सल्ल०) की मदद करनी चाहिए। यह खजूरें खाते-खाते उहुद के मैदान की तरफ़ से गुज़रे, तो पहले तो यह दृश्य देखने के लिए आगे बढ़े, फ़िर हुज़ूर (सल्ल०) के सामने जाकर पूछा कि मैं अगर यहाँ लड़ूँ और मारा जाऊँ, तो मुझे क्या मिलेगा? हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जन्नत।" और वह व्यक्ति तलवार लेकर यह कहता हुआ बेजिगरी से दुश्मन पर टूट पड़ा कि अगर मैंने अपनी बची खजूरें खाने की मोहलत पा ली, तो गोया बड़ी मोहलत होगी। ख़ुदा का करम कि वह व्यक्ति शहीद हुआ और हुज़ूर (सल्ल०) की बशारत (शुभ-सूचना) पूरी हुई। यह एक ऐसे सहाबी की मिसाल है जिसने न कोई नमाज़ पढ़ी, न रोज़ा रखा, सीधा जन्नत में जा पहुँचा।

16. बेशक कुछ ग़लतियों की वजह से मुसलमानों के हाथों से हासिल की हुई जीत छिन गई, पर यह हार भी नहीं थी, क्योंकि वे मैदान ही में थे कि अबू सुफ़ियान अपनी फ़ौज को लेकर चला गया। वह भी ख़ूब समझता था कि यह स्थिति संयोग जैसी है, फिर जब रौहा नामी जगह पर जाकर क़ुरैश के सरदारों ने नए सिरे से मामले को सोचा तो एक जोशीली राय यह थी कि हमें वापस जाकर मदीने पर अचानक हमला करना चाहिए, लेकिन सफ़वान बिन उमैया की राय

इसके ख़िलाफ़ थी। वह कहता था कि मुहम्मद (सल्ल०) के साथी इस वक़्त जिहाद के जोश में हैं, मुमकिन है कि दूसरे हमले में हमें सफलता न मिले। उधर क़ुरैश के माबद ख़ज़ाओी के ज़रिए यह सूचना मिली कि प्यारे नबी (सल्ल०) तुम्हारा पीछा कर रहे हैं और हमररुल-असद तक आ गए हैं। इसपर अबू सुफ़ियान ने फ़ौज को मक्के की ओर कूच करने का हुक्म दिया। सामरिक दृष्टि से हुज़ूर (सल्ल०) का पीछा करना मुसलमानों की कमज़ोरी के विचार की ग़लतफ़हमी दूर करने का ज़रिया बना।

उहुद की इन कुछ शिक्षाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस लड़ाई को उस इंक़िलाबी जद्दोजेहद में क्या अहमियत हासिल थी, जो हुज़ूर (सल्ल०) की रहनुमाई में की गई। उहुद की लड़ाई मुहम्मद (सल्ल०) की लाई हुई क्रान्ति के इतिहास का बड़ा अहम अध्याय है। जिसमें प्यारे नबी (सल्ल०) के व्यक्तित्व और शिक्षा का सौन्दर्य चमकता है।

# उहुद की लड़ाई के बाद का हाल

उहुद की लड़ाई के बाद स्वाभाविक था कि बद्र-विजय के प्रभावों में कुछ कमी आई और कुछ रूढ़िवादी क़बीले एक बार फिर कुरैश से जुड़ने लगे। जरायम पेशा और फ़सादी तत्त्वों में सरकशी आने लगी। उहुद के बाद के हालात की पेचीदगी से मदीना इस वजह से भली-भाँति निपटा सका कि मुस्लिम जमाअत मुस्तैद और उसका नेतृत्त्व बड़ा मज़बूत था। हर उपद्रव को सख़्ती से ख़त्म करके ला एंड आर्डर को बहाल रखा गया।

सबसे पहले ख़ुवैलद के बेटों तलहा और सलमा ने असद बिन ख़ुज़ैमा को मदीने पर डाकाज़नी के लिए तैयार किया। मुहर्रम सन् 04 हि० का चाँद होते ही सूचना मिली। हुज़ूर (सल्ल०) ने अबू सलमा मख़ज़ूमी के नेतृत्व में डेढ़ सौ व्यक्तियों की टुकड़ी भेजी। उपद्रवी भाग गए। उनके पीछे मवेशियों का गल्ला रह गया, उसे हुकूमत का हक़ समझकर ज़ब्त कर लिया गया।

पाँच मुहर्रम को ख़बर पहुँची कि ख़ालिद बिन सुफ़ियान हुज़ली ने कुछ लोगों को जमा कर लिया है। मदीने की हाई कमान ने अब्दुल्लाह बिन अनीस जुहनी अनसारी (रज़ि०) को मुहिम पर भेजा। वह उपद्रवियों के सरदार का सर काट लाएँ।

दो-तीन सप्ताह के बाद एक भयानक घटना घटी। सफ़र महीने के शुरू में क़बीला अज़्ल और क़बीला क़ारा के लोग साज़िश करके मदीना आए और हुज़ूर (सल्ल०) से दरख़्वास्त की कि हमारे कुछ लोग मुसलमान हो गए हैं, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए अपने शिक्षकों को भेजिए। दस इल्मवालों को भेजा गया। अमीर मरसद बिन अबी मरसद अमीर मुक़र्रर हुए। रजीअ नामी जगह पर पहुँचकर साज़िशियों ने हज़रत ख़ुबैब (रज़ि०) और हज़रत ज़ैदुद्दसिना (रज़ि०) को छोड़कर बाक़ी सबको मार डाला। इन दोनों को मक्का के क़ुरैश के हाथ बेच दिया, जिन्होंने उन्हें अपना बदला लेने के लिए क़त्ल कर दिया।

कितनी दर्द भरी घटना है कि थोड़ी तादाद की मुस्लिम जमाअत में से हुज़ूर (सल्ल०) कुछ क़ीमती लोगों को तालीमी मिशन पर भिजवाते हैं, जो बिना किसी मुआवज़े के इल्म (ज्ञान) की रौशनी फैलाना चाहते थे, उनको क़त्ल कर दिया जाता है। हुज़ूर (सल्ल०) को कितना सदमा हुआ होगा।

अब तनिक दूसरी ओर ध्यान दीजिए। मक्का के नेतृत्व ने पहले हज़रत ज़ैद (रज़ि०) को तनअीम के मैदान में क़त्ल कर दिया। क़त्ल से पहले अबू सुफ़ियान ने उनसे पूछा कि "ऐ ज़ैद ! क्या तुम इस बात को पसन्द करोगे कि तुमको छोड़

दिया जाए और तुम अपने घरवालों में हँसी-ख़ुशी रहो और तुम्हारी जगह मुहम्मद (सल्ल०) की गरदन मार दी जाए।" प्यारे नबी (सल्ल०) से बेइन्तिहा मुहब्बत करनेवाले ज़ैद (रज़ि०) ने मौत की आँखों में आँखें डालकर कहा, "ख़ुदा की क़सम ! हमें तो यह भी पसन्द नहीं कि हमारी ज़िंदगी और आज़ादी के बदले में हुज़ूर (सल्ल०) को एक काँटा भी चुभे।" यह सुनकर अबू सुफ़ियान ने कहा, "मैंने किसी को किसी से ऐसी मुहब्बत करनेवाला नहीं पाया, जैसा कि मुहम्मद (सल्ल०) को उनके साथी महबूब (प्रिय) रखते हैं।" किसे मालूम है कि हज़रत ज़ैद (रज़ि०) के इस वाक्य ने और कितने दिलों पर क्या प्रभाव डाला होगा ?

हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) को सूली पर चढ़ाया गया। इस व्यक्ति ने इससे पहले दो रक्अत नमाज़ अदा करने की इजाज़त माँगी, जो दी गई। उनकी यह दो रक्अत की नमाज़ बाद के सारे इतिहास में उन मज़लूमों की सुन्नत बन गई, जिन पर ज़ुल्म किया गया था।

अभी रजीअ की घटना का घाव ताज़ा ही था कि नज्द के इलाक़े से अबू बरअ बिन मालिक मदीना आया। उसने बड़े ही निष्ठापूर्ण ढंग से मशविरा दिया कि आप अपने साथियों को नज्द के इलाक़े में दावत व तालीम के लिए रवाना फ़रमाएँ। उम्मीद है कि लोग क़बूल करेंगे। चूँकि बहुत-सी वजहों से इस इलाक़े में दावत को फैलाने की ख़्वाहिश थी, इसलिए हुज़ूर (सल्ल०) ने 70 अहम व्यक्तियों की एक टोली रवाना की। उनमें प्रथम श्रेणी के क़ारी, (कुरआन पढ़नेवाले), मुफ़स्सिर (व्याख्या करनेवाले), फ़क़ीह (समझनेवाले), मुअल्लिम (इल्म सिखानेवाले) और दाई (दावत देनेवाले) शामिल थे। इतनी बड़ी जमाअत इलाक़े और आबादी के हिसाब से भेजी गई थी। विस्तार में जाए बिना यह दावती व तालीमी वफ़्द जब बरे मऊना नामी जगह पर पहुँचा तो बनी सुलैम के नीच क़बीलों ने अपने सरदारों के हुक्म से उसपर हमला करके 69 लोगों को शहीद कर दिया। 70वें व्यक्ति काब बिन ज़ैद (रज़ि०) थे, जो लाशों के अन्दर इस तरह लहूलुहान पड़े थे कि हमलावर उन्हें मुर्दा समझकर और वे चले गए। उन्हें होश आया तो उठे और मदीना रवाना हो गए।

हुज़ूर (सल्ल०) को इस घटना से बहुत दुख हुआ। मुस्लिम जमाअत पहले ही बड़ी तादाद न रखती थी। यह कमी बड़े नुक़्सान की वजह थी और फिर अपनी मरज़ी से इल्म सिखानेवालों की मज़लूमाना शहादत, जिसके लिए धोखा किया गया था, और ज़्यादा कष्टदाई थी। आपने घायल दिल के साथ एक महीने तक फ़ज्र की नमाज़ में अपने साथियों के हत्यारों के लिए बद्दुआ की। इसी बद्दुआ को "कुनूते नाज़िला" कहते हैं।

यह बद्दुआ की केवल एक बड़ी घटना हुज़ूर (सल्ल०) की ज़िंदगी में उभरी नुमायाँ है, मगर इससे भी अल्लाह ने हुज़ूर (सल्ल०) को रोक दिया। दुआ व बद्दुआ को क़बूल करना, न करना तो ख़ुदा के हाथ में है ही, उसने बद्दुआ करने तक से मना कर दिया। ख़ुदा की मस्लहत यह भी तो थी कि आगे चलकर इन क़बीलों में इस्लाम को फैलना था।

इन हृदय विदारक घटनाओं के शिकार होने पर भी हुज़ूर (सल्ल०) न घबराए, न निराश और हताश हुए, न दीन की ज़रूरी कार्रवाइयों में अन्तर आने दिया।

इधर ख़ुद मदीने के भीतर भी फ़सादी तत्त्व मौजूद थे, जो अपनी दौलत, ज़मीन और क़िलाबन्दियों के बल पर दम-ख़म रखते थे। हुज़ूर (सल्ल०) का विरोध करनेवालों में बनू नज़ीर का गढ़ बहुत मज़बूत था। बनू नज़ीर की अब तक की बुरी हरकतों में आख़िरी चीज़ हुज़ूर (सल्ल०) को क़त्ल करने की कोशिश थी। इस खुली ग़द्दारी पर हुज़ूर (सल्ल०) ने मदीना समझौते की रौशनी में बनू नज़ीर की नागरिकता ख़त्म करने का नोटिस दे दिया कि वे दस दिन के अन्दर-अन्दर मदीना से शान्तिपूर्वक चले जाएँ, लेकिन बनू नज़ीर को अब्दुल्लाह बिन उबई ने न जाने कहाँ से भारी सैनिक सहायता दिलाने का वादा करके भड़काया। उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) को चुनौती के तौर पर कहलवाया कि हम नोटिस की तामील नही करते, आगे आप जो चाहें करें, हालात की इस पेचीदगी की बुनियाद पर रबीउल अव्वल सन् 04 हि० में हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़ौज लेकर कूच किया और बनू नज़ीर का घेराव कर लिया। कोई मदद को न आया। आख़िर विवश होकर उन्होंने बस्ती ख़ाली कर दी और ख़ैबर चले गए। हुज़ूर (सल्ल०) के दयापूर्ण स्वभाव से ज़ाहिर था कि वे लोग न सिर्फ़ जानें बचाकर ले गए, बल्कि ऊँटों पर अपने क़ीमती मालों के अलावा दरवाज़ों के किवाड़ तक उखाड़ कर ले गए। कशमकश और टकराव के इस माहौल में भी बनू नज़ीर के भीतर दो शुभ आत्माएँ ऐसी निकलीं जिन्होंने सच्चाई की रौशनी को पहचाना। वे हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ पर ईमान लाए। ये थे यामीन बिन उमैर और अबू सईद बिन वहब।

बनू नज़ीर की लड़ाई के बाद कुछ दिन हुज़ूर (सल्ल०) मदीने ही में ठहरे रहे। जुमादल ऊला के शुरू में रिपोर्ट आई कि ग़तफ़ान के क़बीले—बनी मुहारिब और बनी सालबा—हमले की तैयारी कर रहे हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने तुरन्त कुछ सौ साथियों के साथ मार्च किया। नज्द पहुँचने पर दुश्मन सामने आया तो ज़रूर, पर लड़ाई नहीं छेड़ी, इतने ही में मामला ख़त्म हो गया।

प्यारे नबी (सल्ल०) के नेतृत्व और सामरिक नीति का यह शानदार नमूना है कि कठिन परिस्थितियों में भी आपने हर छोटी से छोटी चुनौती पर कोई न कोई

क़दम उठाया। इसी का नतीजा था कि विद्रोही शक्तियों ने सर उठाते ही अपने आपको समेट लिया। अगर उनको तनिक भी ढील मिलती तो फिर हर ओर से उमड़ी इस बाढ़ को रोकना कठिन हो जाता।

अबू सुफ़ियान उहुद के मैदान से यह चुनौती देकर विदा हुआ था कि हमारा-तुम्हारा अगला मुक़ाबला अगले साल बद्र के मैदान में होगा। यह बात उसने कह तो दी थी, पर बाद में उसे आशंकाओं ने घेर लिया और वह दिल से चाहता था कि अगले साल मुस्लिम शक्ति बद्र में न आए और वह एक चक्कर उधर का लगाकर कह सके कि कोई मुक़ाबले को आया ही नहीं। सितम यह कि नईम बिन मस्ऊद को मदीना रवाना करते हुए उसने कुछ माल देकर यह कहा कि वहाँ जाकर यह मशहूर करो कि मक्का के लोग बड़ी भारी सैनिक शक्ति ला रहे हैं, साथ ही मुसलमानों को मशविरा दो कि तुम क़ुरैश से लड़ने के लिए न निकलो। प्रचार के इस हथियार का नतीजा उलटा निकला। मुस्लिम जमाअत के ईमानी जोश में और वृद्धि हो गई। प्यारे नबी (सल्ल०) पंद्रह सौ योद्धाओं के साथ मदीने से निकले। झंडा हज़रत अली (रज़ि०) के हाथ में था। दूसरी ओर अबू सुफ़ियान दो हज़ार व्यक्तियों की सेना साथ लाया था, पर ज़हरान या अस्फ़ान नामी जगह से सूखे का बहाना करके वापस चला गया।

हुज़ूर (सल्ल०) आठ दिन तक बद्र में कैम्प लगाए दुश्मन फ़ौज का इन्तिज़ार करते रहे। अब सिवाए इसके और क्या हो सकता था कि आप अपनी फ़ौज लेकर मदीना वापस आ गए।

ये फ़ौजी कार्रवाइयाँ तो एक प्रकार की विवशता थीं कि इनके बिना नवजात इस्लामी राज्य और इस्लामी समाज का बाक़ी रहना ही संभव न था, पर दूसरी ओर रचनात्मक और सुधारात्मक कामों का सिलसिला अपनी जगह जारी था।

चुनांचे तलवार और लड़ाई के इन खेलों के दरमियान ही शराब के हराम होने का हुक्म आया। शराब का पीना-पिलाना इस्लामी आन्दोलन के चरित्र से मेल नहीं खाता था। शुरू में सूरा बक़रा की एक आयत में शराब और जुए के बारे में यह इशारा हो चुका था कि इनके फ़ायदे से इनका गुनाह ज़्यादा बड़ा है। कुछ साथियों ने इसी इशारे को समझकर शराब छोड़ दी थी।

फिर एक बार ऐसा हुआ कि हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ ने दोस्तों की दावत की, खाने के बाद शराब का दौर चला, इसके बाद मग़रिब की नमाज़ का वक़्त हो गया। एक साहब को जमाअत का इमाम बनाया गया, वह सूरा काफ़िरून ग़लत पढ़ गए। इस घटना की पृष्ठभूमि के साथ हुक्म आया कि नशे की हालत में नमाज़ के लिए न खड़े हो, यानी नमाज़ के वक़्तों में शराब न पी जाए।

फिर एक और घटना घटी। हज़रत उत्बान बिन मालिक के घर में दावत थी। पहले खाना हुआ, फिर शराब का दौर चला, फिर शेरो शायरी सुनने-सुनाने में आगे बढ़ने की होड़ लगी। नशे की हालत में साद बिन अबी वक़्क़ास ने एक क़सीदा (प्रशस्ति पत्र) पढ़ा, जिसमें अपनी क़ौम की प्रशंसा के साथ मदीना के अनसार की बुराई की गई थी। इसपर एक अनसारी नौजवान ने उत्तेजित होकर ऊँट के जबड़े की हड्डी हज़रत साद के सर पर दे मारी। वह बहुत ज़्यादा घायल हो गए। हज़रत साद ने हुज़ूर (सल्ल०) के सामने शिकायत की। शिकायत सुनकर हुज़ूर (सल्ल०) ने दुआ की, "ऐ अल्लाह! शराब के बारे में हमें कोई स्पष्ट और क़तई हुक्म और क़ानून अता फ़रमा।"

किसी भी हुक्म और क़ानून के जारी होने से पहले अल्लाह ने यह चाहा कि कुछ घटनाओं से ऐसा वातावरण बन जाए कि मुस्लिम समाज ऐसे हुक्म को ख़ुद महसूस करने लगे या हुक्म की मस्लहत को आसानी से समझने लगे, इसी को शाने नुज़ूल कहते हैं।

इस तरह हुज़ूर (सल्ल०) की दुआ के जवाब में शराब के हराम किए जाने का क़तई हुक्म आ गया। शराब और जुए और स्थानों के चढ़ावों और पांसे के तीरों को एक साथ गन्दे शैतानी काम कहा गया और बताया गया कि इनके ज़रिए शैतान तुम्हारे बीच झगड़ा-फ़साद पैदा करता है और ख़ुदा के ज़िक्र और नमाज़ को ख़राब करता है। अन्तिम वाक्य था, "फिर क्या तुम बाज़ आओगे?"

यह आयत सुनकर कुछ साथियों ने चिल्लाकर कहा, "ऐ अल्लाह! हम बाज़ आ गए।" यह है किसी भी ईमानवाले की शान कि ख़ुदा की ओर से उसका जो हुक्म भी उस तक पहुँचे, उसपर अपना सर झुका दे।

उसी वक़्त शराब के हराम किए जाने की मुनादी करा दी गई। हज़रत अबू तलहा (रज़ि०) के घर में शराब का दौर चल रहा था, ज्यों ही मुनादी की आवाज़ पहुँची, प्याले हाथों से अलग करके फेंक दिए गए और मटके गली में लुढ़का दिए गए।

मदीने के मुसलमान ऐसे न थे कि इधर तो ख़ुदा पर ईमान लाएँ और रसूल (सल्ल०) के हाथ पर बैअत करें और क़ुरआन को हिदायत की रौशनी मानें और उधर जो हुकम दिया जाए, उसे नज़रअंदाज़ करके अपने रवैए में मगन रहें। जो कोई अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की रिसालत और आपका नेतृत्व क़बूल करता है, वह अगर हुज़ूर (सल्ल०) की लाई हुई हिदायत की पैरवी नहीं करता तो उसके व्यक्तित्व में खोट मौजूद है।

अब तनिक एक ओर मदीने के शराबबन्दी के क़ानून के तजुर्बे का जायज़ा

लीजिए और दूसरी ओर वर्त्तमान युग के एक बड़े सभ्य राज्य अमरीका की शराबबन्दी के क़ानून के तजुर्बे का जायज़ा लीजिए। इस क़ानून की अमरीका में इतने बड़े पैमाने पर ख़िलाफ़वर्ज़ी की गई कि उसकी धज्जियाँ उड़ गईं और शराब और दूसरी चीज़ों का इतना ज़ोर हुआ कि ये चीज़ें सभ्यता का अनिवार्य अंग बन गईं।

# बनू मुस्तलक़ के ख़िलाफ़ कार्रवाई

सन् 05 हि० का अहम जंगी वाक़िआ बनू मुस्तलक़ के खिलाफ़ कार्रवाई का है। यह बहुत बड़ा लड़ाकू क़बीला था। सूचना मिली कि ये लोग फ़साद पर उतर आए हैं। बुरैदा अस्लमी को भेजकर हुज़ूर (सल्ल०) ने जाँच कराई तो ख़बर की पुष्टि हो गई। 3 शाबान को हुज़ूर (सल्ल०) फ़ौज लेकर रवाना हो गए। बड़ी तेज़ी के साथ चलकर मुरैसीअ नामी जगह पर जा पहुँचे। दुश्मन लड़ने पर उतर आया था, पर हुज़ूर (सल्ल०) के अचानक आ पहुँचने की वजह से विरोधियों की सारी सेना घबरा गई। सिर्फ़ क़बीले के अपने लोग बाक़ी रहे। पहले ही हमले में क़बीले को पराजय का मुँह देखना पड़ा। भारी संख्या में पशुओं पर क़बज़ा कर लिया गया और क़बीले के सारे लोग जंगी क़ैदी बना लिए गए। इन्हीं लोगों में जुवैरिया भी थीं, जिन्होंने क़लिमा ज़ोर से पढ़कर कहा कि मैं इस्लाम लाकर हाज़िर हुई हूँ। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनकी रज़ामंदी से उन्हें अपने हरम में ले लिया। इसका असर यह हुआ कि मुसलमानों ने बनू मुस्तलक़ के तमाम क़ैदियों को इस बुनियाद पर रिहा कर दिया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के रिश्तेदारों को हम क़ैदी बना कर नहीं रख सकते। जुवैरिया क़बीले के सरदार हारिस की बेटी थीं।

मुसलमानों को यहाँ जो विजय एक बड़ी ताक़त के मुक़ाबले में बहुत आसानी से मिल गई, उसपर मुनाफ़िक़ जल-भुन गए। पहले उन्होंने पानी के सोते पर मुहाजिरों और अनसार में झगड़ा पैदा कराया। ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हस्तक्षेप करके बड़ी सावधानी के साथ इस आग को ठंडाकर दिया, पर मुनाफ़िक़ रास्ते भर दोनों गिरोहों को एक-दूसरे के खिलाफ़ भड़काते रहे।

इस सफ़र की सबसे बड़ी घटना हज़रत आइशा (रज़ि०) पर एक गन्दा बोहतान लगाने की है, जिसकी ज़िम्मेदारी मुनाफ़िक़ों पर ही थी।

मानव हित चाहने और चरित्र व आचरण में सुधार के प्रोग्राम को लेकर जो आन्दोलन उठते हैं, उनके खिलाफ़ तरह-तरह के असामाजिक तत्व, स्वार्थी और दुष्ट घात लगाए बैठे होते हैं कि कब किधर से कोई शरारत उठाई जा सकती है। साथ ही ऐसे आन्दोलनों के लिए हथियारों की लड़ाइयाँ इतनी भारी नहीं होतीं, जितना कि नैतिक पहलू से उनपर हमला!

बात सिर्फ़ इतनी थी कि बनू मुस्तलक़ की लड़ाई से वापसी पर एक जगह सेना ने पड़ाव डाला। उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) ज़रूरत से एक ओर को थोड़ी दूर चली गईं और कुछ रिवायतों के मुताबिक़ वहाँ उनका हार गिर गया और बालू में उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कुछ देर हो गई। इधर क़ाफ़िले को कूच का

हुक्म हो गया। लोग आए और हज़रत आइशा (रज़ि०) के ख़ाली कजावे को जिसपर परदा था, उठाकर ऊँट पर रख दिया। हज़रत आइशा (रज़ि०) चूँकि बहुत दुबली थीं, इसलिए वे जल्दी में यह न महसूस कर सके कि उसके भीतर वह तशरीफ़ नहीं रखती हैं। वे निगाहें फेरे हुए थे, इस वजह से कोई झलक देखने, न देखने का सवाल ही न था।

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) जब पलटकर अपनी जगह पहुँचीं, तो क़ाफ़िला दूर जा चुका था। कोई उपाय समझ में न आया तो रेत में चादर तानकर लेट गईं और गहरी नींद सो गईं। पहले फ़ौज के पीछे कुछ लोग चला करते थे, ताकि कोई चीज़ रह जाए तो सँभाल लें। इस बार यह ड्यूटी सफ़वान बिन मोतल (रज़ि०) की थी। तनिक दूर से उन्होंने चादर से ढकी एक चीज़ देखी तो उधर आ गए। हज़रत सफ़वान (रज़ि०) चूँकि परदे के हुक्म से पहले हज़रत आइशा (रज़ि०) को देख चुके थे, इसलिए पहचानकर उन्होंने 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' पढ़ा।

यह आवाज़ सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि०) की आँख खुल गई और उन्होंने चादर मुँह पर डाल ली। सफ़वान (रज़ि०) ने ऊँट को बिठाया और मुँह एक ओर करके कहा कि आप सवार हो जाइए। दोपहर में सेना ने फिर पड़ाव किया और थोड़ी देर में कड़कती धूप में सफ़वान ने हज़रत आइशा (रज़ि०) को कैम्प में पहुँचा दिया।

बस इसपर मुनाफ़िक़ों ने इसे दर किनार करते हुए कि उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) किसकी बीवी हैं, किसकी बेटी हैं, उनका घराना कैसा है, उनका दीन क्या है और उनकी जमाअत कौन-सी है और उनको लानेवाला सफ़वान (रज़ि०) ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) और उनकी बीवियों से क्या श्रद्धा रखता है, लगाई-बुझाई का एक तूफ़ान खड़ा कर दिया। ये गन्दे लोग कहने लगे कि "कैसे मुमकिन है कि वह बचकर आई हों?" और यह कि "ज़रा देखिए तो सही कि बने हुए हैं हक़ की दावत देनेवाले और सारी इनसानियत के सुधार का ठेका ले रखा है और अपना यह हाल है।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) को, जिनकी ओर क़ुरआन ने 'पाक दामन, भोली-भाली और मोमिन औरतों' के शब्दों से इशारा किया है, ऐसी किसी बात की ख़बर न थी कि क्या हो रहा है। उनका अपना बयान है कि "मदीने पहुँचकर मैं बीमार पड़ गई और एक माह तक बिस्तर पर पड़ी रही। मुझे और कोई बात मालूम न थी, सिर्फ़ यह देखती थी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की वैसी तवज्जोह मेरी ओर न थी, जैसी बीमारी के ज़माने में हुआ करती थी। बस जब तशरीफ़ लाते तो सरसरी तौर

ार पूछ लेते कि 'कैसी है यह ?" उस ज़माने में घरों में शौचालय न थे। हम लोग ाहर से बाहर जंगल जाया करते थे। मेरे वालिद की मौसेरी बहन मेरे साथ थीं। ास्ते में उनको ठोकर लगी तो उन्होंने बेटे का नाम लेकर कहा कि बुरा हो मिस्तह बेन असासा का ! मैंने कहा, "तुम माँ होकर बेटे को कोसती हो।" फिर उन्होंने ारा क़िस्सा सुनाया कि मिस्तह बिन असासा और दूसरे लोग मेरे बारे में क्या ान्दगी फैला रहे हैं। यह सुनकर मेरा ख़ून सूख गया और वह ज़रूरत ही भूल ाई, जिसके लिए निकली थी। सीधी घर वापस आ गई और रात भर रो-रोकर काटी। रोने का यह हाल रहा कि डर हुआ कि मेरा कलेजा फट जाएगा।"

ख़ैर, यह क़िस्सा एक बड़ा क़िस्सा है। इसका अन्त इस तरह हुआ कि हज़रत आइशा (रज़ि०) की पाकदामनी की गवाही ऊपर से आई और सूरा नूर की किरणों ो अँधेरों को तार-तार कर दिया। हज़रत मरयम के बाद यह दूसरी महिला हैं जेनकी पाकदामनी की पुष्टि ख़ुद अल्लाह ने की। हज़रत आइशा (रज़ि०) का वेवरण ख़ुद ग्रंथ अलकिताब में शामिल हो गया। हज़रत आइशा (रज़ि०) को बरी किए जाने की वह्य आने पर उनकी माँ ने जब कहा कि उठो और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का शुक्रिया अदा करो, तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने जवाब देया कि मैं न उनका शुक्रिया अदा करूँगी और न आप दोनों का, बल्कि अल्लाह का शुक्र बजा लाती हूँ जिसने मेरी पाकदामनी की पुष्टि की। आप लोगों ने तो बोहतान का इनकार तक न किया।

फिर ज़िना और उसकी तोहमत और सामाजिक जीवन के बारे में दूसरे अहम क़ानून उतरे और लागू किए गए और बेसबूत बोहतान लगाकर प्रोपगेण्डा करनेवाले कुछ लोगों की पीठों पर कोड़े बरसाए गए।

# ख़न्दक़ की लड़ाई

इन हालात से गुज़रकर हम फिर क़ुरैश के प्रोग्राम की ओर मुतवज्जोह हो हैं। क़ुरैश और मदीने की मुस्लिम-शक्ति में एक बड़ा अन्तर था, उध अज्ञान-व्यवस्था की आत्मा कुंठित और थकी हुई थी और उस सोसाइटी का को न कोई अंग हर क्षण कटकर मदीने की झोली में गिर रहा था। इधर मदीने व मुस्लिम ताक़त रचनात्मक, सिद्धान्तपरक, सन्देशवाहक और जन-समर्थन प्रा ताक़त थी, इसलिए वह गतिशील थी, सक्रिय थी, सरगर्म थी और बराबर विकसि हो रही थी। अतः समय का गुज़रना मदीने के लिए फ़ायदेमन्द और मक्के वे लिए नुक़सानदेह था। अब उन्हें मुसलमानों पर हमला करने के लिए पहले बड़ी ताक़त की ज़रूरत थी। क़ुरैश, यहूदी, अहाबीश, बनू ग़तफ़ान मिलकर जल से जल्द उस ताक़त को तैयार करना चाहते थे। चुनांचे सबने मिलकर एक योजन बनाई।

आख़िर लगभग दस हज़ार सैनिकों पर सम्मिलित सेना मदीने पर हमले वे लिए तैयार हो गई। प्यारे नबी (सल्ल०) को सूचना मिल चुकी थी। मशवि हुआ और निर्णय किया गया कि मदीने में रहकर ही प्रतिरक्षा की जाए। हज़र सलमान फ़ारसी (रज़ि०) का यह मशविरा क़बूल किया गया कि मदीने के उत्त खुले भाग की ओर खाई खोदी जाए। तीन हज़ार मुस्लिम सिपाही खाई खोदने लग गए। दस-दस आदमियों की टोलियाँ बनाई गईं और हर टोली को लगभ 20 गज़ लम्बा टुकड़ा सौंपा गया। लंबाई लगभग 5 किलोमीटर थी। चौड़ाई औ गहराई अगर 5-5 गज़ समझी जाए तो लगभग 13 लाख 86 हज़ार घन फुट मि को खोदना और निकाल फेंकना था। प्रति व्यक्ति 462 घन फुट से कुछ ज़्या मिट्टी हिस्से में आती थी। टोकरियाँ कम थीं, इसलिए अबू बक्र व उमर (रज़ि० जैसी हस्तियाँ चादरों और दामनों में भर-भरकर मिट्टी उठाते थे।

इधर खाई पूरी हुई और उधर सन् 05 हि० में इस्लामी राज्य के संयुक दुश्मनों का टिड्डी दल सेनाएँ मदीना आ पहुँची, खाई का मामला उनके लिए न था। कुछ लोगों ने घोड़े दौड़ाकर उसे पार करना चाहा, पर अन्दर गिरकर ख़त्म गए। सिर्फ़ एक बार ऐसा हुआ कि एक उचित स्थान खोजकर क़ुरैश का ना योद्धा अम्र बिन अब्देवुद्द कुछ और सवारों के साथ खाई के इस पार आ गया उसने ललकारा। हज़रत अली जैसे योद्धा मुक़ाबले में आ गए। उन्होंने दुश्मन व काम तमाम कर दिया। इस तरह की कुछ टोलियों से जगह-जगह उस दिन लड़ होती रही। दुश्मन ने मुसलमानों को इतना लगाए रखा कि चार नमाज़ें क़ज़ा

ईं, लेकिन ऐसी झड़पों से लड़ाई का फ़ैसला तो नहीं हो सकता।

आख़िर क़ुरैश ने एक धूर्ततापूर्ण चाल सोची और बनू क़ुरैज़ा को इसपर तैयार ;र लेना चाहा कि वे मुसलमानों पर पीछे से हमला कर दें और काफ़ी हीले-बहाने ;रने के बाद उन्होंने हाँ कर दी। बनू क़ुरैज़ा के पास डेढ़ हज़ार लड़नेवाले सैनिक ं।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने इस उलझाव को देखते हुए औस व ख़ज़रज के ारदारों से बातचीत की कि अगर आप पसन्द करें तो बनू ग़तफ़ान से मदीने की ;क तिहाई पैदावार पर समझौता कर लिया जाए। अनसार के सरदारों ने कहा कि ाब हम कुफ़्र की हालत में थे तो ये क़बीले हमारा माल न ले सके, आज ;सलमान होकर हम उनको कैसे अपनी दौलत सौंप सकते हैं।

इस मौक़े पर नुऐम बिन मसऊद ने हुज़ूर (सल्ल०) के सामने अपने इस्लाम ा एलान किया और फिर इजाज़त तलब की कि मैं क़ुरैश और बनू क़ुरैज़ा में फूट ;लवा सकता हूँ, क्योंकि अभी तक उनको मेरे इस्लाम अपनाने का इल्म नहीं। ;ज़ूर (सल्ल०) ने इजाज़त दे दी। नुऐम सफल हो गए और दो दुश्मन ताक़तों में ;ूट पड़ गई।

दुश्मन एक महीने से मदीने को घेरे पड़ा था। सैनिकों का मोर्चे पर जाकर ख़ाली बैठना कठिन होता है। साथ ही यह भी कि रसद की समस्या जटिल होती ा रही थी। उनकी रसद की एक खेप रास्ते में एक मुस्लिम फ़ौजी दस्ते ने क़ब्ज़े ं कर ली, फिर मौसम प्रतिकूल हो गया, सर्दी असह्य हो गई और एक रात बहुत ाख़्त आँधी चली। हमलावरों के ख़ेमे उखड़ गए। हाँडियाँ उलट गईं, जानवर ागने लगे, दुश्मनों ने घबराकर भागना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि सुबह ोते-होते मैदान ख़ाली हो गया।

इस मौक़े पर मदीने में मुसलमानों के पास खाद्य-सामग्री की कमी थी, चुनांचे ोग पेट पर पत्थर बाँधकर काम करते थे और प्यारे नबी (सल्ल०) ने तो दो ात्थर बाँधे। मुस्लिम जमाअत और इस्लामी राज्य का प्रमुख आम मुसलमानों के ाथ हर तकलीफ़ में शरीक था।

इस मौक़े का ख़ास वाक़िआ यह है कि खाई की खुदाई में हुज़ूर (सल्ल०) ने ी शिरकत की। ख़ास तौर से जब कोई मुश्किल मरहला आता तो हुज़ूर सल्ल०) को बुलाया जाता। हज़रत सलमान (रज़ि०) का बयान है कि एक चट्टान ;सी आ गई जो मुझसे टूटती न थी। रसूले ख़ुदा (सल्ल०) क़रीब ही थे। उन्होंने ;ुझसे कुदाल लेकर उसे तोड़ा। पहली चोट लगाई तो फ़रमाया कि यमन मेरे लिए ीता गया और दूसरी चोट पर फ़रमाया कि शाम और अल-मग़रिब मेरे पैरों में

आ गए। तीसरी बार फ़रमाया कि पूर्वी क्षेत्र अर्थात ईरान विजित हुआ। हर चोट पर चट्टान के टुकड़े उड़ते गए।

देखा आपने, कितने संगीन हालात में हुज़ूर (सल्ल०) को ऐसे रौशन भविष्य का यक़ीन था और अल्लाह ने क्या-क्या बशारतें आपको दे रखी थीं।

खाई की इस लड़ाई के अन्त पर दुनिया के सबसे बड़े सूझ-बूझवाले व्यक्ति ने फ़रमाया कि अब क़ुरैश मदीने आकर कभी नहीं लड़ेंगे। अब वक़्त आ रहा है कि हम उनपर चढ़ाई करेंगे और ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) की यह बात बिलकुल सच्ची निकली।

# कुछ और फ़ौजी कार्रवाइयाँ

जंगे ख़ंदक़ (खाई की लड़ाई) के समय में ही यहूदियों के बनू क़ुरैज़ा क़बीले ने मदीना समझौता की धज्जियाँ उड़ाकर जिस तरह क़ुरैश के साथ साँठ-गाँठ की थी, वह अगर अमल में आ जातीं तो समझो प्यारे नबी (सल्ल०) की इस्लामी जमाअत, कृपा और न्याय के आन्दोलन और मदीना के ईश्वरवादी व्यवस्था का अन्त ही हो जाता। ऐसी ख़ौफ़नाक ग़द्दारी को कैसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता था?

प्यारे नबी (सल्ल०) और आपके सरफ़रोश मुजाहिदीन बहुत थके-थकाए घरों में वापस आए। आपने हथियार खोले और स्नान किया। इसी बीच ग़ैबी इशारा हुआ और आपने हुक्म जारी करके ख़ुदाई फ़ौज के रज़ाकारों को दोबारा जमा किया। बहुत-से लोगों ने अपने हथियार खोले भी न थे। अब वे ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) की कमान में बनू क़ुरैज़ा की ओर मार्च कर रहे थे। बनू क़ुरैज़ा जल्दी से क़िलाबन्द हो गए। मुस्लिम सिपाहियों ने घेराव कर लिया, जो पच्चीस दिन तक जारी रहा। आख़िर तंग आकर बनू क़ुरैज़ा ने अपने आपको इस्लामी शक्ति के हवाले कर दिया। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनसे बातें कीं और उनकी पसन्द के मुताबिक़ हज़रत साद बिन मुआज़ (रज़ि०) को मध्यस्थ बनाना तय किया, और दोनों ओर से फ़ैसला उनपर छोड़ दिया गया। हज़रत साद बिन मुआज़ (रज़ि०) ने तौरात के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला सुनाया, जिसमें यह धारा भी थी कि लड़ने के क़ाबिल तमाम नौजवानों को मृत्युदण्ड दिया जाए। इस तरह ग़द्दारी का एक मोर्चा ख़त्म हुआ।

अब कुछ अलग-अलग फ़ौजी कार्रवाइयों का ज़िक्र किया जाता है।

मुहम्मद बिन मुस्लिमा अनसारी 30 सवारों के साथ गश्त को निकले तो नज्द के सरदार सुमामा बिन उसाल से उनकी टक्कर हो गई। वे मदीने के इस असरदार विरोधी को गिरफ़्तार कर लाए। हुज़ूर (सल्ल०) के सामने उसे पेश किया गया। सुमामा की बड़ाई देखिए कि उसने हुज़ूर (सल्ल०) से साफ़-साफ़ अर्ज़ किया कि "ऐ मुहम्मद! अगर मुझे क़त्ल करो तो क़त्ल करने योग्य आदमी को क़त्ल करोगे। अगर छोड़ दोगे तो एक एहसान माननेवाले को छोड़ दोगे और अगर माल चाहते हो तो मात्रा बताओ, दिया जाएगा।"

प्यारे नबी (सल्ल०) ने उसे बाइज़्ज़त बरी कर दिया। सुमामा ने प्यारे नबी (सल्ल०) के हाथ पर इस्लाम की बैअ्त की और कहा कि "आज से पहले हुज़ूर

(सल्ल०) के चेहरे से बढ़कर कोई और चेहरा अप्रिय न था और आज उससे ज़्यादा प्रिय चेहरा कोई और नहीं।"

मदीने से जाते ही सुमामा ने मक्के में जाकर कुरैश को सुना दिया कि अब तुमको नज्द से अन्न का एक दाना भी न मिलेगा।

अहले रज़ीअ, जो शिक्षा-मंडली के सदस्यों के हत्यारे थे, उनको सज़ा देने के लिए हुज़ूर (सल्ल०) ने दो सौ सवारों के साथ कूच किया। वे लोग भाग गए।

मदीने से एक मील की दूरी पर ज़ीक़र्द नाम का चश्मा है (स्रोत)। उसके आस-पास सरकारी ऊँटों और मवेशियों की चरागाह थी। उसफ़ान का एक आदमी जानवरों की देखभाल करता था। रबाह नाम के ग़ुलाम को ख़बर लाने के लिए भेजा गया। सलमा बिन अकवा सैनिक संरक्षक थे। यह ड्यूटी पर जा रहे थे कि सुबह-सुबह उयेना बिन हिसन फ़ज़ारी ने ऊँटों पर डाका डाला और उनको हाँक ले गया। जानवरों की देखभाल करनेवालों को क़त्ल किया और उसकी औरत को भी साथ ले लिया। सलमा ने मौक़े पर जाकर लूट-मार का दृश्य देखा तो मदीने की ओर रुख़ करके 'या सबाहा' की पुकार बुलन्द की और रबाह को कुमक लेने के लिए दौड़ाया। ख़ुद अकेले डाकुओं का पीछा करने के लिए दौड़े। तीरंदाजी के माहिर थे। टोली के पीछे से ताककर तीर फेंकते और हर तीर एक न एक मुजरिम को निशाना बनाता। रास्ता पहाड़ी था। डाकू मुतवज्जोह होते तो ये टीलों और पेड़ों में छिप जाते और मौक़ा पाकर तीर फेंकते। यह गुरिल्ला लड़ाई की एक ज़ोरदार मिसाल थी। डाकुओं ने पहले तो ऊँट छोड़े, फिर बोझ घटाने के लिए चादरें और नेज़ें फेंकते गए। पीछे से कुमक आ गई और प्यारे नबी (सल्ल०) ख़ुद भी तशरीफ़ ले आए। कुछ आमने-सामने झड़पें भी हुईं। हज़रत सलमा ने अर्ज़ किया कि आप एक सौ सिपाही मेरे साथ रवाना कर दें, तो मैं सबका ख़ात्मा कर आऊँ। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब ख़ुदा ने तुम्हें ग़लबा दे ही दिया है तो अब नर्मी से काम लो।"

क्या शान थी इस्लामी आन्दोलन के जाँबाज़ो की, जैसे नस-नस में बिजलियाँ भरी हुई हों। कुछ छोटी-छोटी दूसरी फ़ौजी टुकड़ियाँ भी आसपास के इलाक़ों में जाती रहीं। जैसे बनी असद की ओर, बनी सालबा की ओर, बत्ने नख़ला के क़रीब, जुमूह की ओर, दौमतुल जुन्दल की ओर, और क़बीला साद बिन बक्र की ओर।

उकल और उज़ैना नामी क़बीलों के कुछ लोग मदीना आकर मुसलमान हुए। ये लोग बीमार थे। इलाज के लिए मदीने के बाहर ठहराए गए। जब अच्छे हो गए तो सरकारी चरवाहे को पकड़कर उसकी आँखों में सलाई फेरी, उसके अंगों

को काट-काटकर उसे क्रूरता के साथ क़त्ल कर दिया और जानवर साथ लेकर भाग गए। कुर्ज़ बिन ख़ालिद फ़हरी के नेतृत्व में 20 सवारों की टुकड़ी उनकी गिरफ़्तारी के लिए भेजी गई। गिरफ़्तार हुए और उनको ठीक इनसाफ़ करते हुए वही सज़ा दी गई, जो कुछ उन्होंने चरवाहे के साथ किया था। यह कार्रवाई तो हो गई, पर आगे के लिए हुज़ूर (सल्ल०) ने हुक्म दे दिया कि क़सास (प्रतिदान) में भी किसी के चेहरे, अंग और देह को बिगाड़ा न जाए। वह इनसाफ़ था और यह रहमत थी।

# हुदैबिया का समझौता

अब हम हिजरत के छठे साल के अन्त में बहुत बड़े वाक़िए से दोचार होते हैं, जिसने प्यारे नबी (सल्ल०) के इस्लामी आन्दोलन के इतिहास पर बड़े दूरगामी प्रभाव छोड़े।

यह वाक़िआ है हुदैबिया के समझौते का।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने एक सपना देखा कि आप अपने कुछ साथियों के साथ मक्के में अम्न व अमान से दाख़िल हुए और उमरा किया। इस सपने का उल्लेख आपने अपने साथियों से किया। साथी सपना सुनते ही बैतुल्लाह की ज़ियारत के लिए बेचैन हो गए।

आख़िर एक दिन प्यारे नबी (सल्ल०) ने 1400 साथियों को साथ लेकर उमरे की नीयत से मक्के की राह पर क़दम रखा। यह ज़ीक़ादा सन् 06 हि० का वाक़िआ है। कुरबानी के ऊँट साथ लिए, जुल-हुलैफ़ा पहुँचकर आम राय के मुताबिक़ उनके कोहानों को हल्की-सी चोट से लहूलुहान किया गया और उनकी गरदन में फंदे डाल दिए गए, ताकि उन्हें पहचाना जा सके कि क़ुरबानी के ऊँट हैं। अरब में क़ुरबानी के जानवरों के साथ कोई छेड़-छाड़ नहीं की जाती थी।

हक़ की राह के तमाम राहियों ने एहराम बाँधे और साथ में सिर्फ़ हिफ़ाज़ती हथियार लिए गए, लड़ाई के नहीं।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने बनी ख़ुज़ाआ के एक आदमी बिश्र बिन सुफ़ियान (रज़ि०) को आगे रवाना किया कि वह क़ुरैश को हुज़ूर (सल्ल०) के उमरा के इरादे से आगाह करें। बिश्र बिन सुफ़ियान (रज़ि०) ने वापस आकर उसफ़ान में हुज़ूर (सल्ल०) को सूचना दी कि क़ुरैश ने पता लगते ही अपनी फ़ौज जमा कर ली है और निश्चय कर लिया है कि वे आपको मक्के में दाख़िल न होने देंगे। साथ ही ख़ालिद बिन वलीद दो सौ सवारों को लेकर, कुरा उल ग़मीम नामी जगह पर पहुँच गया है।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने इन जानकारियों की रौशनी में अपना रास्ता बदल लिया। दूसरी ओर से सनीयतुल मरार पहुँचे। पास ही हुदैबिया नाम का कुँआ था और उसी नाम का गाँव भी। प्यारे नबी (सल्ल०) नें यहाँ पड़ाव किया। कुएँ में पानी कम था। मोजज़े के तौर पर अल्लाह ने उसमें यकायक ज़रूरत के मुताबिक़ बढ़ोत्तरी कर दी।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने ख़िराश बिन उमैया ख़ुज़ाई को मक्कावालों से बात

करने के लिए भेजा। मक्केवालों ने उनके ऊँट को ज़बह कर दिया और ख़ुद वे ख़िराश को भी क़त्ल करना चाहते थे, पर बीच-बचाव हो गया। फिर हज़रत उसमान (रज़ि०) को भेजा गया। उन्हें वापस आने में देर लगी। अफ़वाह उड़ी कि हज़रत उसमान (रज़ि०) को शहीद कर दिया गया। हुज़ूर (सल्ल०) को सख़्त रंज हुआ और फ़रमाया कि मैं यहाँ से हिलूँगा नहीं, जब तक कि उसमान के ख़ून का बदला न ले लूँ। आपने एक पेड़ के नीचे सहाबा (रज़ि०) से जान लगा देने की वह बैअ्त ली जो 'बैअ्ते रिज़वान' के नाम से मशहूर है। सूरा फ़तह की आयतों के मुताबिक़ इस बैअ्त में शरीक होनेवालों को अल्लाह की रिज़ा हासिल हुई। क़ुरैश को इस बैअ्त की सूचना मिली तो दबाव में आ गए। आख़िर हज़रत उसमान (रज़ि०) वापस आ गए और ख़ुशी की लहर दौड़ गई।

ख़ुज़ाआ क़बीले के बुदैल बिन वरक़ाअ ने एक हितैषी के रूप में प्यारे नबी (सल्ल०) को क़ुरैश की भावनाओं और फ़ौजी तैयारियों का हाल बताया। जवाब में हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि हम लड़ने नहीं आए। हमारा इरादा सिर्फ़ उमरा करने का है।

फिर फ़रमाया कि क़ुरैश को लड़ाइयों ने बहुत कमज़ोर कर दिया है, क्यों न वे एक मुद्दत के लिए हमसे समझौता कर लें। इस मुद्दत में एक-दूसरे से छेड़-छाड़ न की जाए। क़ुरैश मेरे और बाक़ी अरब के मामले को छोड़ दें। बुदैल ने क़ुरैश से जाकर बातचीत की। कुछ दूसरे बड़ों की तरह उर्वा बिन मसऊद सक़फ़ी ने कहा कि मुहम्मद की ये बातें सही हैं। मैं ख़ुद जाकर मिलता हूँ।

अब उर्वा बिन मसऊद हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उससे भी वही बातें कीं। वह प्रभावित हुआ। साथ ही उसने सहाबा की ओर से हुज़ूर (सल्ल०) के प्रति सम्मान का वह दृश्य देखा कि हैरान रह गया। उसने क़ुरैश के लोगों को बताया कि—

> "ऐ क़ुरैश के सरदारो! मैं क़ैसर व किसरा और नज्जाशी के पास भी गया हूँ ..... पर ख़ुदा की क़सम! किसी बादशाह को नहीं देखा कि उसके साथी उसका ऐसा सम्मान करते हों, जैसा कि मुहम्मद (सल्ल०) का सम्मान उनके साथी करते हैं।"

फिर कहा, "ऐ क़ुरैश! मुहम्मद ने कोई ऐसी बेजा बात तुमसे नहीं की। वह जो कुछ कहते हैं, मान लो।"

फिर बनी कनाना का एक आदमी हुलैस गया। उसे दूर से देखकर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क़ुरबानी के जानवरों को खड़ा कर दो। यह व्यक्ति क़ुरबानी के जानवरों का आदर करता है।" हुलैस ने क़ुरबानी के ऊँटों की क़तार

खड़ी देखी, तो वहीं से वापस आकर कहा, "काबे के रब की क़सम ! ये लोग तो सिर्फ़ उमरा करने आए हैं। उन्हें बैतुल्लाह पहुँचने से नहीं रोका जा सकता।" कुरैश ने उसे गँवार और जंगली कहकर उसकी बात को टालना चाहा, उसे भी जोश आ गया। उसने कहा, "अगर तुमने मुहम्मद को बैतुल्लाह की ज़ियारत से रोका तो मैं अपने तमाम क़बीले को लेकर तुमसे अलग हो जाऊँगा।"

आख़िर में सुहैल बिन अम्र आए और थोड़ी देर की बातचीत के बाद समझौते की शर्तें तय हो गईं। अब हज़रत अली (रज़ि०) समझौते का लेख लिखने बैठे। प्यारे नबी (सल्ल०) ने 'बिसमिल्लाहिर्रमानिर्रहीम' लिखवाया तो सुहैल ने कहा कि हम रहमान व रहीम को नहीं जानते, इसलिए जो रायज़ तरीक़ा है, उसके मुताबिक़ लिखो। हज़रत अली (रज़ि०) ने 'बिस्मि-कल्लाहुम-म' लिखा। दूसरी लाइन में समझौते के दोनों फ़रीक़ के नाम लिखे गए तो हुज़ूर (सल्ल०) के लिए हज़रत अली (रज़ि०) ने लिखा, "मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'। सुहैल ने कहा कि अगर हम मुहम्मद को ख़ुदा का रसूल मानते तो फिर झगड़ा ही क्या था, यूँ न लिखा जाए। अब 'मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह' लिखने का फ़ैसला हुआ। हज़रत अली (रज़ि०) आदरवश इन शब्दों को न काट सके। प्यारे नबी (सल्ल०) ने ख़ुद तबदीली कर दी। शर्तें जो तय हुईं उनमें से अहम ये हैं—

1. दस साल तक दोनों फ़रीक़ आपस में लड़ेंगे नहीं।

2. मुहम्मद के साथियों में से जो हज या उमरे या तिजारत के लिए मक्का आए, उसको जान व माल की अमान होगी और कुरैश का जो आदमी तिजारत के लिए मिस्र या शाम जाते हुए मदीना से गुज़रे, उसे भी जान व माल की अमान होगी।

3. कुरैश का जो आदमी अपने वली (संरक्षक) के बग़ैर मुहम्मद के पास पहुँचेगा तो आप उसे वापस कर देंगे और मुहम्मद के साथियों में से जो आदमी कुरैश के पास आएगा, वह वापस नहीं करेंगे।

4. समझौतेवाली ज़िम्मेदारियों में कोई चाहे तो मुहम्मद के साथ हो और चाहे तो कुरैश के साथ।

5. इस साल मुहम्मद (सल्ल०) बग़ैर उमरा के चले जाएँगे, अलबत्ता अगले साल वह तीन दिन-रात के लिए मक्के में आ सकेंगे और उसके बाद शहर से बाहर चले जाएँगे।

अभी यह समझौता पूरा नहीं हुआ था कि सुहैल के बेटे अबू जुंदल (रज़ि०) क़ैद से निकलकर जंज़ीर में बँधे हुए आए। वह मुसलमान हो चुके थे और कुरैश की दी हुई सज़ाओं के शिकार थे। सुहैल ने उन्हें देखते ही कहा कि यह पहला

आदमी है जो समझौते के मुताबिक़ वापस होना चाहिए। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अभी तो लेख पूरा नहीं हुआ। सुहैल ने कहा कि इस तरह तो किसी बात पर क़तई तौर पर समझौता नहीं हो सकता। आख़िर दिल कड़ा करके हुज़ूर (सल्ल०) ने उस नौजवान को वापस कर दिया और अबू जुंदल (रज़ि०) को तसल्ली दी कि अल्लाह तुम्हारी निजात की कोई शक्ल निकालेगा।

अबू जुन्दल (रज़ि०) की वापसी की मुसलमानों पर बड़ी ज़बरदस्त प्रतिक्रिया हुई। हज़रत उमर ने हुज़ूर (सल्ल०) से बातें करते हुए पूछा कि क्या हम हक़ पर नहीं हैं? अगर हैं तो दुश्मनों के सामने ऐसी ज़िल्लत क्यों गवारा करें?

हुज़ूर (सल्ल०) ने ठंडे तरीक़े से जवाब दिया कि "मैं अल्लाह का सच्चा रसूल हूँ? उसके हुक्म के ख़िलाफ़ कुछ नहीं कर सकता?"

समझौता मुकम्मल होने के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) ने सहाबा (रज़ि०) को क़ुरबानी करने और सर मुंडाने का हुक्म दिया, पर साथी समझौते की ज़ाहिरी बातों से इतने हतोत्साह थे कि कोई भी न हिला-डुला। इस मौक़े पर हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) ने मशविरा दिया कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! यह समझौता मुसलमानों के लिए असह्य हो रहा है। आप इनसे कुछ न कहें, ख़ुद क़ुरबानी करके अपने बाल उतरवाएँ, साथी अपने आप आपकी पैरवी करेंगे।

और बिलकुल ऐसा ही हुआ।

दो सप्ताह रुकने के बाद हुदैबिया से प्यारे नबी (सल्ल०) और आप के 1400 साथी वापस चल पड़े। रास्ते में सूरा फ़तह उतरी। हुज़ूर (सल्ल०) ने साथियों को जमा करके ख़ुदा का कलाम सुनाया कि यह खुली विजय है, तो ताज्जुब से कई लोगों ने पूछा—

"ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! क्या यह विजय है?"

आप ने जवाब दिया, "क़सम है उस पाक ज़ात की, जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, बेशक यह शानदार विजय है।"

बाद की घटनाओं ने बता दिया कि इस्लाम के प्रचार के लिहाज़ से, क़ुरैश से अमन में रहकर दुश्मनों का सर कुचलने के लिहाज़ से और मक्का विजय का कारण जुटाने के लिहाज़ से वाक़ई यह खुली विजय थी।

बाद में हज़रत उमर (रज़ि०) को सारी उम्र प्यारे नबी (सल्ल०) से अशिष्ट ढंग से बात करने पर शर्मिंदगी रही और रोज़े रख-रखकर उसका कफ़्फ़ारा अदा करने में लगे रहे।

# अन्तर्राष्ट्रीय दावत की शुरुआत

पहली मुहर्रम 07 हि०, गुरुवार का दिन है। प्यारे नबी (सल्ल०) के तमाम साथी मस्जिद में जमा हैं। आपने उन्हें संबोधित कर जो कुछ फ़रमाया उसका सार यह है—

"ऐ लोगो ! मुझको ख़ुदा ने पूरी दुनिया के लिए रहमत का पैग़म्बर बनाकर भेजा है। देखो, हज़रत ईसा के साथियों की तरह मतभेद न करना। जाओ और मेरी ओर से हक़ के सन्देश को फ़ैलाने का कर्त्तव्य पूरा करो।"

यह भाषण असल में प्रस्तावना थी मदीने में अन्तर्राष्ट्रीय दावत की नई मुहिम की। सत्य-धर्म के इस क्रान्तिकारी आन्दोलन को अब तक स्थानीय संघर्षों ने मानव-जाति के विशाल-क्षेत्र में काम करने का मौक़ा ही न दिया था। इस स्थिति से हर दावत, जमाअत और आन्दोलन को गुज़रना पड़ता है। पहले वह स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर काम करता है। इस मरहले से अगर वह कामयाब निकले तो काम को आगे बढ़ाया जाता है।

हुदैबिया समझौते ने क़ुरैश के हमलों से जब प्यारे नबी (सल्ल०) को मुक्ति दिला दी, तो आपने पूरी दुनिया के लिए लाए अपने रहमत के पैग़ाम को देश से बाहर पहुँचाने की मुहिम शुरू कर दी। इस काम की शुरुआत 'पत्र-लेखन' से हुई जो अलग-अलग बादशाहों और सरदारों को लिखे गए।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने साथियों के मशविरे से पत्रों पर लगाने के लिए एक मुहर तैयार कराई, जिसके नग पर 'मुहम्मद रसूलुल्लाह' खुदा हुआ था।

ख़ुदापरस्ती की बुनियादों पर स्थापित होनेवाले क्रान्तिपूर्ण राज्य के संस्थापक और सत्य के आवाहक होने की हैसियत से प्यारे नबी (सल्ल०) ने क़ैसरे रूम, शहंशाहे अजम, अज़ीज़े मिस्र और अरब के सरदारों के नाम पत्र भेजे, जिन्हें आपके नियुक्त साथी लेकर रवाना हुए। हिरक़्ल कैसरे रूम को जो पत्र भेजा गया उसका अहम हिस्सा यह था—

"अल्लाह के नाम से जो बेइंतिहा मेहरबान और बड़ा रहम फ़रमानेवाला है। यह पत्र मुहम्मद की ओर से जो ख़ुदा का बन्दा और रसूल है, हिरक़्ल के नाम है जो रूम का बादशाह है। सलामती हो उसके लिए जो हिदायत की राह अपनाए। इस तमहीद के बाद मैं तुमको इस्लाम की ओर बुलाता हूँ। इस्लाम ग्रहण कर लो, तो तुम सलामत रहोगे, और ख़ुदा तुम्हें दो गुना अज्र (बदला) देगा। और अगर तुमने यह दावत न

मानी तो तमाम देशवालों का गुनाह तुम्हारे सर होगा।. . ."

यह पत्र जब बैतुलमक़्दिस में क़ैसरे रूम को मिला तो उसने हुक्म दिया कि अरब का कोई आदमी इधर आया हुआ हो तो उसे पेश किया जाए। संयोग की बात कि अबू सुफ़ियान कारोबार के लिए उधर गया हुआ था। उसे उसके साथियों सहित दरबार में पेश किया और क़ैसर ने उससे कुछ प्रश्न पूछे। अबू सुफ़ियान को साथियों के सामने होने की वजह से झूठ बोलने की हिम्मत न हुई। उसने रसूल (सल्ल०) के एक विरोधी की हैसियत से जो जवाब दिए उनसे हिरक़्ल बहुत सन्तुष्ट हुआ और बड़े अच्छे उद्गार व्यक्त किए। आख़िर में यह कहा कि जो व्यक्ति आदमियों से झूठ नहीं बोलता, वह ख़ुदा पर भी झूठ नहीं बाँध सकता, और यह पैग़म्बर ही की शान है कि वह नमाज़, ईश-भय और क्षमा करने की हिदायत करता है। फिर कहा कि हाँ, वह ज़रूर 'नबी' है। हमें पहले से इन्तिज़ार था कि एक नबी ज़ाहिर होनेवाला है, पर यह मालूम न था कि वह तुम लोगों में से उठेगा। काश, मैं उनका दर्शन कर सकता! पास होता तो उनकी पैरवी करनेवाला होता। एक दिन उनका शासन इस जगह तक पहुँचेगा, जहाँ इस वक़्त मेरा क़दम है। हुज़ूर (सल्ल०) का इतिहास लिखनेवालों की रिवायतों के मुताबिक़ उसने हुज़ूर (सल्ल०) को लिखा कि "मैं तो मुसलमान हूँ।" इस वाक्य पर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "झूठ कहता है, वह तो अपनी ईसाइयत पर है।"

ईरान के शहंशाह ख़ुसरो परवेज़ को जब हुज़ूर (सल्ल०) की ओर से इस्लाम की दावत का पत्र पहुँचा, तो ग़ुस्से में आकर उसने पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और कहा कि "मेरा ग़ुलाम होकर मुझको यूँ लिखता है।" ख़ुदा का चाहना ऐसा हुआ कि थोड़ी ही मुद्दत में ख़ुद अजमी राज्य के पुर्ज़े उड़ गए।

रिवायत यह भी है कि ख़ुसरो ने यमन के गवर्नर बाज़ान को लिखा कि नबी होने के इस दावेदार को गिरफ़्तार करके मेरे दरबार में भेज दो। बाज़ान ने दो व्यक्तियों की यह ड्यूटी लगाई। वे प्यारे नबी (सल्ल०) के पास आकर कहने लगे कि इस हुक्म को अगर माना न गया तो ख़ुसरो आपके देश को बरबाद कर देगा। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वापस जाकर कह दो कि इस्लाम की हुकूमत किसरा की राजधानी तक पहुँचेगी।" दूसरी रिवायत के मुताबिक़ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनसे कहा कि वापस वहाँ जाकर देखो कि ख़ुसरो अपने बेटे के हाथों क़त्ल हो चुका है। ये बातें जब यमन के हाकिम बाज़ान को मालूम हुईं और हुज़ूर (सल्ल०) की तालीम, दावत और आपके चरित्र व आचरण का नक़्शा सामने आया, तो वह ख़ुद भी मुसलमान हो गया और उसके दरबारी और देश की जनता की एक भारी तादाद भी मुसलमान हो गई।

यह इस्लाम की अन्तर्राष्ट्रीय दावत की पहली बड़ी कामयाबी थी।

मिस्र के बादशाह मक़ूक़स ने पत्र को पढ़कर बड़े अच्छे विचार व्यक्त किए। और पत्र को बड़े आदर के साथ हाथी दाँत की एक डिबिया में सुरक्षित रख दिया। जवाब में सादर व ससम्मान पत्र लिखा। दो अच्छी लौंडियाँ, सवारी का एक ख़च्चर और कुछ अन्य वस्तुएँ भेंट में भेजीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के दूत हज़रत हातिब (रज़ि०) को पूरा लिबास और सौ मिस्क़ाल सोना दिया।

हब्शा के हुक्मराँ शाह नज्जाशी ने पत्र के जवाब में अपने इस्लाम ग्रहण करने और हुज़ूर (सल्ल०) की रिसालत पर ईमान लाने का ज़िक्र किया है।

हौज़ा बिन अली, यमामा के सरदार ने बड़े आदर और सम्मान के साथ पत्र को सुना और जवाब भी अच्छा दिया, पर पैरवी करने की शर्त यह रखी कि अधिकारों में से मुझे भी हिस्सा दीजिए। प्यारे नबी (सल्ल०) ने इस शर्त को नापसंद फ़रमाया। हौज़ा का जल्द ही देहान्त हो गया।

एक पत्र हारिस बिन शिम्र ग़स्तानी, शाम की सीमाओं के सरदार को भेजा गया। पहले तो यह पत्र सुनकर बहुत बिगड़ा। बाद में दूत को ससम्मान विदा किया।

दावत पहुँचाने की इस लेखन-शैली से प्यारे नबी (सल्ल०) का परिचय आस-पास के बड़े और छोटे दरबारों में हो गया। आपकी दावत और तालीम और आपके नुबुव्वत-पद की चर्चा विभिन्न क्षेत्रों में होने लगी। बाह्य क्षेत्रों के कुछ अहम व्यक्ति और बहुत-से दूसरे आप पर ईमान लाए। कुछ ने अच्छे विचार अपने सीनों में सुरक्षित रखे और सोच में पड़ गए। कुछ ने विरोधी रवैया अपनाया, पर यह भी हुज़ूर (सल्ल०) के परिचय को आम करने का ज़रिया बना। साथ ही साथ आस-पास की सरकारों को यह महसूस करा दिया गया कि अब एक नई अनुशासन-बद्ध राज्य अरब की उस धरती पर मौजूद है, जहाँ पहले क़बीले आपस में ही लड़ रहे थे।

संक्षेप यह कि कुछ ही दिनों में प्यारे नबी (सल्ल०) की सुख-शान्ति की दावत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दाख़िल हो गई।

# ख़ैबर की लड़ाई

अब अन्तर्राष्ट्रीयता से अन्तरंग की ओर!

प्यारे नबी (सल्ल०) ज़िलहिज्जा में हुदैबिया से वापस तशरीफ़ लाए। कुछ दिन मदीने ही में गुज़ारे। मुहर्रम के शुरू में ख़ैबर की ओर रवाना हो गए।

थोड़ी देर के लिए यह बात ज़ेहन में ताज़ा कर लीजिए कि यहूदी प्यारे नबी (सल्ल०), मुसलमान और इस्लामी राज्य के ख़िलाफ़ बराबर द्रोहपूर्ण कार्रवाइयों के दोषी ही रहे थे।

मदीना समझौते से बराबर ख़िलाफ़वर्ज़ी, मुसलमानों के दुश्मनों से बराबर सांठ-गांठ, मुसलमानों में फूट डालने की कोशिश, पैग़म्बरे ख़ुदा के ख़िलाफ़ घिनौनी बातें, प्यारे नबी (सल्ल०) की महिफ़लों में जासूस भेजकर हर रात उनकी रिपोर्टों पर विचार कर साज़िशें तैयार करना, न्याय-व्यवस्था में रुकावटें डालना, मुनाफ़िक़ गिरोहों की सरपरस्ती, लड़ाई के मौक़ों पर ज़िम्मेदारियों से मुँह फेर लेना, मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने की कोशिशें, प्यारे नबी (सल्ल०) के घर की फ़िज़ा को ख़राब करने के लिए कुछ औरतों के ज़रिए फ़ित्ना पैदा करना—ये सारी घटनाएँ बड़ा विस्तार चाहती हैं। इनको अलग रखकर अगर सिर्फ़ क़त्ल के षड्यंत्रों और कार्रवाइयों को देखा जाए, जो प्यारे नबी (सल्ल०) की जान लेने के लिए की गई, तो हर कोई अन्दाज़ा कर सकता है कि यहूदी ताक़त के हाथों पैग़म्बरे इस्लाम, इस्लामी आन्दोलन और इस्लामी राज्य के सामने कितना बड़ा ख़तरा था। आख़िर एक दिन प्यारे नबी (सल्ल०) 1400 पैदल और 200 सवारों के साथ ख़ैबर के रास्ते पर चल पड़े। मदीने में सबाअ बिन अर्फ़ता ग़िफ़ारी को कार्यकारी नियुक्त किया गया। इस्लामी झण्डा हज़रत अली बिन अबी तालिब (रज़ि०) के मुबारक हाथों में था। उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) और कुछ दूसरी औरतें भी फ़ौज के साथ गईं। आगे की टुकड़ी के सरदार उकाशा बिन महसन और दाहिने हाथ की टुकड़ी के सरदार हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) थे।

मुजाहिदों की यह फ़ौज रजीअ नामी जगह पर जा उतरी। यह जगह बनू ग़तफ़ान और ख़ैबरवालों के बीच में थी। पहले तो मुस्लिम फ़ौज के आने का हाल सुनकर बनू ग़तफ़ान ख़ैबरवालों की मदद के लिए निकले, मगर फिर ख़याल आया कि हमारे अपने घर ख़ाली होंगे, सो बेचारे लौट गए।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने सेना के लिए तय किया कि पड़ाव उसी जगह रहेगा और अलग-अलग टुकड़ियाँ जाकर पड़ोस में कार्रवाई करेंगी। हज़रत उसमान

ग़नी (रज़ि०) को उस केन्द्रीय कैम्प का कमाण्डर नियुक्त किया गया। औरतों और खाने-पीने के सामान को यहाँ रखा गया।

पहला हमला हज़रत महमूद बिन मुस्लिमा (रज़ि०) ने नाईम क़िले पर किया, पर क़िला के जीते जाने से पहले एक दिन महमूद बिन मुस्लिमा (रज़ि०) क़िले की दीवार के साए में सुस्ताने के लिए जा लेटे, ऊपर से यहूदियों ने चक्की का पाट गिराकर आपको शहीद कर दिया। फिर उनके बड़े भाई मुहम्मद बिन मुस्लिमा (रज़ि०) ने मुजाहिदों का नेतृत्व किया और क़िले जीत लिए। इस बीच साब क़िला भी क़बज़े में आ गया, जिसका घेराव हज़रत ख़ब्बाब बिन मुंज़िर (रज़ि०) किए हुए थे। इस क़िले से मुसलमानों को बहुत-सा हथियार और खाने-पीने का सामान मिला। नुतात का क़िला, जिसका एक हिस्सा ज़ुबैर का क़िला भी था, उसका जीतना आसान न था, मगर एक यहूदी ख़ुद ही इस्लामी फ़ौज में आया और उसने बताया कि क़िले के भीतर जिस भूमिगत नाले से पानी जाता है, उसे बन्द करने से क़िला बहुत जल्द जीत लिया जा सकेगा। यही हुआ। पानी बन्द होते ही यहूदी क़िले से बाहर आ गए। इसी तरह शन का क़िला और बर्र का क़िला भी जीत लिया गया। क़मूस क़िले के जीतने में कुछ कठिनाई ज़रूर हुई। 20 दिनों के घेराव का कुछ नतीजा न निकला, तब रसूल (सल्ल०) ने मज्मे में फ़रमाया कि कल हम इस क़िले की फ़ौज का झंडा उस आदमी को देंगे, जिससे अल्लाह और उसका नबी (सल्ल०) ख़ास मुहब्बत करते हैं। यह झण्डा हज़रत आइशा (रज़ि०) की चादर से बनाया गया था। अगली सुबह को हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को पुकारकर झण्डा दिया और फ़रमाया, "जाओ, और अल्लाह की राह में जिहाद करो, पहले इस्लाम की दावत दो, फिर लड़ो।" और इस्लामी राज्य की बुनियादी पालिसी का यह आंम क़ायदा बयान फ़रमाया, "तुम्हारे ज़रिए एक व्यक्ति का इस्लाम लाना, अनगिनत माल व दौलत से बेहतर है।" यह वाक्य गवाह है इस्लामी राज्य को यह कभी अभीष्ट न रहा कि उसे माल मिले, विजय मिले, राज्य में विस्तार हो; बल्कि अभीष्ट इनसान था, उसका सुधार था, उसकी लोक-परलोक दोनों की सफलता थी।

अब हम सरसरी तौर पर प्यारे नबी (सल्ल०) के ख़िलाफ़ यहूदियों की ओर से हत्या की नाकाम कोशिशों का जायज़ा लेते हैं।

सन् 04 हि० में प्यारे नबी (सल्ल०) बनू नज़ीर के यहाँ तशरीफ़ ले गए। वहाँ छत से चक्की का पाट गिराने की स्कीम बनाई गई। काब बिन अशरफ़ ने भी कुछ आदमियों को लगा रखा था कि हुज़ूर (सल्ल०) जब इधर आएँ तो काम तमाम कर दो। बनू क़ुरैज़ा से समझौते के ज़माने में बनू नज़ीर ने मामला तय

करने के लिए आपको बुलवाया और दूसरी ओर तलवारों से सुसज्जित यहूदियों को तैयार कर दिया कि वे पैग़म्बर को क़त्ल कर दें। कुछ वाक़िए तनिक बाद के दौर से मुताल्लिक़ हैं। वह तो अल्लाह ने ख़ास हिफ़ाज़त की, जैसाकि क़ुरआन में है—

"अल्लाह आपकी लोगों से हिफ़ाज़त कर रहा है" (5 : 62)।

चुनांचे प्यारे नबी (सल्ल०) पर दुश्मनों का कोई वार कारगर न हुआ, वरना उन्होंने कोई कसर न छोड़ी थी।

प्यारे नबी (सल्ल०) जब हुदैबिया से वापस आए तो वहाँ के हालात सुनकर यहूदियों ने यही समझा कि परास्त होकर आए हैं। फिर ख़ैबर के यहूदी इरादा करने लगे कि इस वक़्त मुसलमान कमज़ोर हालत में हैं, क्यों न उनपर हमला कर दिया जाए। ख़ैबर उनका मज़बूत गढ़ था, भूमि उपजाऊ थी, आर्थिक स्थिति अच्छी थी और तमाम बस्तियों की अपनी-अपनी क़िलाबन्दियों का एक सिलसिला था। ख़ैबरवालों ने बनी ग़त्फ़ान के चार हज़ार नौजवानों को इस शर्त पर मदीने पर हमला करने के लिए तैयार कर लिया कि मदीना विजय के बाद ख़ैबर भूमि की आधी पैदावार उनको देंगे।

इधर प्यारे रसूल (सल्ल०) ख़ैबरवालों की इन तैयारियों की बराबर जानकारी रख रहे थे। अब बजाए इससे कि आप यहूदियों के हमले का इन्तिज़ार करते, ख़ुद आगे बढ़कर उनका सिर कुचल देना मुनासिब समझा। मदीने की रक्षा के लिए ख़ैबर की ओर सैनिक कार्रवाई करना ज़रूरी था।

मुसलमानों के हक़ में इस पहले ही मौक़े पर हुदैबिया समझौते की एक बरकत सामने आई। यानी अब क़ुरैश इस तरह बंध गए थे कि यहूदी उनसे कोई मदद हासिल करने की उम्मीद नहीं कर सकते थे और मुसलमान एक बड़ी दुश्मन ताक़त की ओर से बिलकुल निश्चिन्त थे।

मदीने से मुस्लिम सेना जब कूच करने लगी तो हाई कमान ने हिदायत जारी की कि जो लोग हुदैबिया के सफ़र में शरीक नहीं हुए थे, वे ख़ैबर की मुहिम में भी शरीक न हों। अभीष्ट यह था कि ख़तरों से भागने और बहाने बनानेवाले मुनाफ़िक़ों को साथ न लिया जाए। यह फ़ौज सिर्फ़ उन्हीं लोगों की बनी जो रिज़वान की बैअत में शरीक हुए थे। ये वह हस्तियाँ थीं जिनके लिए क़ुरआन ने फ़रमाया—

"ख़ुदा ईमानवालों से राज़ी हुआ, जबकि वह पेड़ के नीचे तुम्हारे हाथ पर बैअत कर रहे थे।" (अल-फ़त्ह : 18)

यह सौभाग्य हज़रत अली (रज़ि०) को प्राप्त हुआ कि क़मूस क़िला, जिसका

सरदार मरहब था, ख़ुदा की ताईद हासिल होने से मुसलमानों के क़बज़े में हुआ। इसी तरह अल-कैतीबा, वल-वतीह और अस्सलालम नामी क़िले, जिनमें यहूदियों की आख़िरी ताक़त सिमट गई थी, एक-एक करके जीत लिए गए। अब यहूदियों ने हथियार डाल दिए और समझौते की दरख़्वास्त की, जिसे अम्न व सलामती के पैग़म्बर (सल्ल०) ने खुलेमन से क़बूल किया।

याद रहे कि इस मौक़े पर यहूदी सरदार मरहब की बहन ने हुज़ूर (सल्ल०) और आपके सहाबा की दावत की और खाने में ज़हर मिला दिया। प्यारे नबी (सल्ल०) ने एक लुक़मा लेते ही खाने से हाथ रोक लिया। सहाबा ने भी यही किया। सिर्फ़ एक हज़रत बिश्र बिन बरा पर ज़हर का असर हुआ और उनका देहान्त हो गया। प्यारे नबी (सल्ल०) के उच्च आचरण का कमाल देखिए कि सारा मामला साबित हो जाने के बावजूद ज़हर खिलाने की मुजरिम औरत से कोई बदला नहीं लिया।

ख़ैबर की लड़ाई में 18 मुसलमान शहीद और 50 घायल हुए। दुश्मन के मरनेवालों की तादाद 93 थी। यहूदी बाज़ी हार गए तो उनको प्रजा की हैसियत दी गई और उनकी ज़मीनों और बाग़ो पर मदीना सरकार का हक़ क़ायम कर दिया गया और पैदावार के आधे पर मामला तय हुआ।

कुछ यहूदी इस मौक़े पर इस्लाम लाए। इनमें से एक हब्शी चरवाहा अस्वद दराइ था। उसने यहूदियों से पूछा कि लड़ाई आख़िर किस बात पर है? उन्होंने प्यारे (सल्ल०) के नुबुव्वत के दावे का ज़िक्र किया। फिर वह हुज़ूर (सल्ल०) से आकर मिला और आपसे पूछा कि आपकी दावत क्या है? आपने इस्लाम की तौहीद की दावत पेश की, वह तुरन्त मुसलमान हो गया। इसी मौक़े पर हज़रत जाफ़र बिन अबी तालिब कई साथियों सहित हब्शे से यहाँ आ पहुँचे।

ख़ैबर के बाद यहूदियों का दूसरा एक गढ़ वादिए क़ुरा में था। उसे भी कुछ दिनों में मुस्लिम ताक़त ने जीत लिया और उनसे भी वही शर्तें तय पाईं जो ख़ैबरवालों के लिए थी।

इसके बाद बनू ग़त्फ़ान, बनू मुहारिब, बनू सालबा और बनू अनमार के बारे में पता चला कि हमले के लिए तैयार हो रहे हैं, प्यारे नबी (सल्ल०) 400 की फ़ौज लेकर निकले। दुश्मन भाग निकले। यह मुहिम ज़ातुर्रिक़ाअ की लड़ाई कहलाती है।

हुदैबिया समझौते के तहत क़ुरैश के लिए व्यापार का शामी राजमार्ग खुल गया। मगर अबू जुन्दल क़ुरैश की क़ैद से निकलकर आए और समझौते की वजह से मदीने में ठहरने का मौक़ा न पाकर तट से मिली हुई एक पहाड़ी पर ज

ठहरे। उन्होंने क़ुरैश के एक क़ाफ़िले पर हमला करके माल छीन लिया, बाद में हुज़ूर (सल्ल०) की सिफ़ारिश से वापस किया। उनके साथ और नौजवान भी भाग-भागकर जमा होने लगे। अब क़ुरैश पछताए कि जिस शर्त को उन्होंने अपने लिए फ़ायदेमंद समझा था, वही परेशान करने लगी। यूँ मुसलमानों के हक़ में हुदैबिया समझौते का एक और फ़ायदेमंद पहलू सामने आया।

# उमरा के लिए रवानगी

06 हि० के हुदैबिया समझौते में शर्त तय हुई थी कि अगले साल प्यारे नबी (सल्ल०) और आप के साथी मक्का आकर उमरा अदा करेंगे और तीन दिन ठहरने के बाद वापस चले जाएँगे।

समझौते के एक साल बाद ज़ीक़ादा सन् 09 हि० को प्यारे नबी (सल्ल०) उमरा के लिए रवाना हुए। आपने एलान किया कि उन व्यक्तियों में से कोई रह न जाए जो हुदैबिया समझौते में शरीक थे; सिवाए उन कुछ लोगों के जिनका इस बीच देहान्त हो चुका था, शेष तमाम लोग प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ चल पड़े। साठ या अस्सी जानवर क़ुरबानी के लिए साथ ले जाए गए।

समझौते की एक शर्त यह भी थी कि मुसलमान मक्का में हथियार लेकर दाख़िल न हों। इसे ध्यान में रखते हुए हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी लड़ाई के हथियार मक्के से आठ मील दूर बत्ने याजज में दो सौ सवारों की निगरानी में छोड़ दिए, फिर प्यारे नबी (सल्ल०) के नेतृत्व में हरम की ज़ियारत के लिए सफ़र करनेवाला क़ाफ़िला मक्के की ओर चल पड़ा। हज़रत अब्दुल्लाह बिन रुवाहा (रज़ि०) ऊँट की नकेल पकड़े आगे-आगे थे और ये पद पढ़ते जा रहे थे—

> "उस हस्ती का नाम लेकर हम दाख़िल होते हैं जिसके दीन के अलावा कोई दीन नहीं, उसके नाम के साथ जिसके रसूल मुहम्मद हैं। ऐ दुश्मनो ! रास्ते से हट जाओ। हमें ख़ुदा ने अपनी उतारी किताब में यह शिक्षा दी कि बेहतरीन लड़ाई वह है जो अल्लाह के रास्ते में लड़ी जाए। ऐ ख़ुदा ! मैं तेरी किताब के फ़रमान पर ईमान रखता हूँ।"

इन पदों से यह बात भी स्पष्ट हो रही थी कि मुसलमान, जिनके ज़ेहनों में पिछले साल की पूरी घटनाएँ थीं, बड़े जोश में थे। मक्के में मशहूर हो गया था कि मदीने की जलवायु ने मुसलमानों को कमज़ोर कर दिया है। इस असर को मिटाने के लिए प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपने साथियों को हुक्म दिया कि वे तवाफ़ से पहले तीन फेरों में अकड़कर चलें। रमला में यह चाल आज तक सुन्नत के तौर पर क़ायम है।

मक्का के सरदारों में यह ताब ही न थी कि वे इस दृश्य को देख सकें कि प्यारे नबी (सल्ल०) अपने साथियों के साथ मक्का में दाख़िल होकर उमरा करें। ये लोग शहर छोड़कर पहाड़ों पर चले गए। तीन दिन गुज़रने पर क़ुरैश ने दो दूतों के ज़रिए प्यारे नबी (सल्ल०) तक यह पैग़ाम पहुँचाया कि अब मुसलमानों को मक्के से चला जाना चाहिए। पैग़ाम मिलते ही प्यारे नबी (सल्ल०) ने रवानगी का एलान किया और मक्के को ख़ाली कर दिया।

विचार कीजिए कि दूरदर्शिता से भरपूर वादे की बुनियाद पर प्यारे नबी (सल्ल०) ने एक ही साल बाद यह जगह पैदाकर ली कि मक्के में तीन दिन तक आज़ादी से अपने साथियों सहित चल-फिर रहे हैं और क़ुरैश बेबसी से यह दृश्य देख रहे हैं।

इस घटना के कुछ अहम पहलुओं पर नज़र रहनी चाहिए—

एक यह कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने मक्के में दाख़िले के वक़्त समूह को हुक्म दिया कि ख़ूब मोंढे खोलकर सीने तानकर चलो और फैल-फैलकर तवाफ़ करो।

इस हुक्म में एक मस्लहत तो सैनिक क़िस्म की हो सकती है कि सैनिकों को दुश्मन के सामने जाते हुए किस शक्ल में जाना चाहिए। दूसरा मक़सद यह था कि इस प्रोपगंडे का खण्डन हो जाए कि मुसलमान कमज़ोर हो गए हैं। इससे यह शिक्षा मिलती है कि दुश्मन के सामने कभी अपनी कमज़ोरी ज़ाहिर नहीं होनी देनी चाहिए, बल्कि शक्ति का प्रदर्शन करना चाहिए। ऐसे मौक़ों पर अकड़ना और ज़ोर दिखाना सब कुछ नेकी है और इसके ख़िलाफ़ विनम्रता दिखाना नेकी नहीं है।

दूसरे यह कि उस वक़्त के दृश्य को निगाहों में लाइए कि मुसलमान तो बीच शहर में तवाफ़ कर रहे होंगे और शहर के आम लोग औरतें और बच्चे चारों ओर की ऊँचाइयों से इस दृश्य को देख रहे होंगे। साथ ही इतिहास का पिछला काला पन्ना भी उनके सामने होगा कि यही वह ताक़त थी जिसे कुचलने के लिए इसी हरम में और इसी मक्के की गलियों में हर ज़ुल्म ढाया गया था और आज यह चमचमाता पन्ना भी दिखाई दे रहा होगा कि कल जो ताक़त यहाँ कुचली जा रही थी, वह अब इतनी मज़बूत होकर मक्के में आई है कि कोई उसे दाख़िले से रोक नहीं सकता, कोई उससे छेड़खानी नहीं कर सकता।

तीसरे यह कि इतनी बड़ी तादाद दुश्मनों के शहर में आकर तीन दिन तक रही, मगर न कोई लूट-मार हुई, न कोई मकान ढाया गया, न कोई सामान उठाया गया, न किसी महिला को छेड़ा गया, और न ही किसी मर्द पर हाथ उठाया गया। यह वह ख़ूबी थी जिसकी मिसाल पिछले अज्ञानतापूर्ण युग की कोई ताक़त भी पेश न कर सकी होगी, और आज के नए अज्ञानतापूर्ण युग ने भी कब ऐसी कोई मिसाल हमारे सामने रखी है।

चौथे यह कि जब इस पूरी घटना की मक्के के आस-पास के क्षेत्रों और पूरे अरब में चर्चा हुई होगी तो कितनी अहमियत बढ़ गई होगी लोगों की निगाह में मुस्लिम जमाअत की, और कितनी क़ीमत कम हो गई होगी मक्का के क़ुरैश की। बहुत-से लोगों ने साफ़ तौर पर समझ लिया होगा कि भविष्य की शक्ति मुस्लिम शक्ति है।

# और मक्का पर विजय मिल गई

हुदैबिया समझौते ने जो माहौल पैदा कर दिया था उसका पूरा फ़ायदा उठा कर प्यारे नबी (सल्ल०) ने एक ओर मदीने के केन्द्र को फ़सादियों में फ़साद से पाक कर दिया और दूसरी ओर उत्तर में यहूदी शक्ति के जो केन्द्र साज़िशों के गढ़ बने हुए थे उनका ज़ोर तोड़ दिया। तीसरी ओर क़बीलों के छोटे-छोटे फ़ित्नों और आतंकवादी कार्रवाइयों का, इतना समय रहते, इतनी मुस्तैदी से नोटिस लिया कि इस्लामी राज्य की पकड़ दूर-दूर तक मज़बूत हो गई, जंगे ख़ंदक़ (ख़ाई की लड़ाई) के बाद धीरे-धीरे इस्लामी स्टेट की धाक बैठ गई। हर तरफ़ महसूस होने लगा कि सच्चाई और इनसाफ़ की यह नई ताक़त जो उभर रही है, यह कोई ऐसी धूप-धप्पा नहीं है जो हवा के झोंके के साथ ग़ायब हो जाए।

अब मदीने के इस्लामी आन्दोलन के सामने सबसे बड़ा सामरिक मरहला यही रह गया था कि दुश्मन की शक्ति के असल केन्द्र को ख़त्म किया जाए, वरना लड़ाइयों का सिलसिला कहीं रुक न सकेगा। कुरैश की बदबख़्ती कि उन्होंने ख़ुद ही इसकी वजह पैदा कर दी।

पृष्ठभूमि यह थी कि मक्के के आस-पास के दो बड़े क़बीले बनू बक्र और बनू ख़ुज़ाआ के दरमियान एक लम्बे समय से झगड़ा चला आ रहा था। वक़्ती तौर पर यूँ हुआ कि इस्लाम जब एक चुनौती बनकर उभरा तो कुरैश ने अपना मोर्चा तैयार करते हुए बनू बक्र और बनू ख़ुज़ाआ दोनों को साथ लिया। उनकी आपसी दुश्मनी अस्थाई रूप से दब गई। पर जब हुदैबिया समझौता सम्पन्न हो गया और दस वर्ष के लिए मक्के और मदीने के बीच लड़ाई की फ़िज़ा ख़त्म कर दी गई तो बनू बक्र और बनू ख़ुज़ाआ ने अपने आपको उसी जगह पाया जहाँ वे नस्लों से चले आ रहे थे, समझौते की एक शर्त के मुताबिक़ बनू बक्र ने कुरैश से मैत्री का ताल्लुक़ जोड़ा और बनू ख़ुज़ाआ ने उनके ख़िलाफ़ प्यारे नबी (सल्ल०) और आपकी हुकूमत से वफ़ादारी का रिश्ता क़ायम कर लिया। कुछ दिनों तक तो लोग चुप रहे, फ़िर ऐसा हुआ कि बनू बक्र ने बनू ख़ुज़ाआ पर भरपूर हमला किया। जिन लोगों ने हरम में जाकर पनाह ली, उनको भी न बख़्शा और सितम यह कि कुरैश ने बनू बक्र की मदद की। बनू ख़ुज़ाआ की ओर से अम्र बिन सालिम ने हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में जाकर फ़रियाद की। प्यारे नबी (सल्ल०) ने दूत के माध्यम से कुरैश से सामने तीन शक्लें रखीं—

1. बनू ख़ुज़ाआ के क़त्ल किए गए लोगों का ख़ूनबहा अदा करो।
2. बनू बक्र की हिमायत से अलग हो जाओ, और

3. हुदैबिया समझौते की समाप्ति का एलान करो।

क़ुरैश ने सन्तुलन खो ही दिया था, दूत के माध्यम से कहला भेजा कि सिर्फ़ ।सरी शर्त मंज़ूर है। बाद में सोचा तो पछताए।

क़ुरैश के सरदारों में दूत भेज देने के बाद चिन्ता फैल गई, क्योंकि सैनिक ाक्ति नष्ट हो चुकी थी और अर्थव्यवस्था भी चरमरा गई थी, उनके हिमायती हूदी कुचले जा चुके थे, मदीना की हुकूमत मज़बूत हो चुकी थी और दूर-दूर तक सकी पकड़ सुदृढ़ थी। अब तो क़ुरैश का जो कुछ भी बचाव था, हुदैबिया मझौते ही से संभव था। यह रोक भी ख़ुद ही हटा दी। अब मानो मदीने को ावत दी गई थी कि आओ और हमपर हमला करो।

आख़िर मक्के का सबसे बड़ा लीडर अबू सुफ़ियान इस ग़रज़ से मदीना वाना हुआ कि समझौते का नवीनीकरण कराएँ। पहले वह अपनी बेटी उम्मुल ोमिनीन हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०) के घर गया। बिस्तर पर बैठने लगा तो बेटी लपककर बिस्तर लपेट दिया कि यह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का बिस्तर है ौर तुम मुशरिक होकर उसपर नहीं बैठ सकते। फिर उसने हज़रत अबू बक्र सद्दीक़ (रज़ि०), हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) से ुलाक़ातें कीं; हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के दरवाज़े पर भी पहुँचा। कहीं बात न बनी। ाख़िर एक शक्ल समझ में आई और उसपर हज़रत अली (रज़ि०) से मशविरा कया और फिर यकतरफ़ा तौर पर एलान कर दिया कि हुदैबिया समझौते की ज़म्मेदारी क़ायम है। वापस मक्के पहुँचकर यह दास्तान सुनाई तो लोगों ने कहा क हज़रत अली (रज़ि०) ने तुम्हारे साथ मज़ाक़ किया है।

उधर मानवता के सच्चे उद्धारक प्यारे नबी (सल्ल०) का इशारा हुआ कि हक़ र अपनी जानें निछावर करनेवाले तैयारी करें यह किसी को न बताया कि किधर ा प्रोग्राम है। यहाँ तक कि हज़रत आइशा (रज़ि०) को भी न मालूम हो सका। ाद में कुछ लोगों को अन्दाज़ा हो गया तो हज़रत हातिब बिन अबी बलता ने क्के में बसे बाल-बच्चों को बचाने के लिए क़ुरैश को एक ख़त में मदीने की यारियों का हाल लिख दिया। प्यारे नबी (सल्ल०) को अल्लाह ने इससे आगाह र दिया। यह ख़त मक्के जाती हुई एक औरत के बालों की चोटी से बरामद कया गया। हज़रत हातिब को उनके ईमान व ख़ुलूस और बदरी सहाबी होने की जह से माफ़ कर दिया गया।

यह विचित्र संयोग है कि सत्य-असत्य की आरंभिक लड़ाई भी रमज़ान के हीने में हुई और अब मंज़िल तक पहुँचानेवाली लड़ाई भी रमज़ान ही में पेश आ ही थी।

10 रमज़ान को प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ दस हज़ार सिपाहियों ने मदीने से कूच किया और पुरानी किताबों की वह बात पूरी हो गई कि "वह दस हज़ार क़द्दूसियों (पाक-साफ़ लोगों ) के साथ आया" आपने कुछ ऐसा रास्ता अपनाया कि कुरैश की जो गश्ती पार्टी देखभाल के लिए निकली थी, वह किसी और तरफ़ घूमती रही। मुस्लिम फ़ौज ने यकायक मक्के के सामने जा पड़ाव डाला।

प्यारे नबी (सल्ल०) जुहफ़ा पहुँचे तो आपके चचा अब्बास बाल-बच्चों के साथ ज़ियारत के लिए तशरीफ़ लाए फिर कुछ बातें हुईं। हुज़ूर (सल्ल०) ने अपना सफ़ेद ख़च्चर हज़रत अब्बास (रज़ि०) को देकर कहा कि अबू सुफ़ियान को साथ लेते आइए।

फिर मर्रज़्ज़हरान पहुँचकर रात को कैम्प लगाया गया तो फ़ौजी हिक्मत के तहत प्यारे नबी (सल्ल०) ने हुक्म दिया कि तमाम सिपाही अपने लिए अलग-अलग आग रौशन करें। अबू सुफ़ियान बिन हर्ब और दूसरे बड़े देखभाल के लिए निकले तो ऊँचाई से दस हज़ार चूल्हों को रौशन देखकर परेशान हो उठे। हज़रत अब्बास का गुज़र हुआ। उन्होंने अबू सुफ़ियान से कहा कि मुहम्मद बड़ी फ़ौज लेकर आए हैं अब कुरैश की ख़ैर नहीं। अबू सुफ़ियान ने पूछा कि अब क्या किया जा सकता है? उन्होंने कहा कि आओ, मेरे साथ ख़च्चर पर बैठ जाओ और चलकर हुज़ूर (सल्ल०) से बात करें। अबू सुफ़ियान को इस्लामी कैम्प में देखकर हज़रत उमर (रज़ि०) का ख़ून खौल गया। हुज़ूर (सल्ल०) से क़त्ल करने इजाज़त तलब करने गए। पीछे से हज़रत अब्बास (रज़ि०) पहुँच गए और उन्होंने कहा—"ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ! मैं अबू सुफ़ियान को पनाह देकर लाया हूँ।"

अगली सुबह को अबू सुफ़ियान ने हुज़ूर (सल्ल०) के सामने इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) के एलान के मुताबिक़ इस्लामी फ़ौज के पास के एक ऊँचे टीले पर अबू सुफ़ियान को खड़ा किया, ताकि वह सारा दृश्य देख सके। फ़ौज ने क़दा के रास्ते मार्च किया। अलग-अलग क़बीलों की अलग-अलग टुकड़ियाँ तैयार की गई थीं। अबू सुफ़ियान हर टुकड़ी के बारे में कुछ पूछता जाता, जब साद बिन उबादा उस जगह से गुज़रे तो जोश में पुकार उठे, "आज घमासान का दिन है, आज के दिन काबा के आस-पास लड़ना जायज़ होगा।" हुज़ूर (सल्ल०) को इस नारे की बात मालूम हुई तो तुरन्त उनसे झण्डा ले लिया गया और उनके बेटे के सुपुर्द कर दिया गया। उस वक़्त हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आज का दिन काबा की लड़ाई का दिन है और नेकी और भलाई का दिन है।" फ़ौज के मार्च के साथ प्यारे नबी (सल्ल०) ने यह एलान फ़रमाया

जो व्यक्ति हरम में दाख़िल हो जाए उसे पनाह है, जो व्यक्ति अबू सुफ़ियान के घर में चला जाए, उसे भी पनाह है, जो व्यक्ति अपने घर में बैठ रहे, उसे भी पनाह है और जो कोई हथियार लेकर न निकले, उसे भी पनाह है, सिवाय इसके कि जिसे अपने किसी अपराध की सज़ा मिलनी है। अबू सुफ़ियान ने इस एलान को मक्के में फैलाया।

20 रमज़ान को मक्के में विजेता के रूप में दाख़िल होते समय न ढोल-ताशे थे, न कोई उछल-कूद और न कोई वियज के नशे में चूर कोई नारेबाज़ी, बल्कि दुनिया का सबसे बड़ा इनसान जब मक्के का विजेता बनकर शहर में दाख़िल हुआ तो हाल यह था कि प्यारे नबी (सल्ल०) सवारी पर बैठे सर को सज्दे में किए हुए थे, शुक्र था, घमण्ड न था। ज़बान सूरा फ़तह के तिलावत में लगी हुई थी। कुछ क़ुरैशी सरदारों की नादानी कि उन्होंने नौजवानों को शरारत पर उभार दिया और ख़ंदमा पहाड़ की ओर उन्होंने दो सहाबियों को शहीद कर दिया। हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को पता चला तो उन्होंने फ़ौरन उन्हें पसपा किया और कई आदमियों को ढेर कर दिया। ऐसी ही एक टोली शहर में भी अवरोध पैदा करने के लिए निकली। हुज़ूर (सल्ल०) ने अनसार की एक टुकड़ी तलब की और उनको यह दृश्य दिखाया कि एक ओर तो विजयी मुस्लिम शक्ति ख़ून का एक क़तरा भी बहाना नहीं चाहती और दूसरी ओर ये कमीने लोग हमारी म्यानों में पड़ी तलवारों को बाहर निकालने के लिए ललकार रहे हैं। फ़रमाया कि अगर ये अवरोध पैदा करें तो सफ़ाया कर दो। अबू सुफ़ियान को पता चला तो दौड़ा-दौड़ा आया और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! क़ुरैश पहले ही तबाह हो चुके हैं। ऐसा न हो कि उनका नाम व निशान ही दुनिया से मिट जाए।" ख़ैर! वे दुष्ट थोड़ी मार खाने के बाद भाग निकले।

प्यारे नबी (सल्ल०) की इस दया और क्षमा को देखकर अनसार में कुछ लोगों में यह काना-फूसिया शुरू हो गई कि आख़िर हुज़ूर (सल्ल०) पर अपनी क़ौम की मुहब्बत ग़ालिब आ रही है। सूचना मिलने पर हुज़ूर (सल्ल०) ने अनसार को ख़िताब फ़रमाया और कहा, "ख़ुदा की क़सम! ऐसा नहीं है, मैं ख़ुदा का बन्दा और रसूल हूँ। मैंने ख़ुदा की और तुम्हारी ओर हिजरत की है। अब मेरा जीना मरना तुम्हारे साथ है।" अनसार के गले रूंध गए और माफ़ी माँगने लगे। हुज़ूर (सल्ल०) ने माफ़ फ़रमाया।

लोगों ने पूछा कि अब आप अपने पैतृक मकान में ठहरेंगे? फ़रमाया कि अक़्लमन्दों ने हमारे लिए घर छोड़ा ही कहाँ है! प्यारे नबी (सल्ल०) का झण्डा जहून में गड़ गया और यही ठहरने की जगह तय पाई। उस ऐतिहासिक जगह की

ओर तशरीफ़ ले गए जहाँ क़बीले के साथ नज़रबंदी का दौर गुज़रा था, फिर हरम पहुँचे। हज़रत बिलाल (रज़ि०) ने काबे की ऊँचाइयों से अज़ान कही। हुज़ूर (सल्ल०) ने हजरे अस्वद को चूमा। हाथ में कमान लिए हरम में रखे एक-एक बुत के पास जाकर पुकारते—

जाअल हक़्कु व ज़-ह-क़ल बातिलु इन्नल बाति-ल-का-न ज़हूक़ा

(हक़ आ गया, बातिल मिट गया। बेशक बातिल तो मिटनेवाला था)

क़मान के इशारे से बुत गिराते जाते, फिर काबे की कुंजी मंगवाकर दरवाज़ा खुलवाया। अन्दर हज़रत इबराहीम और हज़रत इसमाईल की तस्वीरें बनी थीं और उनके हाथों में पांसे के तीर दिखाए गए थे जो आस-पास की जगहों पर गड़े हुए थे। फिर आप नमाज़ व ज़िक्र में लगे रहे। मस्जिद के सामने भारी भीड़ थी। आपने उन्हें संबोधित किया—

"एक ख़ुदा के सिवा कोई माबूद नहीं, उसका कोई शरीक नहीं। उसने अपना वादा सच्चा कर दिखाया, उसी अकेले ने तमाम फ़ौजों को पसपा किया।

आज दंभ और अहं और ख़ून के तमाम दावे, मालों के तमाम मुतालबे, मेरे क़दमों के नीचे हैं।

अलबत्ता हरम के मुतवल्ली और हाजियों को पानी पिलाने की ज़िम्मेदारी और ओहदे इसके अपवाद हैं।

ऐ क़ुरैश ! अब ख़ुदा ने तुम्हारी जाहिलियत के घमण्ड और नसब (वंश) के दंभ को मिटा दिया। तमाम इनसान आदम की औलाद हैं और आदम मिट्टी से पैदा किए गए थे। सारे इंसान एक हैं, तुममें से प्रतिष्ठित वह है जो तक़वा में पेश-पेश है।"

फिर एक क़ानूनी एलान किया कि ख़ुदा ने शराब और उसके ख़रीदने-बेचने को हराम कर दिया है।

फिर सवाल की शक्ल में फ़रमाया कि तुम्हें मालूम है कि मैं तुमसे क्या व्यवहार करनेवाला हूँ?

इन शब्दों के गूँजते ही ज़ुल्म, अन्याय, धोखादही और क़त्ल व ग़ारतगरी का वह सारा गन्दा इतिहास क़ुरैश की निगाहों के सामने से एक फ़िल्म की तरह गुज़र गया होगा, जिसे उन्होंने 20-21 वर्ष में तैयार किया था, फिर उनकी जंगी कार्रवाइयों के दृश्य उनके ज़ेहनों के परदे पर ताज़ा हो गए होंगे, उनकी अन्तरात्माएँ फट जाने को होंगी। बेबसी और लज्जा की हालत में वे पुकार उठे—

"तू शरीफ़ भाई है और शरीफ़ भाई का बेटा।"

जवाब के रूप में आवाज़ आई—

"आज तुमपर कोई पकड़ नहीं, जाओ तुम सब आज़ाद हो।"

क्या छल-कपट, अन्याय, अत्याचार के कुरैशी इतिहास को सामने रखकर कोई व्यक्ति इस उत्तर की आशा कर सकता है ? पर इस जवाब ने यह साबित किया कि प्यारे नबी (सल्ल०) एक बादशाह न थे, ख़ुदा के पैग़म्बर थे। आप कोई सियासी अरमान लेकर नहीं उठे थे, बल्कि सारी मानवता के नवनिर्माण का काम सामने था।

यह भी आप ही की शान थी कि मक्का के मुहाजिरों से फ़रमाया कि वे अपने-अपने छोड़े हुए मकानों और जायदादों से हाथ खींच लें और क़ुरैश ही के क़बज़े में रहने दें। फिर काबे की कुंजी हमेशा के लिए उन्हीं उसमान बिन तलहा को दे दी, जिनके शुरू के ज़माने में एक बार काबे का दरवाज़ा खुलवाना चाहा था, तो उन्होंने सख़्ती से इनकार कर दिया था। उस मौक़े पर आपने फ़रमाया था :

"एक दिन आएगा कि यह कुंजी मेरे क़ाबू में होगी और मैं जिसे चाहूँगा दूँगा।'

प्यारे नबी (सल्ल०) के अलावा कोई दूसरा होता तो वाक़ई आज उस कुंजी को वह ज़रूर किसी और के हवाले कर देता, मगर प्यारे नबी (सल्ल०) ने तो उस कुंजी के लिए बनू हाशिम की ओर से हज़रत अली (रज़ि०) को पेश की गई दरख़्वास्त भी मंज़ूर नहीं की। कुंजी देते हुए आपने फ़रमाया—

"आज का दिन नेकी और वफ़ा का दिन है।"

फिर प्यारे नबी (सल्ल०) ने उम्मे (रज़ि०) हानी के मकान पर ग़ुस्ल फ़रमाकर 8 रकअत नमाज़ शुक्र के तौर पर अदा की।

विजय के दूसरे दिन सफ़ा पहाड़ी पर से ख़िताब फ़रमाकर हरम की हुर्मत (मान-सम्मान) को बहाल किया। आम माफ़ी के एलान से कुछ लोग अलग थे। ये वह लोग थे, जिनके अपराध बड़े घिनौने और संगीन थे।

कहते हैं कि ज़्यादा से ज़्यादा चार लोग ऐसे थे कि जिनके लिए मौत का फ़ैसला लागू हुआ, लेकिन शोधकों ने यह राय भी दी है कि केवल एक व्यक्ति अब्दुल उज़्ज़ा बिन अख़तल को उसके संगीन अपराधों की वजह से क़त्ल किया गया।

मक्का विजय से सम्बन्धित घटनाओं का बड़ा लम्बा सिलसिला है। बहुत-सी बातें दरकिनार हो गईं। सबसे बड़ी बात जो इस विजय से मुताल्लिक़ कही जा सकती है कि दुनिया की किसी और ताक़त ने पिछली चौदह सदियों के दौरान

ऐसी जीत की एक मिसाल भी पेश नहीं की, न किसी को ज़लील किया, न किसी के माल पर हाथ साफ़ किया गया, न किसी महिला की आबरू लूटी और गई न ही लोगों से अपराधों का बदला लिया गया। यह मिसाल सिर्फ़ उस हस्ती ने पेश की, जो सारी मानवता की उपकारी है, और फिर समता का यह एलान कि तमाम इनसान आदम की औलाद हैं, सम्पूर्ण मानव-जगत के कल्याण के लिए था।

# हुनैन और औतास की लड़ाई

मक्का के कुरैश की जंगी ताक़त की जड़ें आसपास के इलाक़े के बनू हवाज़िन और बनू सक़ीफ़ तक फैली हुई थीं। तायफ़ उनका शहर था। उनके ताल्लुक़ात मक्का के कुरैश से मैत्रीपूर्ण थे। आर्थिक रूप से भी गहरा संबंध था। इन परिस्थितियों में मक्का-विजय अधूरी रहती, अगर मक्का के कुरैश की जड़ों को न उखाड़ दिया जाता।

हुआ यह कि प्यारे नबी (सल्ल०) उच्च स्तर की सैनिक रणनीति से काम लेकर मक्का के कुरैश को इस तरह अचानक आ पकड़ा कि उनको मित्रों से कोई मदद न मिल सकी।

उधर हवाजिन क़बीले के लीडरों को अन्दाज़ा था कि हुदैबिया समझौता वाक़िओं के जिस सिलसिले के तहत टूटा है, उसका नतीजा क्या हो सकता है। सरदारों ने पहले ही से सामरिक शक्ति इकट्ठी करने का सिलसिला शुरू कर दिया और क़बीलों में दौरा करके मुस्लिम शक्ति के ख़िलाफ़ उत्तेजना फैलाई। अब जो उन्होंने मक्का विजय की ख़बरें सुनीं, तो अपनी सारी शक्ति हुनैन या औतास नामी घाटी में जमा की। सच तो यह है कि वे ख़ुद आक्रामक क़दम उठाकर मुस्लिम शक्ति पर हमला करना चाहते थे। इस मौक़े पर बनी काब और बनी किलाब ने शिर्कत नहीं की, और यह बहुत बड़ी कमी रह गई।

इधर सच्चे रसूल (सल्ल०) को ज्यों ही सूचना मिली, आपने अब्दुल्लाह बिन अबी हदरद अस्लमी को स्थिति जानने के लिए रवाना किया। उन्होंने वापस आकर पूरा विवरण हुज़ूर (सल्ल०) के सामने रख दिया।

इस्लामी सेना के कमाण्डर (सल्ल०) ने मदीने से बहुत ज़्यादा हथियार और रसद का इन्तिज़ाम नहीं किया था, क्योंकि कुरैश की ताक़त को सामने रखकर मक्का विजय का मंसूबा बनाया गया था, वह बस एक छोटी-सी लड़ाई का था। ज़रूरत भी ज़्यादा पेश नहीं आई, पर अब बनू हवाज़िन और बनू सक़ीफ़ का मामला सामने आने पर तत्काल व्यवस्था हुज़ूर (सल्ल०) ने यह की कि अब्दुल्लाह बिन रबीआ से 30 हज़ार दिरहम और मक्के के सरदार सफ़वान बिन उमैया से सौ कवच और दूसरे हथियार उधार के तौर पर ले लिए।

शव्वाल सन् 08 हि० को मक्के से 12 हज़ार की तादाद में एक बड़ी सेना चली। कुछ साथियों में अपनी बड़ी तादाद होने पर गर्व महसूस हुआ और ये शब्द भी मुँहों पर आए कि आज कौन हमपर ग़ालिब आ सकता है?' ख़ुदा को

यह बात नापसंद हुई और इसका ख़मियाज़ा लड़ाई के मैदान में भुगतना पड़ा।

तादाद तो बढ़ गई, लेकिन कमज़ोर पहलू भी नए थे। अगले हिस्से में ख़ालिद (रज़ि०) की सरदारी में नव मुस्लिम नौजवान थे, जिन्होंने जोशीलेपन में पूरी तरह सशस्त्र होने में भी ग़फ़लत दिखाई थी। फिर मक्के के दो हज़ार नए-नए लोग थे जो इस्लामी राज्य के मातहत तो हो चुके थे और कुछ ने इस्लाम भी क़बूल कर लिया था, पर ऐसा तो न था कि उनका चरित्र और मन इस्लाम के ढाँचे में ढल गए हों। दूसरी ओर विरोधी फ़रीक़ की बरतरी की वजह यह थी कि वे ज़बरदस्त योद्धा और बाण फेंकने में दक्ष थे। साथ ही उन्होंने पहले से लड़ाई के मैदान में अपने लिए बेहतर जगह हासिल कर ली थी और टीलों और पहाड़ियों मे अपनी टुकड़ियाँ फैला दी थीं।

इधर मुस्लिम सेना सुबह से ज़रा पहले हुनैन पहुँची और एक बड़ी घाटी के ढलवान में उतरना शुरू किया तो दुश्मन फ़ौजियों ने कई दिशाओं से यकायक ज़ोरदार हमला कर दिया। मुस्लिम फ़ौज में बिखराव फैल गया और मुजाहिद पीछे को पलटे, यहाँ तक कि एक-दूसरे को मुड़कर देखने की भी किसी को मोहलत न थी। इस अफ़रा-तफ़री की हालत में हुज़ूर (सल्ल०) का असाधारण चरित्र सामने आता है कि आप सवारी से उतरकर एक ओर खड़े पुकार रहे थे कि "लोगो! किधर जाते हो? इधर मेरे पास आओ। मैं अल्लाह का रसूल और मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह हूँ?" फिर आवाज़ दी कि—

"मैं नबी हूँ, इसमें तनिक भी झूठ नहीं मैं अब्दुल मुत्तलिब का पुत्र (पोता) हूँ।"

बस थोड़े से मुहाजिर, कुछ अनसार और आपके घराने के लोग आपके पास खड़े रहे। हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने आवाज़ दी, "ऐ अनसार के लोगो! ऐ बैअते रिज़वान के साथियो! इतना सुनना था कि मुसलमान हर ओर से लपके अपने और वीरता के केन्द्र की ओर जमा हो गए। फिर जो लड़े तो आनन-फानन रंग बदल गया। दुश्मन के सत्तर आदमी मारे गए और जब उनका झण्डा उठानेवाला हलाक हो गया तो उनके क़दम उखड़ गए। पराजित सेना का एक हिस्सा औतास क़िले में जा छिपा। अबू आमिर अशअरी ने छोटी-सी टुकड़ी लेकर कई हज़ार दुश्मनों के ख़िलाफ़ मोर्चा बाँध लिया। ख़ुद शहीद हो गए, लेकिन उनकी टुकड़ी सफल रही।

दूसरा निशाना तायफ़ था। तायफ़ बड़ा ही सुरक्षित स्थान था। उसके चारों ओर क़िलाबंद दीवारें थीं और उसकी ताज़ा मरम्मत की गई थी। साल भर के रसद का सामान जमा था। हथियार बहुत थे। तायफ़ पर हुज़ूर (सल्ल०) ने ऐसे

रुख़ से हमला किया, जिधर से तायफ़वालों को गुमान भी न गुज़रा होगा। यह पहला मौक़ा था कि क़िला तोड़ने के लिए मुस्लिम सेना ने तोपों और मशीनगनों का इस्तेमाल किया। क़िले के भीतर से मुसलमानों पर तीर भी फेंके जाते रहें और क़िला तोड़नेवाले हथियारों को नुक़सान पहुँचाने के लिए गर्म लोह की छड़ें भी बरसाई गईं। मजबूरन फ़ौज को हटना पड़ा।

हुज़ूर (सल्ल०) ने नौफ़ुल बिन मुआविया (रज़ि०) से मशविरा तलब किया। फिर फ़ैसला यह किया कि चूँकि तायफ़ इस्लाम के मातहत आए हुए अरब के दरमियान एक विरोधी द्वीप बनकर नहीं रह सकता, इसलिए अगर उसे इस वक़्त छोड़ दिया जाए तो दोनों फ़रीक़ों को नुक़सान कम होगा और बाद में तायफ़ के लोग नई परिस्थितियों को देखते हुए स्वयंसेवी भावना से इस्लाम स्वीकार कर लेंगे।

उहुद की तरह इस लड़ाई के कड़े मरहलों में भी हुज़ूर (सल्ल०) से चाहा गया कि दुश्मनों के लिए बद्दुआ करें, पर आपने यह दुआ की, "ऐ अल्लाह! तू सक़ीफ़ को सीधे रास्ते की हिदायत दे और उनको हमारे साथ मिला दे।"

इस लड़ाई के बाद जिइर्राना में बहुत ज़्यादा ग़नीमत का माल जमा था। 24 हज़ार ऊँट, 40 हज़ार बकरियाँ, 4 हज़ार औक़िया चाँदी। इस माल में से पाँचवाँ हिस्सा निश्चित मद्दों के लिए बैतुलमाल में रखकर बाक़ी फ़ौज में बाँट दिया गया।

क़ुरआन ने दिल जीतने की जो मद्द रखी है, उसके तहत हुज़ूर (सल्ल०) ने मक्के के रहनेवालों और सरदारों को दिल खोलकर बहुत-सा माल दिया। आप चाहते यह थे कि उनके घावों पर मरहम रखा जाए। उनसे ज़्यादा दुखी इस धरती के नीचे और कौन रहा होगा। वे प्यारे नबी (सल्ल०) के रिश्तेदार होते हुए पिछली लाइनों में सिमटे-सुकड़े खड़े थे और अनसार और मुहाजिर हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ-पाँव बने हुए थे। क्या दृश्य होगा जब मक्का के वे सरदार जो परों पर पानी न पड़ने देते थे, आज उस हस्ती के हाथ से उपहार ले रहे हैं जिसके साथ हर ज़्यादती मक्के में सही समझी गई थी।

अनसार ने जब इस तरह क़ुरैश पर कृपा-दृष्टि होते देखी तो उनके कुछ लोग इनसानी कमज़ोरी की वजह से तुच्छ भावनाओं की लपेट में आ गए, यानी यह कि कहीं हुज़ूर (सल्ल०) नस्ली और वतनी ताल्लुक़ की वजह से तो क़ुरैश को नहीं नवाज़ रहे हैं। किसी ने यह तक कह दिया कि हक़ की हिमायत में जानें हम लड़ाते हैं और इस वक़्त भी हमारी तलवारों से ख़ून टपक रहा है, लेकिन लेने के वक़्त क़ुरैश को क्यों पहले दिया जाए?

इनसान बहरहाल इनसान हैं, कभी न कभी कोई ऐसा क्षण आ जाता है कि कोई अनुचित विचार या भावना मन में पैदा हो जाती है, बुरे लोग ग़लत विचारों को लेकर बैठ जाते हैं, अच्छे लोग ज्यों ही हक़ीक़त जान लेते हैं, अप्रिय भावनाओं को अपने यहाँ से चलता करते हैं। हज़रत साद बिन मुआज़ (रज़ि०) के ज़रिए बात हुज़ूर (सल्ल०) के कानों तक पहुँची। हुज़ूर (सल्ल०) ने एक शामियाना लगवाया, अनसार को जमा किया गया और उनके सामने मन झकझोर देनेवाला वक्तव्य दिया—

"ऐ अनसार के गिरोह! आख़िर यह क्या कानाफूसियाँ हैं, जिनकी सुनगुन मुझे लगी है। ये क्या भावनाएँ हैं, जो तुम मेरे बारे में अपने भीतर पाते हो। क्या तुम गुमराह न थे और मेरे ज़रिए अल्लाह ने तुमको हिदायत दी? तुम तंगदस्त थे और अल्लाह ने तुमको ख़ुशहाली दी, तुम आपस में दुश्मन थे और अल्लाह ने तुम्हारे दिलों को जोड़ दिया।"

फिर वक्तव्य का रुख़ फिरता है, फ़रमाया—

"बजाए, इसके ख़ुदा की क़सम! तुम यह कह सकते हो और तुम्हारा यह कहना ठीक होगा कि तुम हमारे पास आए, जबकि तुम्हें दूसरों ने झुठला दिया और हम थे जिसने तुम्हारी तस्दीक़ की। तुम बेयारो मददगार आए और हमने तुम्हारी मदद की; तुम वतन से निकाले हुए हमारे पास आए और हमने तुमको जगह दी और तुम हमारे पास बेसर व सामान आए, और हमने तुम्हें सब कुछ दिया।"

फिर दूसरे पहलू से बात की—

"ऐ अनसार के लोगो! क्या तुम अपने दिलों में दुनिया की उस पूँजी का शौक़ रखते हो जिसे मैंने इस ख़याल से क़ुरैश के लोगों को दिया कि वे इताअत का रास्ता अपनाएँ, और मैंने उन्हें तुम्हारी ओर से इस्लाम तक लाने की कोशिश की है। ऐ अनसार के लोगो! क्या तुम इसपर राज़ी नहीं हो कि लोग बकरियाँ और ऊँट ले जाएँ और तुम ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) को अपने साथ ले जाओ।

क़सम उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है! अगर हिजरत न होती तो मैं अनसार में एक व्यक्ति होता। अगर तमाम लोग एक घाटी में जाना पसन्द करें और अंसार दूसरी घाटी में तो मैं अनसार की पसंदीदा घाटी में जाऊँगा।

ऐ अल्लाह! अनसार पर और अनसार के बेटों पर और आगे उनकी औलादों पर दया कर।"

इस भाषण ने अनसार को तड़पा दिया। लोग इस तरह रो रहे थे कि दाढ़ियाँ आँसुओं से भीग गईं और अनसार चीख़ उठे कि हम अपने हिस्से में रसूल (सल्ल०) को लेकर राज़ी हैं।

इधर 6 हज़ार क़ैदी क़िस्मत के फ़ैसले के इन्तिज़ार में थे। हुज़ूर (सल्ल०) पूरे दो सप्ताह इन्तिज़ार करते रहे कि कोई आकर उनके बारे में बात करे। कोई न आया तो उनको फ़ौजियों में बाँट दिया गया, ताकि हर क़ैदी का इन्तिज़ाम हो जाए। बाँटे जाने के बाद हलीमा सादिया के क़बीले के प्रतिष्ठित लोगों का एक प्रतिनिधिमण्डल आया। ज़ुहैर बिन अबी सुर्द ने हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में बड़ा प्रभावी भाषण दिया—

"जो औरतें छप्परों में क़ैद हैं, उनमें तेरी फूफिया हैं, उनमें तेरी मौसियाँ हैं। अगर अरब के बादशाहों में से किसी ने हमारे ख़ानदान में दूध पिया होता तो उनसे बहुत कुछ उम्मीदें होतीं। तुमसे हमें और भी ज़्यादा उम्मीदें हैं।"

प्यारे नबी (सल्ल०) ने स्पष्ट किया कि मैं तो ख़ुद इन्तिज़ार में था कि कोई आकर बात करे, पर अब जबकि बँटवारा हो चुका है, बनू हाशिम के क़ैदी तुम्हें वापस करता हूँ। बाक़ी के लिए नमाज़ के बाद बात करना।

नमाज़ के बाद ज़ुहैर ने मज्मे के सामने फिर बात की। आपने फ़रमाया, "मुझे सिर्फ़ अपने परिवार पर अधिकार है, अलबत्ता मैं तमाम मुसलमानों से सिफ़ारिश करता हूँ।"

फ़ौरन मुहाजिर व अनसार बोल पड़े कि हमारा हिस्सा भी हाज़िर है। सिर्फ़ बनी सुलैम और बनी फ़ुज़ारा ने ऐसा नहीं कहा। आख़िर हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको प्रति क़ैदी 6 ऊँट फ़िद्या में देकर तमाम क़ैदी रिहा करा दिए। बहुत-से क़ैदियों को विदा करते हुए अपने पास से कपड़े भी दिए।

प्यारे नबी (सल्ल०) चाहते तो तमाम मुसलमानों को हुक्म दे सकते थे, पर आपने कभी सत्ता को अपने निजी रुझानों के तहत इस्तेमाल नहीं किया और न मुसलमानों से उनके हक़ कभी छीने। इस मौक़े पर भी सिफ़ारिश ही की।

प्यारे नबी (सल्ल०) की सिफ़ारिश को भी जिन दो गिरोहों ने न माना, उनके ख़िलाफ़ न नाराज़ हुए, न कार्रवाई की, न मन में किसी प्रकार का कोई द्वेष रहा।

इन मामलों से छुट्टी पाकर हुज़ूर (सल्ल०) ने मक्के से वापसी का इरादा किया और अत्ताब बिन उसैद को मक्के का गवर्नर मुक़र्रर करते हुए प्रतिदिन एक दिरहम उनकी तनख़्वाह मुक़र्रर फ़रमाई।

# मक्का और हुनैन की विजय के बाद

मक्का और हुनैन की जीत के बाद हक़ीक़त में इस्लामी क्रान्ति के विरोधी शक्ति का सर कुचला जा रहा था। कहीं-कहीं बचेखुचे दुष्ट तत्त्वों की सीमित हरकतों को दबाने के लिए छोटी-छोटी कार्रवाइयाँ की गईं।

क़बीला बनू तमीम, क़बीला ख़सअम, क़बीला बनू किलाब और जद्दा में हब्शा से आए हुए डाकुओं के मामले में मुहिम भेजी गयीं।

रबीउल आख़िर सन् 09 हि० में हज़रत अली (रज़ि०) को क़बीला बनी तै में डेढ़ सौ सवारों के साथ भेजा गया। हुक्म यह था कि वहाँ के बड़े बुतख़ानों को ढा दें। मदीने का आस्थापरक और उद्देश्यपूर्ण राज्य आस्था और धर्म की आज़ादी तो ग़ैर मुस्लिमों को दे सकती थी, पर वह ऐसे प्रतीकों और संस्थाओं का वजूद पसन्द न कर सकता था जो उसकी बुनियादों से टकराते हों। उन्हीं बुतों की श्रद्धा की रौ में लोग उत्तेजित हो-होकर लड़ाइयाँ लड़ते और आतंक फैलाते थे। कोई वजह न थी कि अज्ञानी बुतख़ानों और शिर्क भरे विश्वास-व्यवस्था को एक समानांतर शक्ति की हैसियत से चलने दिया जाता। यह बुत असल में एक असत्य जीवन-व्यवस्था की निशानी बन चुके थे और इस निशानी को मिटा देना ज़रूरी था। क़बीला तै मूर्ति-पूजावाली भावनाओं में डूबकर मदीने पर चढ़ाई करना चाहता था। इतिहास गवाह है कि अदी बिन हातिम ने इसी मक़्सद के लिए सवारी और हथियारों का इन्तिज़ाम किया था।

बहरहाल हज़रत अली (रज़ि०) ने क़ुल्स नामी जगह पर पहुँचकर सुबह सवेरे हमला किया। अदी बिन हातिम भाग गया। क़बीलेवालों ने मामूली अवरोध के बाद हथियार डाल दिए। बुतख़ाना तोड़ दिया गया। क़ैदी, जानवर और हथियार मुसलमानों के क़बज़े में आए। क़ैदियों में अदी बिन हातिम की बूढ़ी बहन भी थीं। उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) के सामने अपनी विवशता रखी और रिहाई की दरख़्वास्त की। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनके लिए सवारी का इन्तिज़ाम किया और आज़ाद करके वापस कर दिया। उन्होंने भाई को जाकर बताया कि मैं तो मदीने में तेरे बाप हातिम जैसी दानशीलता के दृश्य देखकर आई हूँ। लड़ने का विचार छोड़ और जाकर आशीर्वाद ले।

उसके बाद जल्द ही अदी बिन हातिम ने मदीने आकर इस्लाम क़बूल कर लिया।

# मौता और तबूक की लड़ाई

प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपनी दावत देश से निकलकर विदेशों में भी फैलानी शुरू की तो एक दूत हारिस बिन उमैर अज्दी को शाम या बसरा की ओर रवाना किया। उसे हिरक़्ल के गवर्नर शुरह बील बिन अम्र ग़स्सानी ने रास्ते में क़त्ल कर दिया। यह बुनियादी इनसानी अख़लाक़ और दूतों के मान्य अधिकारों के ख़िलाफ़ था। ऐसी हरकतों को अगर कोई सरकार चुपचाप सहन कर ले, तो फिर उसका कोई मूल्य बाक़ी नहीं रहता।

मौता की लड़ाई पहले हो चुकी थी, जिसका विवरण यह है कि जुमादल आख़र 07 हि० को ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि०) के नेतृत्व में तीन हज़ार सैनिकों को देकर हुज़ूर (सल्ल०) ने उन्हें शाम के इलाक़ा बलक़ा की ओर रवाना किया। उसी फ़ौज को विदा करने के लिए स्वयं हुज़ूर (सल्ल०) चलकर मदीने के बाहर तक गए।

यह सेना जब मुआन नामी एक जगह पर पहुँची तो मालूम हुआ कि उन दिनों हिरक़्ल दौरे पर आया हुआ है। उसके साथ बहुत बड़ी फ़ौज है और बनी लख़म, बनी जुज़ाम और बहराअ् के ईसाई जमा हैं। कुल तादाद का अन्दाज़ा एक लाख था। फ़ौजी अफ़सरों ने मशविरे के बाद तय किया कि दुश्मन की ताक़त को देख कर वापस नहीं जाएँगे, आगे बढ़ेंगे। मुशारिफ़ नामी जगह पर पहुँचे तो दुश्मन की बहुत बड़ी फ़ौज मौजूद थी। घमासान की लड़ाई हुई। ज़ैद बिन हारिसा शहीद (रज़ि०) हुए। झण्डा हज़रत जाफ़र (रज़ि०) ने सँभाला, दोनों हाथ कट गए और 90 घाव खाकर वह भी अपना कर्त्तव्य पूरा कर गए। अब्दुल्लाह बिन रवाहा (रज़ि०) ने झण्डा सँभाला, मगर वह भी शहीद हो गए, आख़िर हज़रत ख़ालिद बिन वली (रज़ि०) बढ़े और इस बेजिगरी से लड़े कि 9 तलवारें उनके हाथ में टूटीं। आख़िर दुश्मन की फ़ौज पीछे हटी। मुस्लिम फ़ौज के 12 क़ीमती लोगों की जानें गईं।

थोड़ी-सी फ़ौज, ग़ैर इलाक़ा, न कुमक, न रसद, इसी एक कामयाब मारके के बाद यह मुहिम वापस आ गई। इसी मौक़े पर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को सैफ़ुल्लाह (अल्लाह की तलवार) का ख़िताब दिया गया।

यह थी मौता की लड़ाई और इसकी दूसरी कड़ी थी तबूक की लड़ाई।

तबूक की लड़ाई बहुत-सी वजहों से इस्लामी इतिहास का बड़ा महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

मक्का विजय के बाद रजब सन् 09 हि० में ख़बर मिली कि क़ैसर की फ़ौजें मदीने पर हमला करने के लिए शाम में तैयार हो रही हैं। क़ैसर एक बड़े राज्य का

राजा था और क़रीब ही में उसने ईरान जैसी हुकूमत को हराया था। इधर प्यारे नबी (सल्ल०) की निगाह में मदीने में जो जगमगाते इस्लामी राज्य का मान-सम्मान और महत्त्व था, उससे कौन इनकार कर सकता है। मदीने का राज्य वर्षों की कुरबानियों के बाद यहाँ तक पहुँचा था, उसका नुक़सान कैसे गवारा किया जा सकता था। फ़ैसला यह हुआ कि क़ैसर की फ़ौज को अरब में घुसने न दिया जाए, और इस देश के बाहर ही लड़ा जाए। फ़ौरन लड़ाई की तैयारी शुरू हो गई। तेज़ गर्मी पड़ रही थी, अकाल पड़ा हुआ था, तंगी का दौर था। प्यारे नबी (सल्ल०) ने लड़ाई की ज़रूरतों को देखते हुए चन्दे की अपील की। इस अपील का ऐसा शानदार जवाब मुसलमानों ने दिया जिसकी मिसाल इतिहास में कोई दूसरी नहीं मिल सकती। हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने 9 सौ ऊँट और एक सौ घोड़े सजे-सजाए पेश किए। नक़्द चन्दे के तौर पर एक हज़ार दीनार हाज़िर कर दिए। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) ने 40 हज़ार दिरहम लाकर ढेर कर दिए। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपने माल का आधा हिस्सा चन्दे में दे दिया। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) घर का पूरा सामान उठा लाए और ख़र्च करने के मुक़ाबले में बाज़ी ले गए। लेकिन शायद और भी ज़्यादा ऊँचा दर्जा उस ग़रीब श्रमिक अनसारी को मिला होगा, जिसने दिन भर पानी के डोल खींच-खींचकर 4 सेर छोहारे कमाए थे। उन्होंने दो सेर छोहारे घरवालों के लिए रखकर बाक़ी प्यारे नबी (सल्ल०) की सेवा में पेश कर दिए। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इन छोहारों को माल के सारे ढेर पर बिखेरकर रखो।" औरतों ने जिहाद-फंड में अपने गहने दिए। आख़िर 30 हज़ार सिपाही, दस हज़ार घोड़ों के साथ रवाना हुए। इस फ़ौजको 'तंगी की फ़ौज' का नाम दिया गया है, क्योंकि यह तंगी के ज़माने में रवाना हुई। सैनतुल विदाअ में टुकड़ियाँ तरतीब दी गईं, कमाण्डर मुक़र्रर किए गए और झण्डे बाँटे गए।

तबूक पहुँचे तो मालूम हुआ कि दुश्मन ने अरब पर हमला करने का इरादा छोड़ दिया है। असल में शाम के हुक्मराँ को किसी ने यह ख़बर ग़लत दे दी थी कि हुज़ूर का इंतिक़ाल हो गया है और हमले के लिए यह बेहतरीन वक़्त है। अब जब यह मालूम हुआ कि नबी (सल्ल०) भी ज़िंदा हैं और मदीना भी ज़िंदा हैं, तो उनके इरादे पर ओस पड़ गई।

फिर भी प्यारे नबी (सल्ल०) ने तबूक में एक महीने तक कैम्प क़ायम रखा। इस बीच कई काम अंज़ाम पाए—

ऐला का हाकिम पेश हुआ और टैक्स देकर समझौता कर लिया। जरबा और अज़रुह के लोग भी जिज़या (Tax) साथ लेकर पेश हुए। हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को दौमतुल जुन्दल के हाकिम उकैदर की ओर चार सौ सिपाहियों

के साथ भेजा गया। उकैदर का भाई मारा गया और वह ख़ुद क़ैदी बनकर पेश हुआ। जिज़या पर उससे समझौता हुआ। पूरे उत्तरी क्षेत्र में मुस्लिम शक्ति की धाक बैठ गई।

प्यारे नबी (सल्ल०) वापस मदीना पहुँचे तो आपका बड़ा शानदार स्वागत किया गया।

इस आज़माइशी लड़ाई से बचने के लिए 80 से ज़्यादा मुनाफ़िक़ मदीने ही में बैठे रहे। प्यारे नबी (सल्ल०) ने वापस आकर उनसे पूछताछ की तो उन्होंने झूठे बहाने गढ़ करके बयान किए। प्यारे नबी (सल्ल०) सब कुछ जानते हुए दरगुज़र करते गए। लेकिन कुछ ऐसे निष्ठावान भी थे, जिनसे कोताही हो गई। एक मिसाल अबू ख़ुसैमा (रज़ि०) की है। यह फ़ौज में शामिल होने से रह गए। बाद में एक दिन तेज़ गर्मी के वक़्त ठण्डी छाँव में बीवियों के साथ बैठे थे। पानी का छिड़काव किया गया था। खाने-पीने की व्यवस्था थी। यक़ायक उन्हें ख़याल आया और बीवियों से बोले, "हाय, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तो धूप और लू में जिहाद का सफ़र कर रहे हों और अबू ख़ुसैमा ठण्डी छाँव में सुन्दर बीवियों के साथ बैठकर मज़ेदार खाने खा रहा हो।" यह कहकर ऊँट तैयार कराया और सवार होकर रवाना हो गए। बहुत दूर जाकर फ़ौज से मिले।

इसके अलावा तीन लोग ऐसे भी थे कि यूँ ही सुस्ती में पड़े रह गए। हज़रत काब बिन मालिक (रज़ि०) से हुज़ूर (सल्ल०) ने सवाल किया कि तुम कैसे रह गए? उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! मैं आपके पास झूठ नहीं बोल सकता। यही ख़याल करता रहा कि सुबह जाता हूँ, शाम को निकलूँगा और इसी तरह दिन गुज़र गए।" हिलाल बिन उमैया और मुरारह बिन रुबैअ ने भी इसी तरह की कोताही स्वीकार की। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ुदा का हुक्म आने तक उनको जमाअती ज़िंदगी से अलग और बीवियों से बेताल्लुक़ रहने का हुक्म दिया।

इन तीनों ने स्वयं सेवा के तौर पर रसूल (सल्ल०) के हुक्म को अपने ऊपर लागू करने की ऐसी मिसाल क़ायम की कि वह सारी उम्मत के लिए क़ियामत तक रौशनी देती रहेगी।

रसूल (सल्ल०) तो क्या, कोई मुसलमान उनसे बात नहीं कर सकता था। आज़माइश के इस मरहले में ग़स्सानी हुक्मराँ का ख़त हज़रत काब बिन मालिक (रज़ि०) को प्राप्त हुआ। उसने लिखा कि हमें मालूम हुआ कि तुम्हारे आक़ा ने तुमपर ज़ुल्म किया है। तुम बड़े क़ीमती आदमी हो, हमारे पास चले आओ, हम तुम्हारा दर्जा बढ़ा देंगे।

हज़रत काब ने ख़त को तनूर की आग में झोंक दिया।

आख़िर 50 दिन बाद अल्लाह ने तौबा क़बूल कर ली। मदीने में ख़ुशी की लहर दौड़ गई, मुबारक-मुबारक की लहर गूँजने लगी। हज़रत काब बिन मालिक ने तौबा क़बूल होने की ख़ुशी में अपने माल का एक बड़ा हिस्सा सदक़ा कर दिया।

यह था एक चारित्रिक आदर्श, जो प्यारे नबी (सल्ल०) के आन्दोलन को अभीष्ट था।

इस लड़ाई की एक अहम घटना यह है कि इस बीच उस नौजवान ने शहादत पाई जो अपने ढंग का एक ख़ास रौशन चरित्र था।

यह थे अब्दुल्लाह ज़ुल बजादैन।

नौजवानी ही में इस्लाम की दावत उन तक पहुँची। दिल प्रभावित हो गया, पर चचा इस्लाम अपनाने में रोक बन रहा था। आख़िर जब मक्का विजय से हुज़ूर (सल्ल०) वापस आए, तो नौजवान अपने चचा से कहने लगा कि—

"प्यारे चचा! मुझे वर्षों इंतिज़ार करते गुज़र गए कि कब आपके दिल में इस्लाम हिलोरें लेता है, लेकिन आपका हाल ज्यों का त्यों है। अब तो मुझे इजाज़त दीजिए कि मैं इस्लाम क़बूल कर लूँ।"

पत्थर दिल चचा ने जवाब दिया कि अगर तुमको मुहम्मद (सल्ल०) का साथ देना है तो मैं न सिर्फ़ तुमको अपने सारे माल से महरूम करता हूँ, बल्कि तन पर कपड़ा भी न रहने दूँगा। अब्दुल्लाह ने कहा, चाचा आप जो चाहे करें, मैं तो अब बुतपरस्ती से उदासीन हो चुका हूँ और अब मैं ज़रूर मुस्लिम बनूँगा। आप अपना सारा माल ले लीजिए। यह कहकर बदन से कपड़े उतार दिए और नंगी हालत में माँ को आवाज़ देकर कहा कि मैंने तौहीद को क़बूल कर लिया है और मुहम्मद (सल्ल०) की सेवा में जाना चाहता हूँ। मुझे तन ढाँकने को कुछ दीजिए। माँ ने एक कम्बल दिया। फाड़कर आधे का तहबंद बनाया और आधा ओढ़ लिया। इसी हालत में मदीने पहुँचा। हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ पर बैअत की और चबूतरेवालों में शामिल हो गया।

यह क्रान्तिकारी नौजवान जिहाद और शहादत के शौक़ में हुज़ूर (सल्ल०) के साथ तबूक रवाना हुआ। वहाँ बुख़ार आने से देहांत हो गया। मैयत रात के अंधेरे में दफ़्न कर दी गई। हज़रत बिलाल (रज़ि०) चिराग़ उठाए हुए थे। प्यारे नबी (सल्ल०) ख़ुद क़ब्र में उतरे, हज़रत अबू बक्र व उमर (रज़ि०) साथ दे रहे थे। उनसे फ़रमाया, "अपने भाई के आदर को ध्यान में रखो", प्यारे नबी (सल्ल०) ने अपने हाथ से ईंटें रखीं, फिर दुआ की, "ऐ अल्लाह आज की शाम तक मैं उससे राज़ी हो रहा हूँ, तू भी इससे राज़ी हो जा।

यह दृश्य देखकर हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) ने फ़रमाया, "काश इस क़ब्र में मुझे दफ़्न किया जाता!"

# तबूक के बाद की दो अहम घटनाएँ

प्यारे नबी (सल्ल०) के तबूक की लड़ाई पर रवाना होने के पहले कुछ लोगों ा हाज़िर होकर अर्ज़ किया कि हमने बूढ़ों और विकलाँगों की सुविधा के लिए ख़ास तौर पर वर्षा के दिनों में मस्जिदे क़ुबा के नज़दीक मुहल्ला बनी सालिम बिन ौफ़ में एक मस्जिद बनाई है, हुज़ूर (सल्ल०) चलकर उसमें नमाज़ पढ़ाएँ ताकि द्घाटन हो जाए। उस वक़्त चूँकि हुज़ूर (सल्ल०) का सारा ध्यान तबूक की ाड़ाई पर केन्द्रित था, इसलिए फ़रमाया कि तबूक से वापसी के बाद देखेंगे।

यह मस्जिद 92 मुनाफ़िक़ों के एक गिरोह ने तैयार की थी जिनको पट्टी ढ़ानेवाला अबू आमिर था। उसने साज़िश के तौर पर अपने जत्थे को कहा कि जस क़द्र मुमकिन हो, ताक़त और हथियार जमा करो, मैं क़ैसर के पास जाता हूँ ौर वहाँ से एक फ़ौज लाकर मुहम्मद और उनके साथियों को मदीने से कलवाता हूँ। उसने मुनाफ़िक़ जत्थे को यह भी कहा कि मैं अपने बारे में सारी ूचनाएँ तुमको किसी न किसी ज़रिए से पहुँचाता रहूँगा, मगर तुम एक मस्जिद ना रखो, जिसमें मेरा भेजा हुआ मुख़बिर एक मुसाफ़िर की हैसियत से रह सके ौर किसी को उसपर सन्देह न हो।

प्यारे नबी (सल्ल०) तबूक से वापसी पर जब 'ज़ी अवान' नामक स्थान पर हुँचे, जो मदीने से एक घंटे की दूरी पर था, तो अल्लाह ने हुज़ूर (सल्ल०) को ह्य के ज़रिए मुनाफ़िक़ों की मस्जिद की नीयत से सूचित कर दिया। इस मौक़े र हुज़ूर (सल्ल०) ने दो प्रतिष्ठित साथियों को बुलाकर हुक्म दिया कि जाओ ौर मुनाफ़िक़ों की बनाई मस्जिद को ढाकर तमाम सामान को आग लगा दो। नों बड़ी तेज़ी से मुहल्ला बनी सालिम बिन औफ़ में पहुँचे और मस्जिद को राकर सामान को आग लगा दी। इस मस्जिद के बारे में ख़ुदा की वह्य के ब्द सख़्त हैं—

> "जिन लोगों ने विरोधियों का अड्डा बनाने के लिए मस्जिद बनाई, उसे ईमानवालों में कुफ़्र फैलाने और फूट का बीज डालने का माध्यम बनाया और उसे अल्लाह और उसके रसूल के ख़िलाफ़ लड़नेवालों के लिए एक शरणस्थली की हैसियत दी। उसमें तुम कभी जाकर न ठहरना।"

इस घटना से यह सिद्धान्त सामने आया कि मस्जिद का ढाँचा बना देने से ई इमारत ईश-भय, संयम और पावनता का केन्द्र नहीं बन जाती, बल्कि उसे ाने और उसका इन्तिज़ाम करनेवालों के निश्चयों के अनुसार वह नतीजे देगी। थ ही मस्जिदों को न सिर्फ़ अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का विरोध और

कुफ्र फैलाने की कोशिशों से पाक होना चाहिए, बल्कि उन्हें मुसलमानों में फूट डालने का साधन भी नहीं बनना चाहिए।

दूसरी घटना ज़कात-व्यवस्था की स्थापना की ओर क़दम बढ़ाना था।

हिजरत के नवें साल मुहर्रम का चाँद हुआ ही था कि उसके साथ ही साथ सारी मानवता के हितैषी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने देश भर में ज़कात की विधिवत वुसूली का इन्तिज़ाम क़ायम कर दिया। यह महीना मानो सुनियोजित रूप से ज़कात की वुसूली की याद ताज़ा करने का महीना भी है।

दूर और नज़दीक के अलग-अलग क़बीलों की ओर भेजने के लिए अपने नुमाइन्दे तय किए, जो परिभाषा में 'मुहस्सिलीने ज़कात' वुसूल यानी ज़कात करनेवाले कहलाए। आज की भाषा में हम उनको ज़कात वुसूल करनेवाले 'तहसीलदार' भी कह सकते हैं। इन तमाम अधिकारियों को जमा करके हुज़ूर (सल्ल०) ने यह हिदायत दी कि लोगों के मालों में से बेहतरीन और पसंदीद चीज़ें हासिल करने की कोशिश न करें।

यहाँ यह इशारा कर देना ज़रूरी है कि इस्लामी राज्य, जो ख़ुदापरस्ती कं बुनियादों पर क़ायम होता है, वह आख़िरत की कामयाबी के साथ इंसानी ज़रूरत जैसे रोज़ी-रोटी की भी फ़िक्र करता है। दिलों की पाकीज़गी के साथ जनता के पेट भरने की व्यवस्था भी करता है। जिस तरह आज बिना जीविका रोज़ी-रोटी य बिना ईमान दुनिया या बिना ख़ुदाई के हिदायत सत्ता, हज़ार मुसीबतों की जड़ है उसी तरह दुनिया के मामलों से बेताल्लुक़ी पैदा कर देनेवाली इबादतगुज़ारी और रोज़ी-रोटी से ग़ाफ़िल कर देनेवाली ख़ुदापरस्ती भी आदमी को असंतुलित बनाव संन्यास के रास्ते पर डाल देती है, जिसकी इस्लाम में कोई गुंजाइश नहीं।

इस्लाम की दावत शुरू में जब हुज़ूर (सल्ल०) ने पेश की तो तौहीद (ए ख़ुदा को मानना) और नमाज़ के साथ मुफ़लिसों (दरिद्रों) को खाना खिलाने व बात भी कही। नमाज़ के साथ शुरू ही से सदक़ा शामिल रहा है। बाद में सद की एक विशेष प्रकार 'ज़कात' को फ़र्ज कर दिया गया और नमाज़ क़ायम क के साथ ज़कात के अदा करने का हुक्म दिया जाता रहा। किन्तु ज़कात अदा क को सिर्फ़ लोगों की स्वयंचाही ईमानी स्प्रिट पर नहीं छोड़ा गया, बल्कि माम चूँकि पूरी जमाअत के मुहताजों और मजबूर लोगों के भरण-पोषण का था, इसलि सरकारी प्रबंध से उसकी वुसूली का विधिवत सिस्टम क़ायम कर दिया गय उसकी मात्रा और उसकी दर तय की गई, ताकि हर साल ख़ुशहाल लोगों की ओ से नक़दी और अन्न की एक भारी मात्रा आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों की ओ पहुँचाई जाती रहे।

असल में इस्लामी समाज का ढाँचा भाईचारे की व्यवस्था पर खड़ा है और इस्लामी अर्थव्यवस्था को हम 'आर्थिक भ्रातृत्व' का नाम दे सकते हैं। यह व्यवस्था न तो पूँजीवाद की तरह अपने आप एक ख़ास शक्ल अपनाता गया था कि कुछ बेले हैं जो उगती-बढ़ती हैं और आस-पास की सारी वनस्पतियों पर लिपट जाती हैं, और न यह समाजवाद की तरह था कि ग़रीबों के वर्ग ने ख़ुशहाल लोगों के ख़िलाफ़ पूरे द्वेष और घृणा के साथ अधिकारों की लड़ाई लड़-लड़कर क्रान्ति पैदा कर दी हो। बल्कि यह ज़िंदगी के दौड़ में पीछे रह जानेवाले या गिर पड़नेवाले लोगों को सहारा देने का एक प्रबंध था, जिसकी रूह भ्रातृत्व भावना थी।

ज़कात के एक साथ जमा होकर सरकारी इन्तिज़ाम से हक़दारों तक पहुँचने में यह मस्लहत भी थी कि ज़कात लेनेवाले स्वाभिमान की शान को क़ायम रखते हुए यह समझकर ज़कात लें कि यह उनका हक़ है और देनेवाले भी इसी भावना से दें कि उनके अतिरिक्त मालों में हक़ीक़त में दूसरे कमज़ोर इनसानों का हिस्सा अल्लाह ने शामिल कर दिया है, जिसे अदा होना चाहिए। ज़कात-व्यवस्था क़ायम हो जाने पर ज़कात वुसूल करनेवाले अलग-अलग दिशाओं में फैल गए।

ज़कात की वुसूली के सिलसिले में एक जगह नागवार शक्ल बन सामने आई। हज़रत बिश्र बिन सुफ़ियान अदवी को बनू तमीम की ओर से रुकावटों का सामना करना पड़ा। वह कहने लगे कि "ख़ुदा की क़सम! यहाँ से एक ऊँट भी न जाएगा।"

हज़रत बिश्र वापस आ गए। हुज़ूर (सल्ल०) को ये हालात मालूम हुए तो हज़रत उऐना बिन हिस्न फ़ज़ारी (रज़ि०) को पचास सवारों के साथ बनू तमीम की ओर रवाना किया। ये लोग जोहफ़ा से 17 मील की दूरी पर सुक़िया नामी जगह में रहते थे। हज़रत उऐना ने रात को पहुँचकर छापा मारा। 11 मर्द, 21 औरतें और 30 बच्चे गिरफ़्तार करके मदीनो लाए गए। आख़िर बनी तमीम ने दस आदमियों पर सम्मिलित एक प्रतिनिधिमण्डल हुज़ूर (सल्ल०) की सेवा में रवाना किया। जब ये लोग मदीना पहुँचे तो नबी (सल्ल०) के कमरे के पास खड़े होकर बड़े अशिष्ट ढंग से ऊँची आवाज़ में पुकारने लगे : "या मुहम्मद! या मुहम्मद! तनिक बाहर तो आओ, हम एक-दूसरे से बरतरी और कविता में मुक़ाबला करना चाहते हैं।"

प्यारे नबी (सल्ल०) शिष्टता और सभ्यता के अग्रदूत थे। आपको इस तरह पुकारा जाना ख़ुदा को नापसन्द हुआ और सूरा हुजरात की आयतें 4 और 5 उतरीं।

फिर भी प्यारे नबी (सल्ल०) कमरे से बाहर तशरीफ़ लाए। हज़रत बिलाल

(रज़ि०) ने ज़ुह्र की अज़ान कही। नमाज़ से फ़ारिग़ होकर हुज़ूर (सल्ल०) मस्जिद के आंगन में आए। आनेवालों से मक़सद पूछा। उन्होंने कहा हम अपनी बरतरी साबित करने आए हैं। (इसे अरबी में 'मुफ़ाख़रत' कहते हैं)। यह मुफ़ाख़रत अरब संस्कृति का एक अंग थी। यह एक क़िस्म का मुक़ाबला था। एक फ़रीक़ का बन्दा और दूसरे फ़रीक़ का बन्दा अपने-अपने पैतृक और नामी कारनामों का बखान करता। प्रतिनिधिमंडल के लोग बोले कि आप हमारे वक्ता और कवि को मौक़ा दें। बनू तमीम की ओर से उतारद बिन हाजिब ने बखान किया। अब हुज़ूर (सल्ल०) के हुक्म से हज़रत साबित बिन क़ैस अनसारी (रज़ि०) उठे और उन्होंने परम्परागत मुफ़ाख़रत से हटकर अपने ख़ुदा के गुण-गान किए, फिर रसूल (सल्ल०) और क़ुरआन का ज़िक्र किया और मुहाजिरों और उनके बाद अनसार के गुण बताए। यह एक प्रकार का सन्देशवाहक वक्तव्य था।

फिर बनू तमीम का कवि ज़बरक़ान बिन बदर खड़ा हुआ और अपनी क़ौम की शान में क़सीदा पढ़ा। इधर से रसूल (सल्ल०) के हुक्म पर हज़रत हस्सान (रज़ि०) ने तत्काल एक क़सीदा (प्रशस्ति-गान) ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) और दीन का झण्डा रखनेवालों की शान में कहा।

प्रतिनिधिमंडल के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य अक़रअ बिन हाबिस ने कहा, "ख़ुदा की क़सम! अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का वक्ता और कवि हमारे वक्ता और कवि से ज़्यादा बेहतर है।" फिर सब ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनके सभी क़ैदी उनको वापस कर दिए।

# हज में किया गया एलान

तबूक की लड़ाई से वापसी के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) कुछ महीनों तक मदीने ही में ठहरे रहे। उसी बीच आपने हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) को तीन सौ सहाबा (रज़ि०) के साथ हज के लिए मक्का रवाना किया।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के रवाना होने के बाद सूरा बराअत की आयतें उतरीं, जिनमें वचन भंग करने के सिलसिले में रहनुमाई की गई थी। सूरा बराअत में जो पैग़ाम इस्लाम विरोधियों के लिए था, उसे हज सम्मेलन में पहुँचाने के लिए हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने निजी प्रतिनिधि की हैसियत से हज़रत अली (रज़ि०) को रवाना किया कि वह सूरा बराअत विरोधियों के सामने पढ़कर सुना दें।

रास्ते में जब हज़रत अली (रज़ि०) हज के क़ाफ़िले से जाकर मिले तो क़ायदे के मुताबिक़ हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने हज़रत अली (रज़ि०) से पूछा कि आप अमीरे क़ाफ़िला की हैसियत से भेजे गए हैं या किसी और हैसियत से? उन्होंने जवाब दिया, "मैं अमीरे क़ाफ़िला नहीं हूँ", यानी हज का सारा प्रोग्राम तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की अगुवाई में ही हुआ। हज़रत अली (रज़ि०) की ड्यूटी सिर्फ़ इतनी थी कि वे प्यारे नबी (सल्ल०) की ओर से सूरा बराअत सुना दें।

यह पहला मौक़ा था कि हज जैसी इबादत असल इबराहीमी सुन्नत के मुताबिक़ अदा की गई, क़ुरआन ने हज के बारे में जो सुधार किए, वे इस तरह थे—

* हज से ताल्लुक़ रखनेवाले मेले-ठेले बंद कर दिए गए और इन मौक़ों पर कविताओं के और मुफ़खरत में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने के जो मुक़ाबले होते थे, उनको ख़त्म करके इबादत का रंग उभार दिया गया।

* हज के ज़माने में गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़े पर रोक लगा दी गई। दाम्पत्य सम्बन्ध पर पाबंदी लग गई। दंगा-फ़साद और ऊधमबाज़ी से मना कर दिया गया।

* बाप-दादों की शान बयान करके उनपर गर्व करने का जो तरीक़ा अज्ञानता-युग में हज के साथ चल पड़ा था, उसे ख़त्म करके ख़ुदा को याद करने की हिदायत की गई।

* क़ुरबानी करने का हुक्म देने के साथ इस बात पर रोक लगा दी गई कि क़ुरबानी का मांस काबे से लटकाया जाए या दीवारों पर ख़ून मला जाए।

* शिर्क की परंपराओं के मुताबिक़ नंगे होकर तवाफ़ करने पर पाबंदी लगा

दी गई और बेहयाई के कामों से रोक दिया गया। क़ुरआन में ताकीद कर दी गई कि हर इबादत के वक़्त कपड़े पहने रहा जाए।

* 'नसी' के रिवाज को पूरी तरह ख़त्म कर दिया, जिसका मतलब यह था कि हज के लिए जिन चार महीनों को सम्माननीय क़रार दिया गया था, उनमें शिर्कवाली व्यवस्था के बड़े लोग जब चाहते, तबदीली कर लेते कि इस बार फ़लाँ हराम महीना फ़लाँ से बदल दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में हर साल सोच-विचार करके कैलेंडर सिस्टम को अपने स्वार्थ के मुताबिक़ बदल लिया जाता, जैसे कोई लड़ाई करनी है या व्यापार के लिए निकलना है तो जैसी ज़रूरत होती, तबदीली कर ली जाती। कैलेंडर में गड़बड़ करने पर रोक लगा दी गई।

इन सुधारों से अन्दाज़ा किया जा सकता है कि कोई भी बनाव और सुधार चाहनेवाली हुकूमत और ख़ास तौर पर इस्लामी हुकूमत विभिन्न संस्थाओं और मामलों के ख़राब पहलुओं को ज्यों का त्यों चलने नहीं दे सकती, बल्कि वह इबादतों, रस्मों, रिवाजों और मानवीय संबंधों, संस्थाओं की बनावट और मूल्यों के क्रम में जहाँ कहीं अज्ञानता या असत्य या ग़लत बातों के प्रभाव देखती है, उसे नोचकर अलग कर देती है। ख़ुदा ने तो दीन का मक़सद खुले शब्दों में यह बताया है कि 'पाक' से 'नापाक' को अलग कर दिया जाए।

ख़ैर, हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) जब वापस मदीना पहुँचे तो हुज़ूर (सल्ल०) की ज़ियारत करते हुए पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! क्या मेरे ख़िलाफ़ कोई हुक्म उतरा है?"

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं, हरगिज़ नहीं।"

चूँकि सवाल का मक़सद प्यारे नबी (सल्ल०) पर स्पष्ट था, इसलिए आगे यह बात भी फ़रमाई—"यह उचित न था कि मेरे घर के अलावा कोई और व्यक्ति समझौते के बारे में एलान करे।"

इस स्पष्टीकरण से हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) को इत्मीनान हो गया।

हज़रत अली (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) के इर्शाद के मुताबिक़ सूरा तौबा ऐलाने बराअत पढ़कर सुनाया और नीचे लिखी चार बातों का भी एलान किया—

1. जन्नत में कोई ऐसा व्यक्ति दाख़िल न होगा जो इस्लाम को अपनाने इनकार करे।

2. इस साल के बाद कोई मुशरिक हज के लिए न आए।

3. अल्लाह के घर के चारों ओर नंगे तवाफ़ करना मना है।

4. जिन लोगों के साथ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का समझौता बाक़ी

यानी जिन्होंने समझौता भंग नहीं किया, उनके साथ समझौते की मुद्दत तक वफ़ा की जाएगी।

असल सूरा में कुल मिलाकर मुशरिकों के वजूद को एक तरह से क़ानून के ख़िलाफ़ (Out Law) क़रार दे दिया गया और उनको चार महीने की मुद्दत दी गई कि वे सोच लें कि क्या उनको हुज़ूर (सल्ल०) के ख़िलाफ़ लड़ना है, देश छोड़ देना है या इस्लाम लाकर अमन व सलामती की ज़िंदगी गुज़ारनी है।

# मदीने में लोग आने लगे

अल्लाह की शान है कि एक वक़्त था, जब मानव-उपकारी प्यारे नबी (सल्ल०) एक-एक आदमी को खोज-खोजकर दावत पहुँचाने की कोशिश करते और इस कोशिश में भी बाधाएँ आतीं। अब दूसरा मरहला यह सामने आया कि अरब के अलग-अलग क्षेत्रों से प्रतिनिधिमंडलों के आने का तांता बँध गया, जो ख़ुद मदीने हाज़िर होकर इस्लाम के मानव-कल्याण आन्दोलन में शरीक होते।

इतिहास की अनगिनत मिसालें गवाह हैं कि हर दीनी दावत या आन्दोलन या जमाअत जब प्रकट होती है तो अगर वह क्रान्तिकारी रूह रखती हो, यानी इंसानी चरित्र और समाज की सामूहिक व्यवस्था का जो ढाँचा पहले से मौजूद हो, उसे तोड़ना या बदलना चाहे तो उसे पहले से चले आ रहे नेतृत्व और स्वार्थ के नारों की ओर से घोर संघर्ष का सामना करना पड़ता है। यह संघर्ष दो अल्पसंख्यक सक्रिय तत्त्वों के दरमियान होता है। अगर पहले से चला आ रहा नेतृत्व नई उठनेवाली दावत को कुचल दे तो जन-साधारण वहीं रहते हैं, जहाँ पहले थे, लेकिन अगर नई ताक़त बराबर ज़ोर पकड़ती चली जाए तो धीरे-धीरे आम लोग भी अपना भार उधर डालते चले जाते हैं। ख़ास तौर पर जब ऐसा मरहला आ जाए कि यह हक़ीक़त महसूस होने लगे कि अब पुराना नेतृत्व ख़त्म हो रहा है और भविष्य नई शक्ति का है, तो फिर लोग तेज़ी से नए शक्ति-केन्द्र के चारों ओर जमा होने लगते हैं।

यही शक्ल अरब में पेश आई। मक्का के क़ुरैश और उनके समर्थकों ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के आन्दोलन के ख़िलाफ़ लड़ने-भिड़ने का जो सिलसिला शुरू कर रखा था, उसमें वे बराबर पस्पा और कमज़ोर होते चले गए यहाँ तक कि मक्का-विजय के बाद उनकी बिलकुल कमर टूट गई। इस हालत का नतीजा यह हुआ कि अरब के लोग चारों ओर हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ पर इस्लाम और इताअत की बैअत करने के लिए उमड़ पड़े। गिरोह के गिरोह आने लगे, इसी लिए सन् 10 हिजरी का नाम ही 'साले वफ़ूद' यानी प्रतिनिधिमंडलों का साल कहलाता है। वैसे यह सिलसिला सन् 09 हि० ही में शुरू हो गया था। दो-तीन प्रतिनिधिमंडलों का उल्लेख पहले हो चुका, अब कुछ और का संक्षिप्त वर्णन हो जाए। 'प्रतिनिधिमंडलों के साल' का उल्लेख भी इसी शीर्षक में शामिल है। यहाँ तमाम गिरोहों का उल्लेख असंभव है।

## सक़ीफ़ की एक व्यक्ति पर आधारित प्रतिनिधिमंडल

मक्का और हुनैन की विजय के बाद जब हुज़ूर (सल्ल०) वापस मदीना आ

रहे थे तो उर्वा बिन मसऊद सक़फ़ी रास्ते ही में रसूले पाक (सल्ल०) की सेवा में आए, यह नाम हुदैबिया समझौते के सिलसिले में सामने आ चुका है। उर्वा ने हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ पर इस्लाम की बैअत की और अपनी क़ौम में तबलीग़ की इजाज़त चाही। हुज़ूर (सल्ल०) ने अंदेशा ज़ाहिर किया कि तुम्हारी अक्खड़ क़ौम तुमको कहीं क़त्ल न कर दे। वही हुआ। उन्होंने जाकर घर की छत पर खड़े होकर सबको इस्लाम की दावत दी। लोगों ने उनपर तीर चलाए, वह शहीद हो गए।

फिर लोग एक महीने तक इस सोच में पड़े रहे कि क्या करें। आख़िर एक सरदार अब्द या लैल पाँच सदस्यीय मंडल लेकर मदीना रवाना हुआ। हुज़ूर (सल्ल०) से मुलाक़ात के वक़्त मंडल ने तीन अजीब शर्तें पेश कीं—

1. पहली यह कि नमाज़ हमें माफ़ कर दी जाए।

2. दूसरी यह कि हमारे बुत लात को तीन साल तक तोड़ा न जाए।

3. तीसरी यह कि हमारे बुत हमारे हाथों से न तोड़वाए जाएँ।

हुज़ूर (सल्ल०) ने पहली दो शर्तों को तो मानने से इनकार कर दिया, अलबत्ता तीसरी के बारे में फ़रमाया कि 'यह हो सकता है।'

फिर सबने इस्लाम क़बूल किया और वापस हुए।

बाद में हुज़ूर (सल्ल०) ने सहाबियों की एक जमाअत को भेजकर उनके ज़रिए लात नामी बुत को तोड़वा दिया।

## बनू हनीफ़ा का प्रतिनिधिमंडल

यमामा से बनू हनीफ़ा के लोग शमामा बिन असाल की दावत से प्रभावित होकर आए और इस्लाम अपना लिया। मुसैलमा कज़्ज़ाब (झूठा) भी साथ था। उसने हुज़ूर (सल्ल०) की सत्ता में से हिस्सा बटाना चाहा। वह टेढ़ी समझवाला आदमी दीन को भी सिर्फ़ एक दुकानदारी समझकर कहने लगा कि अगर हुज़ूर (सल्ल०) अपने बाद मुझे स्थानापन्न नियुक्त करने का फ़ैसला करें तो मैं बैअत करूँ। हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ में खजूर की एक डाली छड़ी के तौर पर थी, उसकी ओर इशारा करके फ़रमाया कि तुम अगर यह भी माँगो तो मैं तुम्हें नहीं दे सकता। साथ ही फ़रमाया, "अल्लाह ने जो कुछ तेरे भाग्य में लिख दिया है, उसमें लेश मात्र भी अन्तर नहीं हो सकता और शायद तू वही है, जिसे मुझे सपने में दिखाया गया है।" हुज़ूर (सल्ल०) को सपने में दो झूठों के बारे में इशारा दिया गया था।

बाद में मुसैलमा कज़्ज़ाब ने हुज़ूर (सल्ल०) को पत्र लिखा जिसका असल

विषय यह था कि 'मैं तुम्हारे साथ शरीक मुक़र्रर किया गया हूँ, आधी ज़मीन हमारे लिए, आधी क़ुरैश के लिए।'

हुज़ूर (सल्ल०) ने जवाब में लिखवा दिया कि "ज़मीन अल्लाह की है, वह अपने बन्दों में से जिसे चाहे दे।"

## बनू आमिर का प्रतिनिधिमंडल

एक मंडल बनू आमिर बिन सअसआ की ओर से हाज़िर हुआ। बातों-बातों में मंडल के एक सदस्य आमिर बिन तुफ़ैल ने मदीने पर हमला करने की धमकी दी। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह तुझको इसकी क़ुदरत नहीं देगा।"

उसी ज़ालिम ने अपने एक साथी को उकसाया कि किसी मुलाक़ात में हुज़ूर (सल्ल०) को क़त्ल कर दे। वह कहता है कि दो-एक-बार मैंने यह गंदा इरादा किया—एक बार लौह दीवार बाधा बनी नज़र आई और दूसरी बार ऊँट देखा जो मुँह फाड़े मेरे सर को पकड़ना चाहता है। जब ये लोग उठे तो हुज़ूर (सल्ल०) ने दुआ फ़रमाई, "ऐ अल्लाह! मुझे आमिर बिन तुफ़ैल की शरारत से बचाए रख।"

मंडल वापस चला गया। रास्ते ही में आमिर बिन तुफ़ैल ताऊन का शिकार हो गया, दूसरे साथी अर्बद बिन क़ैस पर बिजली गिरी। मंडल के शेष सदस्यों ने दिल की गहराइयों से इस्लाम क़बूल किया।

## बनू फ़ज़ारा का प्रतिनिधिमंडल

बनू फ़ज़ारा के बारह आदमियों के मंडल ने हाज़िर होकर इस्लाम क़बूल किया। हुज़ूर (सल्ल०) ने इलाक़े का हाल पूछा तो मंडल के लोगों ने अर्ज़ किया कि अकाल की वजह से परेशान हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने वर्षा के लिए दुआ फ़रमाई।

## अब्दुल क़ैस का प्रतिनिधिमंडल

क़बीला अब्दुल क़ैस के चौदह व्यक्तियों का एक मंडल सन् 05 हि० मे मदीना आया था। 8 या 9 हिजरी में दूसरी बार 40 व्यक्तियों का बड़ा मंडल आया। हुज़ूर (सल्ल०) ने उन लोगों का स्वागत इन शब्दों में किया—

"मुबारक है वह क़ौम, जो न ज़लील हुई और न रुसवा।"

इन लोगों ने भी इस्लाम स्वीकार कर लिया। फिर अर्ज़ किया कि हमारे रास्ते में चूँकि मुज़र क़बीले के मुशरिक रोक बने हुए हैं, इसलिए हराम महीनों के

अलावा हम हाज़िर नहीं हो सकते। हमें कोई ठोस उपदेश दीजिए। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"एक ख़ुदा पर ईमान लाओ, गवाही दो कि अल्लाह एक है, उसके सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। नमाज़ क़ायम करो, ज़कात अदा करो, माले ग़नीमत में से पाँचवाँ हिस्सा बैतुलमाल के सुपुर्द करो।"

फिर फ़रमाया कि जो लोग तुम्हारे पीछे रह गए हैं, उनको भी इन्हीं बातों की दावत दो।

## बनू मर्रा का प्रतिनिधिमंडल

बनू मर्रा के बारह लोगों का मंडल हाज़िर हुआ, इस्लाम क़बूल किया, अकाल की तबाहियों का ज़िक्र किया। हुज़ूर (सल्ल०) ने वर्षा की दुआ फ़रमाई। ये लोग वापस गए तो मालूम हुआ कि ठीक उसी दिन वर्षा हुई, जिस दिन हुज़ूर (सल्ल०) ने दुआ की थी और तमाम इलाक़ा हरा-भरा हो गया।

हुज़ूर (सल्ल०) ने मंडल के सदस्यों को सफ़र ख़र्च के तौर पर दस-दस औक़िया चाँदी दी और उनके सरदार को बारह औक़िया।

अब हर ओर से लोग आकर ख़ुद इस्लाम क़बूल करने लगे।

## तै क़बीले का प्रतिनिधिमंडल

क़बीला तै के 15 व्यक्ति आए। उनका सरदार ज़ैदुल ख़ैल था, जिसके इस्लाम क़बूल करने पर हुज़ूर (सल्ल०) ने उसका नाम ज़ैदुल ख़ैर रखा और उसके गुणों की प्रशंसा की।

## हमदान का प्रतिनिधिमंडल

हमदान क़बीलों के 120 आदमियों का बड़ा मंडल सेवा में उपस्थित हुआ। ये लोग बहुत साफ़-सुथरे कपड़े पहनकर आए थे। उन्होंने बड़े विस्तार में हुज़ूर (सल्ल०) से बातें कीं। उनकी हर दरख़्वास्त को हुज़ूर (सल्ल०) ने मंज़ूर किया। एक लेख उनको लिखवा दिया, साथ ही उनमें से मालिक बिन नम्त (रज़ि०) को यमन के मुसलमानों के लिए अमीर मुक़र्रर किया।

स्पष्ट रहे कि एक साल पहले प्यारे नबी (सल्ल०) ने हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को इन लोगों की ओर इस्लाम की दावत देने के लिए भेजा था। छः महीने उन्होंने काम किया, पर किसी व्यक्ति ने इस्लाम क़बूल न किया, फिर

हज़रत अली (रज़ि०) को भेजा गया। उन्होंने लोगों को जमा करके हुज़ूर (सल्ल०) का ख़त पढ़कर सुनाया और इस्लाम की दावत दी। एक ही दिन में सब लोग मुसलमान हो गए। जब यह सूचना हुज़ूर (सल्ल०) को मिली तो सज्दे में सिर रख दिया और ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

## क़बीला बनी असद का प्रतिनिधिमंडल

क़बीला बनी असद के दस आदमी आए, इस्लाम क़बूल किया और हुज़ूर (सल्ल०) से कहा कि हम आपके बुलाए बग़ैर ही आ गए हैं। इसपर सूरा हुजुरात की वह आयत उतरी, जिसमें कहा गया है कि "अपने मुसलमान होने का एहसान मुझपर न रखो।" कहानत और रम्ल पर उन्होंने सवाल किया तो हुज़ूर (सल्ल०) ने मना फ़रमाया।

## बनू अबस का दल

बनू अबस के तीन आदमी आए। हुज़ूर (सल्ल०) से अर्ज़ किया कि इस्लाम हिजरत के बिना विश्वसनीय नहीं। अगर यह सही है तो हम अपने माल-मवेशी बेच करके हुज़ूर (सल्ल०) के पास आ जाएँ। मक्का विजय के बाद हिजरत का फ़र्ज़ होना ख़त्म हो गया था। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको जवाब दिया कि जहाँ भी रहो, अल्लाह का तक़वा (डर) अपनाओ, तुम्हारे साथ उसकी मेहरबानी में कोई कमी न होगी।

इसी तरह बनू मुत्तफ़िक़ का एक दल ठीक उस वक़्त पहुँचा जब प्यारे नबी (सल्ल०) आख़िरत की ज़िंदगी के बारे में भाषण दे रहे थे। भाषण सुनने के बाद ये लोग इस्लाम के दायरे में दाख़िल हो गए। क़बीला अज्द के सात लोग हुज़ूर (सल्ल०) की ख़िदमत में आए। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनकी बातचीत और शिष्टाचार को काफ़ी पसन्द किया।

ये लोग पहले से ईमान ला चुके थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनसे ईमान व अख़लाक़ के बारे में कुछ सवाल किए। उन्होंने ठीक जवाब दिए, क्योंकि इस्लाम के प्रचारकों से वे सीख चुके थे।

हुज़ूर (सल्ल०) ने कुछ और बातों की भी नसीहत की।

## नजरान के ईसाइयों का दल

नजरान मक्के से सात मंज़िल दूर यमन का एक बहुत बड़ा शहर था जिसके साथ 73 गाँव भी जुड़े हुए थे।

अब्दुल मसीह आक़िब के नेतृत्व में नजरान के 60 ईसाई दल में शामिल थे, बाक़ी 14 शहर के सरदार थे।

दल के आने से पहले अस्र की नमाज़ पढ़ी जा चुकी थी। दल के लोगों ने भी अपने वक़्त पर नमाज़ पढ़नी चाही। कुछ साथियों को यह बात नापसन्द हुई, पर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि उन्हें पढ़ने दो। उन्होंने पूरब की ओर मुँह करके अपने तरीक़े पर नमाज़ पढ़ी।

दल में बहस का सबसे अहम मुद्दा हज़रत ईसा और उनके बारे में ईसाई अक़ीदा था। इसपर लम्बी बातें हुईं और हुज़ूर (सल्ल०) ने ईसा (अलैहि०) के ख़ुदा न होने की ज़ोरदार दलीलें दीं। वे लोग हक़ को पहचानकर भी क़बूल करने पर तैयार न थे। इस मरहले पर क़ुरआन की सूरत आले इमरान की आयतें 1-6 और 59-61 उतरीं। इन आयतों में मुबाहला की चुनौती थी। यानी जब दलीलों और सबूतों से फ़ैसला न होता हो तो दोनों फ़रीक़ अपनी-अपनी आल-औलाद को लेकर मैदान में आ जाएँ और दोनों यह दुआ करें कि जो फ़रीक़ असत्य पर हो, उसपर ख़ुदा की लानत हो। चुनौती के अनुसार हुज़ूर (सल्ल०) अपनी सुपुत्री हज़रत फ़ातिमा और दोनों नातियों और हज़रत अली (रज़ि०) को लेकर मैदान में आ गए। ईसाइयों पर रौब छा गया। हुज़ूर (सल्ल०) से मोहलत माँगी कि मशविरा कर लें। आपस में बात करते हुए वे यहाँ तक कहते रहे कि 'ख़ुदा की क़सम! यह अल्लाह के रसूल हैं, इसलिए हमको मुबाहला से बचना चाहिए।'

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अज़ाब नजरानवालों के सिरों पर आ गया था। अगर लोग मुबाहला करते तो बन्दर और सुअर बना दिए जाते और पूरी घाटी में उनपर आग बरसती।

दूसरे दिन एक समझौता तय पाया, जिसके मुताबिक़ नजरानवालों की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी मुस्लिम हुकूमत पर डाली गई और नजरानवालों के ज़िम्मे सिर्फ़ टैक्स देना तय हुआ। समझौता काफ़ी लम्बा है।

जब ये लोग वापस पहुँचे तो वहाँ फिर उनमें बहस छिड़ गई कि अगर यह नबी भविष्यवाणी के मुताबिक़ सच्चा नबी है, तो हमें उसपर ईमान लाना चाहिए था। एक ईसाई सरदार सबसे अलग भागकर मदीने पहुँचा और इस्लामी आन्दोलन का ध्वजावाहक बन गया। बाद में दो और सरदार भी आ गए और वे भी इस्लाम के नूर से जगमगा उठे। असल में नजरान की आबादी के दो हिस्से थे। एक ग़ैर ईसाई अनपढ़ों का हिस्सा और दूसरा ईसाइयों का। पहले गिरोह ने

शुरू ही में इस्लाम क़बूल कर लिया था, दूसरे ने टैक्स पर समझौता किया।[1]

## क़बीला अज़्द का दल

क़बीला अज़्द के 15 व्यक्ति हाज़िर हुए और मुसलमान हुए। हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत सर्द बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) को उनपर अमीर मुक़र्रर फ़रमाकर इलाक़े में जिहाद करने की इजाज़त दी, यानी यह छोटी-छोटी विरोधी ताक़तों को दबाने की ज़िम्मेदारी थी। उन्होंने जुर्शवालों का घेराव कर लिया। कुछ दिनों के बाद उसे जीत भी लिया।

## ख़ौलान का दल

यमन ही से ख़ौलान क़बीले के दस आदमी का दल आया। इन लोगों ने बयान किया कि हम पहले से ईमान ला चुके हैं, सिर्फ़ हुज़ूर (सल्ल०) की ज़ियारत के लिए हाज़िर हुए हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हर क़दम पर तुम्हारे लिए नेकी है। जो व्यक्ति मेरी ज़ियारत के लिए मदीने हाज़िर हुआ, वह क़ियामत के दिन मेरी पनाह और अमान में होगा।" हुज़ूर (सल्ल०) ने उन लोगों को ज़रूरी शिक्षाएँ दीं, उपदेश दिए और 12 औक़िया चाँदी रास्ते के ख़र्च के लिए दी।

## ग़स्सान का दल

ग़स्सान के तीस आदमी प्यारे नबी (सल्ल०) के पास आए और इस्लाम क़बूल कर लिया। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनको भी रास्ते का ख़र्च दिया।

## यमन

यमन की ओर रसूले ख़ुदा (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को तीन सौ

---

1. नजरान के ईसाइयों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अब दूसरे ग़ैर ईसाई तत्त्व का क़िस्सा सुनिए। रसूले ख़ुदा (सल्ल०) ने हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को बनी हारिस की ओर भेजा कि तीन दिन तक इस्लाम की दावत दें, फिर अगर वे न मानें तो मुक़ाबला करें। हुआ यह कि बनी हारिस ने हज़रत ख़ालिद के जाते ही इस्लाम क़बूल कर लिया। फिर हज़रत ख़ालिद बिन वलीद ने आस-पास की आबादियों में दावत पहुँचाई। हर ओर से लोग बेझिझक इस्लाम क़बूल करते गए।

   हुज़ूर (सल्ल०) ने क़ैस बिन हसीन (रज़ि०) को अमीर मुक़र्रर किया। दल के जाने के बाद अम्र बिन हज़्म को दीन की शिक्षा देने और सदक़ों की वुसूली के लिए लगाया और उन्हें सविस्तार एक लेख लिखकर दिया। यह लेख किताबों में सुरक्षित है। इसमें ज़कात और सदक़ों के हुक्म भी बयान किए गए हैं। जिज़या और ज़मीनों के हक़ों का भी उल्लेख है और मुसलमान शासक की ज़िम्मेदारियों का बयान भी।

आदमियों के साथ रवाना फ़रमाया कि वहाँ जाकर पहले इस्लाम की दावत देना। अगर वे लोग इस्लाम ले आएँ तो कोई छेड़-छाड़ न करना। ख़ुदा की क़सम! अगर तेरी तबलीग़ से एक व्यक्ति भी हिदायत पा जाए तो यह दुनिया और उसकी हर चीज़ से बेहतर है।

हज़रत अली (रज़ि०) ने इलाक़े में जाकर काम किया, किसी ने इस्लाम क़ुबूल न किया। मजबूरन लड़ाई हुई, जिसके नतीजे में ग़नीमत का माल भी हाथ आया।

## सलामाँ क़बीले का दल

शव्वाल के महीने में सलामाँ क़बीले का एक दल पहुँचा, जिसमें कुल सात व्यक्ति थे। उन्होंने इस्लाम क़बूल किया। बाद में अपने क्षेत्र के अकाल का हाल सुनाया। हुज़ूर (सल्ल०) ने रहमत की बारिश की दुआ की। उनको भी रास्ते का सामान देकर विदा किया।

## क़बीला तुजीब का दल

यमन के कुन्दा क़बीले की एक शाखा तुजीब क़बीला थी। इस क़बीले के 13 आदमी सदक़े का माल लेकर नबी (सल्ल०) के दरबार में पहुँचे। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि इस माल को वहीं ले जाओ और वहीं के ग़रीबों में बाँट दो। दल के लोगों ने बताया कि हम ग़रीबों को देने के बाद बचा हुआ माल लाए हैं।"

हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) उस सभा में मौजूद थे। कहने लगे, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! तुजीब जैसा दल आज तक नहीं आया।"

इन लोगों ने हुज़ूर (सल्ल०) से बहुत से मसले मालूम किए, जिनके जवाब लिखवाकर दिए गए। प्यारे नबी (सल्ल०) ने हज़रत बिलाल (रज़ि०) से फ़रमाया कि इन मेहमानों का सत्कार अच्छी तरह किया जाए। कुछ दिन रहकर दल के लोगों ने इजाज़त चाही और अर्ज़ किया कि हमने जो फ़ायदे हासिल किए हैं, उनको अपनी क़ौम तक पहुँचाना चाहते हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनको रास्ते का ख़र्च बड़ी मात्रा में दिया।

जाते-जाते दलवालों ने कहा कि एक नौजवान हाज़िरी से रह गया है, जो सामान की हिफ़ाज़त पर लगाया गया था। उसे बुलाया गया। उसने प्यारे नबी (सल्ल०) से दरख़्वास्त की कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! आपने मेरे क़बीले की ज़रूरतें पूरी फ़रमाईं। मेरी भी एक ज़रूरत है। पूछने पर उसने कहा कि मैं सिर्फ़ इसलिए घर से निकला हूँ कि हुज़ूर (सल्ल०) मेरे लिए ख़ुदा से मग़्फ़िरत की

दुआ फ़रमाएँ। वह मुझपर दया करे और मेरे दिल को ग़नी करे, यही दुआ हुज़ूर (सल्ल०) ने की। बाद में यह नौजवान ऐसा ही साबित हुआ और हुज़ूर (सल्ल०) की वफ़ात के बाद जब इस्लाम विमुखता का फ़ित्ना चला और यमनवालों में भी सन्देह पैदा हुआ तो उसी नौजवान के उपदेशों से यमनवाले ईमान पर क़ायम रहे।

# नुबुव्वत के झूठे दावेदार

प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की मुबारक ज़िंदगी का इंतिहाई चमकदार और रौशन अध्याय अब हमारे सामने आ रहा है।

लेकिन इसपर बात करने से पहले एक विघटनकारी चाल का उल्लेख बहुत ज़रूरी है, जिसने कई तरफ़ से सिर उठाया, पर बहुत जल्द उसकी जड़ें काट दी गईं। यह चाल थी नुबुव्वत के झूठे दावेदारों की।

मुसैलमा कज़्ज़ाब का उल्लेख प्रतिनिधिमंडलों के सिलसिले में आ चुका है। यह व्यक्ति साहित्य, मुख्य रूप से कला, में बड़ी रुचि रखता था, इसलिए क़ुरआन की आयतों को सामने रखकर छन्दमय वाक्य गढ़ लेता और अपनी ग्रामीण जनता को सुनाता। उसका दावा था और यही माँग भी कि आधा इलाक़ा मुहम्मद (सल्ल०) ले लें और उसमें उनकी नुबुव्वत चले, आधा इलाक़ा मेरे पास रहे और उसमें मैं नुबुव्वत करूँ। जिन लोगों का मन अभी अज्ञानता में अटका हुआ था, या जिनमें शराब, ज़िना और जुए की गुप्त रुचियाँ मौजूद थीं, वे लोग उसके साथ हो लिए। कुछ नवमुस्लिम जिनका ज़ेहन अभी पूरी तरह इस्लामी रंग में रंग नहीं सका था, उनको इस व्यक्ति ने फँसा लिया और एक तरह से इस्लाम विमुखता का एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के दौर में इसका अन्त हुआ।

फिर एक औरत मुसैलमा के इलाक़े के पड़ोस में उठी, उसका नाम सजाह था। उसने औरत-मर्द समानता के दर्शन से ओत-प्रोत हो, महिला नुबुव्वत का झण्डा उठा लिया। यह घटना मानव इतिहास की पहली घटना थी। मुसैलमा ने उससे मुलाक़ात की। अकेले में बातें हुईं। मुसैलमा ने शैतानी वह्य के ऐसे पारे पेश किए कि सजाह जाति-प्रवाह में बह गई और वह अपनी नुबुव्वत के दावे के साथ मुसैलमा के व्यक्तित्व में विलीन हो गई।

इसी तरह यमन से एक व्यक्ति कुछ दिनों के बाद नुबुव्वत का दावेदार बनकर उठा। यह अस्वद अनसी था। यह काफ़ी असरवाला व्यक्ति था, जादू-टोने में उसकी काफ़ी रुचि थी। उसने इस्लामी राज्य के मुख्य पदाधिकारियों और प्रचारकों को क़त्ल कर दिया और कुछ को अपने इलाक़े से निकाल दिया। उसने ईरानी नस्ल के एक मुसलमान को क़त्ल करके उसकी सुन्दर पत्नी को ज़बरदस्ती अपने घर में रख लिया। यह महिला इतनी ईमानवाली थीं कि बाद में उन्हीं की मदद से इस्लामी राज्य अस्वद अनसी पर क़ाबू पा सका।

तुलैहा बिन ख़ुवैलद असदी को भी यह नमूना देखकर शौक़ चढ़ा और अपने क़बीले बनू ग़त्फ़ान से उसे कुछ पैरोकार मिल गए। उसका विनाश भी हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के दौर में हुआ।

अम्मान के लक़ीत बिन मालिक अज़्दी के दिमाग़ में झूठी नुबुव्वत का कीड़ा कुलबुलाने लगा।

ये तमाम दुष्ट जब ज़कात के माल का एक बहाव मदीने की ओर जाता देखते तो उनके मुँह में पानी भर आता, पर उन्हें सिर्फ़ यह बात समझ में न आ सकी कि नुबुव्वत सिर्फ़ दावे के ठप्पे का नाम नहीं है, बल्कि उसके लिए ज़ेहन व किरदार की धातु भी पवित्र होना चाहिए। किसी खोटी धातु के ऊपर अशरफ़ी का ठप्पा लगाने में अशरफ़ी नहीं बनती। ये बेचारे नुबुव्वत की जो अशरफ़ियाँ लेकर आए, वे इतिहास के बाज़ार में ठीकरियाँ निकलीं।

# आख़िरी हज

अब हमारे सामने विदाई हज की शानदार घटना है।

हज इस्लाम की पाँच बुनियादी फ़र्ज़ इबादतों में से एक है। हर मुसलमान का यथा सामर्थ्य उम्र भर में एक बार अल्लाह के घर तक जाना और हज की ज़रूरी बातों का अदा करना अनिवार्य है। काबा और उसके आस-पास की मस्जिद और उसके पास फैले हुए हरम में बड़ी बरकतें हैं। इस पावन भू-भाग में हज़रत इबराहीम व इस्माईल (अलै०) की क़ुरबानियों की ख़ूशबू फैली हुई है। इनकी दुआओं की चमक-दमक महसूस होती है। यहाँ सफ़ा व मर्वः के टीले हैं, जिनके दरमियान हज़रत हाजरा प्यास से बिलखते बच्चे के लिए इधर से उधर दौड़ती रही थीं। यहाँ ज़मज़म का कूँआ है, जिससे न सिर्फ़ हज़रत इसमाईल और उनकी माँ ने प्यास बुझाई, बल्कि आज तक लाखों इनसान उससे अपनी प्यास बुझाते चले आ रहे हैं। फिर इस माहौल में आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की दावत की गूँज सुनाई देती है, उसमें शुरू के दिनों के मुसलमानों की अथक कोशिशों के निशान गली-गली फैले हुए हैं। साथ ही मक्के में जीतनेवाली फ़ौज की टुकड़ियाँ मार्च करती दिखाई देने लगती हैं। जबले-नूर जिसकी चोटी सारे प्रहाड़ों के रंग और रूप में बिलकुल अलग है, उसपर वह हिरा नामी खोह ज्यों की त्यों मौजूद है, जिसमें हुज़ूर (सल्ल०) पर पहली वह्य उतरी थी। कोहे सफ़ा है जहां से आपने पहली बार क़ौम को ललकारा है। यहीं उम्मे हानी का मकान था, जहाँ से हुज़ूर (सल्ल०) का मेराज का सफ़र शुरू हुआ। यहीं शाबे अबी तालिब की जगह थी, जहाँ हुज़ूर (सल्ल०) और हाशिम क़बीले को तीन साल तक बन्द रहना पड़ा। पास ही सौर नामी गुफा है, जो हिजरत के सफ़र की पहली मंज़िल बना। यहाँ तनअीम है, जहाँ हज़रत ज़ैद (रज़ि०) और हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) को मक्का के मुशरिकों ने मौत के घाट उतारा।

यहाँ वह मुहस्सर की घाटी है, जहाँ प्यारे नबी (सल्ल०) की पैदाइश से तीन साल पहले हाथीवालों पर अज़ाब आया था। यहाँ वह क़ुरबानी की जगह है, जहाँ ख़ुदा के एक इशारे के तहत हज़रत इबराहीम अपने बेटे इसमाईल को ज़बह करने के लिए ले गए थे।

तात्पर्य यह कि यहाँ का हर पन्ना हमारे इतिहास के पवित्रतम अध्यायों का एक स्वर्णिम पन्ना है। हज का अभिप्राय जहाँ ख़ुदा से मुकम्मल ताल्लुक़ और तौहीद के इबराहीमी मर्कज़ से रूहानी ताल्लुक़ को मज़बूत करना है, वहाँ एक अभिप्राय यह भी है कि हमारा वर्त्तमान हमारे दीन के भव्य अतीत से गले मिले।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि सन् 09 हि० के हज में छुटकारे और अलगाव का एलान किया गया। हज़रत अली (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) के निजी नुमाइंदे की हैसियत से सूरा बरअत की शुरू की चालीस आयतें पढ़कर सुनाईं, जिसमें बुनियादी एलान यह था कि मुशरिक जो शान्ति के समझौतों में बाधा डालते रहते हैं, उनके साथ किया गया समझौता ख़त्म किया जाता है और उनको चार महीने की मोहलत दी जाती है कि चाहें तो इस्लाम क़बूल करें, चाहें तो वे अरब के इस्लामी राज्य की नागरिकता ख़त्म करके बाहर चले जाएँ और चाहें तो लड़ाई लड़ें। इस मोहलत के बाद वे जहाँ भी नज़र आएँगे, क़त्ल कर दिए जाएँगे।

इस हज में हुज़ूर (सल्ल०) शिर्कत न फ़रमा सके थे और इसके तुरन्त बाद हज को अल्लाह ने फ़र्ज़ कर दिया।

सन् 10 हि० में हुज़ूर (सल्ल०) ने हज का इरादा फ़रमाया। इसकी ख़बर फैली तो आस-पास के इलाक़ों के लोग तैयारी करने लगे।

प्यारे नबी (सल्ल०) ने हज यात्रा पर निकलने से पहले एक विशेष व्याख्यान दिया। इसमें आपने सहाबा (रज़ि०) को एहराम के क़ायदे और हज के फ़र्ज़ और सुन्नत की तालीम दी। आगे बढ़ने से पहले ज़ुह्र की नमाज़ मस्जिद में अदा फ़रमाई, सर में तेल डाला, कंघी की और अस्र से कुछ पहले रवाना हुए। ज़ुल हुलैफ़ा नामी जगह पर एहराम बाँधने के लिए पड़ाव किया और अस्र की नमाज़ क़स्र करके पढ़ी। उस दिन से मदीनेवालों के लिए मीक़ात की यही जगह तय पाई।

दूसरे दिन ज़ुह्र की नमाज़ से फ़ारिग़ होकर उमरा और हज की नीयत करके एहराम बाँधा और साथियों को रवाना होने का हुक्म दिया। तलबिया अर्थात 'लब्बैक अल्लाहुम-म लब्बैक' कहने के बाद हुज़ूर (सल्ल०) अपनी ऊँटनी क़ुसवा पर सवार हुए। थोड़ी-थोड़ी देर से हुज़ूर (सल्ल०) ख़ुद भी तलबिया ऊँची आवाज़ से पढ़ते और सहाबा को भी इसका हुक्म देते। अनोखा दृश्य रहा होगा कि इस मुबारक सामूहिक नग़्मे (गीत) से पहाड़ियाँ और घाटियाँ गूँज रही होंगी। रास्ते में अलग-अलग क़बीलों के लोग आ-आकर इस रूहानी कारवाँ में शामिल होते चले जा रहे थे, जैसे छोटी-छोटी नदियाँ किसी बड़ी नदी में मिलती जाती हैं। यह एक लाख चौबीस हज़ार इनसानों का चलता-फिरता सम्मेलन मानो हुज़ूर (सल्ल०) के सामने उस ईमानी और अख़लाक़ी फ़सल के एक बड़े हिस्से को स्पष्ट कर रहा था, जिसे आपने मुसीबतें उठा-उठाकर इनसानी दिलों में बोया था, जिसे आँसुओं और ख़ून के क़तरों से सींचा था और जिसे तबाह करनेवाले जंगली जानवरों और

कीड़े-मकोड़ों से, और लू के थपेड़ों और बिजली के कड़ाकों से बचाने के लिए आपके साथियों ने अपनी जानें क़ुरबान कर दीं। ख़ुद क़ुरआन ने हुज़ूर (सल्ल०) की हक़ की दावत और उसे क़बूल करनेवालों के लिए यही उपमा, 'ऐसी खेती जिसने कोपलें निकाली हों', इस्तेमाल की है।

सफ़र के नौवें दिन यानी 4 ज़िलहिज्जा की सुबह के वक़्त हुज़ूर (सल्ल०) मक्के के पास तुवा की घाटी में थोड़ी देर के लिए रुके, फिर मक्के में दाख़िल हुए। बनू हाशिम के लड़कों और बच्चों को ख़बर हुई तो ख़ुशी के मारे दौड़े-दौड़े आए। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनमें से किसी को सवारी पर अपने आगे बिठा लिया और किसी को पीछे। प्यारे नबी (सल्ल०) की पहली नज़र जब काबातुल्लाह पर पड़ी तो दुआ की, "ऐ ख़ुदा! इस घर को और ज़्यादा इज़्ज़त व शर्फ़ दे।"

फिर काबा का तवाफ़ किया। मक्का में मक़ामे इबराहीम पर दोगाना पढ़ा, फिर हजरे अस्वद की ओर गए और उसे बोसा दिया, फिर सफ़ा पहाड़ी की ओर पहुँचे। हर जगह कुछ आयतें पढ़ीं और दुआएँ कीं, फ़िर सई को पूरा करने के बाद मर्वा की बुलन्दी पर खड़े हुए और मज्मे से हज और उमरा के मसलों पर बात की। तवीया के दिन यानी 8 ज़िलहिज्जा को मिना का इरादा फ़रमाया। रात वहीं ठहरे रहे। अगले दिन सूरज बुलन्द होने पर नमरा की घाटी में ख़ेमा लगवाया, जिसके एक ओर अरफ़ात और दूसरी ओर मुज़दलफ़ा है। यह क़ुरैश के रिवाजों से अलग एक शक्ल थी। हुज़ूर (सल्ल०) दिन ढलने तक ख़ेमे में रहे और क़स्वा पर सवारी ही की हालत में ख़ुत्बा दिया। उस ज़माने के लोगों ने बड़े मज्मों में आवाज़ पहुँचाने का जो तरीक़ा निकाला था, उसके मुताबिक़ आपके चारों ओर मुकब्बिर हज़रात (तकबीर करनेवाले) खड़े थे, जो आपके मुँह से निकले हर वाक्य को ऊँची आवाज़ से दोहराते, फिर आगे और बड़े मुकब्बिरों का बड़ा क्षेत्र होता और वे इस बात को आगे पहुँचाते।

इस आख़िरी हज का ख़ुत्बा एक ऐसी शानदार अन्तर्मानवीय दस्तावेज़ है जो न सिर्फ़ अपने दौर में आगे या पीछे कोई मिसाल नहीं रखती, बल्कि आज भी मानवता के पास ऐसा महान मानवाधिकार चार्टर मौजूद नहीं है, जिसे पवित्र धार्मिक भावनाओं के साथ लागू करने के लिए एक विश्वव्यापी दल या उम्मत तैयार की गई। इसके कुछ अंश वर्तमान युग में दूसरों के चार्टर में भी मिलते हैं, मगर इन काग़ज़ी फूलों में अमल की ख़ुशबू कभी पैदा न हो सकी। फिर आख़िरी हज के ख़ुत्बे (व्याख्यान) के बुनियादी अक़ीदों के अलावा कुछ महत्त्वपूर्ण अंश ऐसे हैं जिनके मूल्यों को हमारा आज का प्रगतिशील जगत भी नहीं जानता।

आख़िरी हज का ख़ुत्बा बड़े बेहतर तरीक़े से इस सच्चाई को उभार देता है कि अब तक के दो-तीन हज़ार वर्षीय इतिहास में प्यारे नबी (सल्ल०) वह पहली मुबारक हस्ती हैं जो सम्पूर्ण मानवता के लिए व्यापक और विस्तृत सन्देश लेकर आए और उस सन्देश को एक आन्दोलन के रूप में जारी किया, उसपर आधारित राज्य स्थापित किया और उसे दुनिया की तमाम क़ौमों तक पहुँचाने के लिए लोगों के सामने गवाह बनकर खड़ी होनेवाली एक जमाअत क़ायम की।

अब हम उस शानदार ख़ुत्बे के महत्त्वपूर्ण अंशों का ज़िक्र करते हैं।

आख़िरी हज के मौक़े पर अरफ़ात के ख़ुत्बे के अलावा मिना में भी आपने भाषण दिया। अलग-अलग ख़ुत्बों में ये बातें इर्शाद फ़रमाईं—

"लोगो! मेरी बात ध्यान से सुनो, शायद इस साल के बाद इस जगह पर मैं फिर तुमसे कभी न मिल सकूँ।"

"अज्ञानता (अर्थात ग़ैर इस्लामी ज़िंदगी) के तमाम विधान व नियम मेरे पाँवों के नीचे हैं।" (अर्थात उनको ख़त्म किया जा रहा है)

"ऐ इनसानो! तुम्हारा रब भी एक है और तुम्हारा अब्ब (बाप) भी एक है।"

अर्थात मानवता में एकता एक रब (पालनहार) के एक होने और बाप के एक होने या वहदते इलाह और वहदते आदम की बुनियाद पर क़ायम हो सकती है।

"किसी अरबी को किसी अजमी (ग़ैर अरबी) पर कोई प्रमुखता नहीं, न किसी अजमी को किसी अरबी पर, न गोरे को काले पर और न काले को गोरे पर। प्रमुखता अगर किसी को है तो सिर्फ़ तक़वा (ईश-भय और संयम) से है।"

अर्थात नस्ल व रंग और देश व इलाक़ा किसी बड़ाई की बुनियाद नहीं हैं, बड़ाई का ज़रिया अगर कोई है, तो ईमान और चरित्र है।

"हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है और तमाम मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं।"

अर्थात इस्लाम भाईचारे की एक व्यवस्था है और मुसलमानों को जमा होने और भाई-भाई बनाने की बुनियाद इस्लाम के सिवा कुछ नहीं। उनको हक़ नहीं कि वे वतन, नस्ल, क़बीले, इलाक़े और रंग की बुनियाद पर जमा होने के लिए एक-दूसरे को पुकारें।

"लोगो! उस आख़िरी वक़्त तक, जब तुम अपने रब से जा मिलो, तुम्हारे ख़ून और तुम्हारे माल एक-दूसरे पर हराम हैं, जैसे तुम्हारा यह

दिन, यह महीना और यह शहर प्रतिष्ठित हैं।"

"हाँ, तुम्हारे ग़ुलाम, तुम्हारे ग़ुलाम! जो कुछ ख़ुद खाओ, वही उनको खिलाओ और जो ख़ुद पहनो, वही उनको पहनाओ।"

अर्थात जिन लोगों को सेवा में लिया जाए उनको अपनी तरह या घर के एक सदस्य की तरह रखना चाहिए और समतापूर्ण खाना-कपड़ा उन्हें देना चाहिए।

"और अज्ञानता युग यानी ग़ैर इस्लामी दौर के तमाम ख़ून (जिनसे बदले का सिलसिला चलता है) ख़त्म किए गए और सबसे पहले मैं रबीआ बिन हर्स के बेटे के ख़ून को ख़त्म करता हूँ।"

अर्थात हुज़ूर (सल्ल०) ने इस क़ानून को अपने रिश्तेदारों से जारी फ़रमाया।

"और अज्ञानता-युग के तमाम ब्याज ख़त्म किए जाते हैं और सबसे पहले मैं अपने ही ख़ानदान में से अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब का ब्याज ख़त्म करता हूँ। अल्लाह ने फ़ैसला कर दिया है कि ब्याज नहीं रहेगा।"

अर्थात इस्लाम से पहले जो ब्याज का आम चलन था, उसके तहत जिन लोगों की ब्याज की रक़में दूसरों के ज़िम्मे हैं, उन्हें ख़त्म किया जाता है।

"ऐ इनसानो! तुम अपनी औरतों पर हक़ रखते हो और औरतें तुम पर हक़ रखती हैं। तुम्हारी ओर से उनपर ज़रूरी है कि वे तुम्हारे शयन कक्षों में किसी पराए को न आने दें, जबकि यह बात तुम्हारे लिए असह्य है और औरतों पर यह भी ज़रूरी है कि कोई खुली बेहयाई न कर बैठें और वे ये काम पर बैठें तो तुम सज़ा के तौर पर उन्हें अपने शयनकक्षों से अलग कर सकते हो और सिर्फ़ इस हद तक सख़्ती कर सकते हो कि उनके देह पर कोई निशान न पड़े। फिर अगर वे ग़लत रवैए से बचें, तो जाने-बूझे मेयार और तरीक़े के मुताबिक़ उनके खान-पान की ज़िम्मेदारी तुमपर है।"

"औरतों के बारे में मैं तुम्हें वसीयत करता हूँ कि उनके साथ भलाई का रवैया अपनाओ, क्योंकि वे तुम्हारे तहत रखी गई हैं। वे अपने लिए अपने आप कुछ नहीं कर सकतीं और तुमने उन्हें अल्लाह की अमानत के तौर पर हासिल किया है। अल्लाह के कलिमे या क़ानून के तहत उनसे शारीरिक सम्बन्ध बनाए रखने की इजाज़त हासिल की है।"

अर्थात मर्दों को अधिकार प्राप्त नहीं कि उनको भेड़-बकरी समझें, बल्कि सारा

मामला अल्लाह के क़ानूनों के तहत होना चाहिए और उनसे भलाई का बरताव करना चाहिए।

"ऐ लोगो ! मेरे बाद कोई नबी नहीं और न तुम्हारे बाद कोई नई उम्मत पैदा होनेवाली है। अत: अपने पालनहार की भक्ति करो, पाँच वक़्त की नमाज़ अदा करो, रमज़ान के महीने के रोज़े रखो, अपने मालों की ज़कात मन की पाकीज़गी के साथ अदा करो। अपने रब के घर का हज करो और अपने सरदारों की बात मानो, ताकि ख़ुदा की जन्नत में तुम्हारा दाख़िला हो।"

"अगर नक्टा हब्शी भी तुमपर अमीर हो और वह तुमको ख़ुदा की किताब के मुताबिक़ ले चले, तो उसकी बात सुनो और उसका आज्ञापालन करो।"

"मैंने तुम्हारे बीच वह चीज़ छोड़ी है जिसका सिरा अगर तुम मज़बूती से थामे रखोगे, तो तुम आख़िर दम तम कभी गुमराह न होगे। वह है ख़ुदा की किताब और उसके नबी की सुन्नत।"

फिर फ़रमाया, "ऐ अल्लाह ! मैंने बात पहुँची दी। ऐ अल्लाह ! तू गवाह रह कि मैंने बात पहुँचा दी।"

लोगों ने पुकार कर कहा, "हम गवाही देते हैं आपने पैग़ाम पहुँचा दिया।"

फिर फ़रमाया, "जो यहाँ मौजूद हैं, वे उन लोगों तक यह बात पहुँचा दें, जो यहाँ मौजूद नहीं हैं।"

ख़ुतबे के बाद नमाज़ अदा फ़रमाई, फिर मुअक़्क़फ़ में तशरीफ़ लाकर जबले मशात के सामने क़िबला रू हुए और ख़ूब रो-रोकर सूरज डूबने तक दुआ फ़रमाते रहे।

इसी जगह मशहूर आयत उतरी—

"आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन मुकम्मल कर दिया और अपनी नेमत तुम्हारे ऊपर तमाम कर दी और तुम्हारे लिए इस्लाम को दीन की हैसियत से पसन्द कर लिया।" (क़ुरआन, 5 : 3)

इस आयत का स्पष्ट संकेत यह था कि प्यारे नबी (सल्ल०) को जिस मक़सद के लिए दुनिया में भेजा गया था, वह पूरा हो चुका और जो आदेश ख़ुदा की ओर से आने थे, आ चुके।

इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने हज की बाक़ी रस्मों को पूरा किया। क़ुरबानी के लिए यमन से हज़रत अली (रज़ि०) प्यारे नबी (सल्ल०) के लिए सौ ऊँट लाए

थे। प्यारे नबी (सल्ल०) ने 63 ऊँट अपने हाथ से ज़बह किए, बाक़ी को हज़रत अली (रज़ि०) के सुपुर्द किया।

13 और 14 ज़िलहिज्जा की बीच की रात को पिछले पहर मक्का तशरीफ़ लाए। तवाफ़े विदाअ किया और फ़ज्र की नमाज़ अदा करने के बाद मुहाजिरीन व अनसार के साथ मदीने की ओर वापस चल दिए।

# अल्लाह, बहुत बड़ा साथी

अन्तिम हज के मौक़े पर ख़ुतबे में हुज़ूर (सल्ल०) का यह फ़रमाना कि मैं शायद इस साल के बाद इस जगह तुम लोगों से दोबारा न मिल सकूँगा, और यह फ़रमाना कि ऐ अल्लाह ! गवाह रहियो कि मैंने बात पहुँचा दी और यह वसीयत फ़रमाना कि तुम्हारे बीच किताब व सुन्नत को छोड़े जा रहा हूँ। जब तक इनका रिश्ता थामे रहोगे, कभी गुमराह न होगे और इस आयत का आना कि 'आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन मुकम्मल कर दिया' और देहान्त से छः माह पहले सूरा नस्र का उतरना, ये सभी ऐसे इशारे थे, जिनसे ज़ाहिर था कि ख़ुदा का दूत, दीने हक़ का तर्जुमान, इस्लामी समुदाय का रहबर, इतिहास का मीरे कारवाँ, नई सभ्यता देनेवाला, मानवता का उपकारी बहुत जल्द जुदा होनेवाला है, बल्कि अन्तिम हज से वापस मदीने आते हुए ग़दीरे ख़ुम नामी जगह पर साफ़ फ़रमाया कि मैं भी इनसान हूँ और शायद मेरे पास ख़ुदा की ओर से कोई दूत जल्द आ जाए।

> ग़दीरे ख़ुम के ख़ुत्बे में आपने यह भी फ़रमाया, "मैं ज़िम्मेदारी के दो बोझ तुम्हारे दरमियान छोड़े जा रहा हूँ : एक अल्लाह की किताब, जिसमें हिदायत की व्यवस्था और रौशनी और हिकमत है, इसलिए ख़ुदा की किताब को थाम लो और उसी से रहनुमाई हासिल करो, और दूसरे मेरे घर के लोग हैं। अपने घर के लोगों के बारे में मैं ख़ुदा ही की याद दिलाता हूँ।"

मंशा साफ़ था कि सारी बात हुज़ूर (सल्ल०) अपने बाद के दौर के लिए वसीयत के तौर पर कर रहे थे। पहली वसीयत अल्लाह की किताब को जीवन-विधान बनाने की थी और दूसरी वसीयत यह कि मेरे घर के लोगों का ख़याल रखना। हुज़ूर (सल्ल०) के घर के लोगों ने सारी उम्र धनहीनता में बिताईं और हुज़ूर (सल्ल०) की ओर से न उनके लिए कोई जायदाद बनाई गई, न कोई ख़ज़ाना जमा हुआ और न उनके लिए विशेष हित, अधिकार और आरक्षण निश्चित किए गए। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ुद तो हर अधिकार और हित की क़ुरबानी दी थी, साथ ही परिवारवालों को भी दौलत समेटने और फ़ायदे उठाने से बाज़ रहने की तरबियत दी। ज़ाहिर है कि हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी जमाअत को यह तवज्जोह दिलाना मुनासिब समझा कि मेरे ख़ानदान और घरवालों का ख़याल रखना भी तुम्हारी ज़िम्मेदारी है, क्योंकि हुज़ूर (सल्ल०) के परिवारवाले आपके निजी जीवन के गवाह और आपके नित्यप्रति के क़रीब से देखनेवाले और सीधे-सीधे हुज़ूर (सल्ल०) से तालीम व तरबियत पानेवाले थे, इसलिए वे उम्मत (मुस्लिम समुदाय,

के लिए दीन की तालीम का एक क़ीमती ज़रिया भी थे। उनका ख़याल रखना उम्मत के लिए इस वजह से भी ज़रूरी था कि वे हुज़ूर (सल्ल०) के नातेदारों को परेशानी में छोड़कर उनकी तालीम व तरबियत की बरकतों से महरूम न हो जाएँ।

इस ख़ुतबे का एक और पहलू भी ध्यान देने योग्य है। हज़रत अली (रज़ि०) के साथ जो सहाबा यमन भेजे गए थे, उनसे ग़नीमतों के बाँटने के सिलसिले में हज़रत अली (रज़ि०) से मतभेद हो गया था। ऐसा होना बिलकुल अनुमान के मुताबिक़ है कि जब किसी बड़े काम के लिए अलग-अलग क्षेत्रों से आ-आकर लोग इकट्ठे होते हैं, तो स्वभावों के अन्तर और मतभेद के मौक़े बार-बार पेश आते ही रहते हैं और ऐसा भी होता है कि कभी-कभी किसी विवाद में तेज़ी आ जाती है और दिलों में कड़ुवाहट पैदा हो जाती है। आख़िर मानव-स्वभाव अपनी अनेकानेक प्रेरणाओं से ख़ाली होकर बिलकुल सपाट कैसे बन सकता है और इनसान मशीन कैसे बन सकता है? इसी लिए बड़े-बड़े काम करनेवालों को नागवारियों के बावजूद एक-दूसरे से ताल-मेल पैदा करना पड़ता है। सहाबा किराम की मिसाल इतिहास में कहाँ मिलेगी कि उनमें आपस में कभी मन-मुटाव पैदा हुआ भी, तो उन्होंने तुरन्त उसपर क़ाबू पा लिया।

ऊपर जिस घटना की ओर इशारा किया गया है, उस सिलसिले में मतभेद इतना भारी था कि बरीदा अस्लमी (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से हज़रत अली (रज़ि०) के ख़िलाफ़ शिकायत कर दी। हो सकता है हज़रत अली रज़ि० ने कुछ कहा हो। इससे हुज़ूर (सल्ल०) को दिली कष्ट हुआ, और इसी हालत में लोगों को सम्बोधित कर किसी का नाम लिए बिना कहा—

> "जिसका मैं रफ़ीक़ (प्रिय मित्र) हूँ, अली भी उसका रफ़ीक़ है। ऐ अल्लाह! जो अली को दोस्त रखे, तू भी उसको दोस्त रख, और जो अली से दुश्मनी रखे, तू भी उससे दुश्मनी रख।"

बात साफ़ थी कि हज़रत अली (रज़ि०) चार पहलों में से एक थे। बहुत से अहम काम अंजाम दे चुके थे, जिहाद के कितने ही कारनामे उनके हिस्से में आए, ज्ञान और मुख्य रूप से विधि-शास्त्र में निपुणता रखते थे, फिर हुज़ूर (सल्ल०) और हज़रत अली (रज़ि०) एक ही दावत की ओर बुलानेवाले और एक ही मिशन का झण्डा उठानेवाले थे, उनका आपस में रिश्ता भी ऐसा था कि हज़रत अली मानो सन्तान समान थे, फिर यह कैसे मुमकिन है कि एक से तो मुहब्बत रखी जाए और दूसरे से विद्वेष हो, बल्कि पाक मक़सद होने का रिश्ता और भाईचारा तमाम सहाबा किराम में एक दूसरे के साथ ऐसा ही था कि इसे सोचा नहीं जा सकता कि एक से ताल्लुक़ हो और दूसरे से दूरी। हुज़ूर (सल्ल०) को दुख इस बात से हुआ

कि इस्लाम के महान लक्ष्य के सबसे बेहतर ध्वजावाहक मतभेदों को द्वेष-भाव में बदलने लगें तो काम कैसे चलेगा? इस स्थिति को देखते हुए आपने जमाअत को डाँट देना मुनासिब समझा।

ग़दीरे ख़ुम के ख़िताब में हज़रत अली (रज़ि०) के लिए जो प्रिय शब्द हुज़ूर (सल्ल०) ने इस्तेमाल फ़रमाए, उनपर हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को मुबारकबाद दी। दूसरी ओर बरीदा अस्लमी (रज़ि०) थे, जिन्होंने बाद में सारी उम्र हज़रत अली (रज़ि०) से मुहब्बत का ताल्लुक़ रखा।

बस यही थी असल बात। इस मौक़े पर जानशीनी वग़ैरह का कोई मसला नहीं छिड़ा था।

सफ़र महीने सन् 11 हि० के शुरू ही से आख़िरत के सफ़र के लिए हुज़ूर (सल्ल०) के रूहे पाक ने तैयारियाँ शुरू कर दीं। एक दिन उहुद तशरीफ़ ले गए और उहुद के शहीदों के लिए सज्दे में गिरकर अल्लाह से दुआ की। वापस तशरीफ़ लाए, तो यह ख़ुत्बा दिया—

> "लोगो! मैं तुमसे पहले विदा होनेवाला हूँ और ख़ुदा के सामने तुम्हारे बारे में गवाही देनेवाला हूँ। मैं होज़े कौसर को यहाँ से देख रहा हूँ। मुझे यह अंदेशा नहीं कि तुम मेरे बाद मुशरिक हो जाओगे। डर यह है कि तुम सांसारिक स्वार्थ के चक्कर में न पड़ जाओ।"

फिर आधी रात को बक़ीअ के क़ब्रिस्तान में जाकर क़ब्रवालों के लिए मग़फ़िरत की दुआ फ़रमाई और फ़रमाया कि हम भी तुमसे जल्द ही आकर मिलनेवाले हैं।

फिर एक दिन ख़ास तौर से अपने हक़ के तहरीकी साथियों से ख़िताब किया। लोगों के लिए दुआओं से बात शुरू की। वसीयत की कि अल्लाह की बस्तियों में उसके बन्दों के दरमियान दंभ और उद्दंडता का रवैया न अपनाना।

बक़ीअ क़ब्रिस्तान से वापसी पर ही हल्का-हल्का सर दर्द शुरू हो गया था, फिर सफ़र महीने के 29वीं तारीख़ को एक जनाज़े के साथ जाने और आने के दौरान में दर्द में तेज़ी पैदा हो गई। मर्ज़ के शुरू के हल्के हमले के दौरान में 11 दिन तक मस्जिद में तशरीफ़ लाकर ख़ुद ही नमाज़ की इमामत फ़रमाते रहे। मर्ज़ में तेज़ी की वजह से बिलकुल बिस्तर पकड़ लेने की मुद्दत एक सप्ताह है। तकलीफ़ बढ़ने पर बीवियों से इजाज़त लेकर हज़रत आइशा (रज़ि०) ही के हुजरे में आ गए।

मर्ज़ की हालत में भी आन्दोलन और राज्य के मामलों पर नज़र थी। 26 सफ़र को रूम की लड़ाई की तैयारी का हुक्म दे दिया और दूसरे दिन हज़रत

उसामा बिन ज़ैद को इस मुहिम का सेनापति नियुक्त किया। हज़रत उसामा (रज़ि०) की कम उम्री और कुछ समाजी दर्जे की बुनियाद पर कानाफूसियाँ शुरू हो गईं कि बड़े-बड़े अनसार व मुहाजिर के होते हुए एक लड़के को अमीर मुक़र्रर किया गया है। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़िताब फ़रमाया, जिसका ज़ोरदार वाक्य यह था—

"ज़ैद बिन हारिसा भी हमको सबसे ज़्यादा प्रिय था और उसके बाद उसका बेटा (यानी उसामा बिन ज़ैद) भी हमें सबसे ज़्यादा प्रिय है।"

देहान्त से 5 दिन पहले ज़िस्म पर सात मशक पानी डलवाया। इस नहाने से तबियत ज़रा हल्की हुई तो सहारा लेकर मस्जिद तशरीफ़ ले गए और वहाँ अपने साथियों से यूँ ख़िताब किया—

"तुमसे पहले ऐसे लोग गुज़रे हैं जिन्होंने नबियों और बुज़ुर्गों की क़ब्रों को सज्दागाह बना लिया था, तुम ऐसा न करना। मेरी क़ब्र को मेरे बाद सज्दागाह न बना लेना।"

फिर नमाज़ पढ़ाई और नमाज़ के बाद फ़रमाया—

"मैं तुमको अंसार के हक़ में ख़ास ताकीद करता हूँ। ये लोग मेरे ज़िस्म के लिबास और मेरे लिए मार्ग-साधन रहे हैं। उन्होंने अपने हिस्से की ज़िम्मेदारियाँ पूरी कर दीं और अब तुमपर उनकी ज़िम्मेदारियाँ बाक़ी हैं।"

फिर फ़रमाया—

"ख़ुदा ने अपने बन्दे को इख़तियार दिया कि वह चाहे तो दुनिया और उसकी चीज़ों को क़बूल कर ले और चाहे तो वह कुछ क़बूल करे, जो उसकी बारगाह में है। तो बन्दे ने वही कुछ चुन लिया जो उसके लिए ख़ुदा की बारगाह में है।"

इस इशारे को हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) समझ गए। वह हुज़ूर (सल्ल०) का यह इर्शाद सुनकर फूट-फूटकर रोने लगे।

नमाज़ की जमाअत में शरीक होने से जब लाचार हो गए तो हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) को अपनी जगह इमामत पर लगा दिया। अब मर्ज़ की तेज़ी के इस हद तक बढ़ने से जमाअत में बेचैनी फैली। लोग बार-बार मस्जिद का चक्कर लगाते। जमाअत को तस्कीन दिलाने के लिए हुज़ूर (सल्ल०) बाहर तशरीफ़ लाए। आपने हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत फ़ज़ल बिन अब्बास (रज़ि०) के कंधों का सहारा लिया और क़दम घसीटते हुए मस्जिद में तशरीफ़ लाए। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) नमाज़ पढ़ा रहे थे। हुज़ूर (सल्ल०) के आने का एहसास

करके पीछे हटने लगे, पर हुज़ूर (सल्ल०) ने इशारा किया कि वह अपनी जगह ही पर रहें। और उनके साथ ही बैठकर नमाज़ अदा की। बाद में मिंबर के निचले ज़ीने पर बैठकर आख़िरी ख़िताब फ़रमाया—

"लोगो! मुझे ख़बर मिली है कि तुम मेरी मौत से डरते हो। जितने भी नबी भेजे जा चुके हैं, क्या कोई भी उनमें से हमेशा ज़िंदा रहा। मैं ख़ुदा से मिलनेवाला हूँ और तुम भी ख़ुदा से मिलनेवाले हो। मैं वसीयत करता हूँ कि अनसार के साथ भलाई करना। मैं वसीयत करता हूँ कि मुहाजिर आपस में सद्व्यवहार करें।"

पीर (सोमवार) के दिन आपने आख़िरी बार संभाला लिया। मिस्वाक की। परदा उठाकर सहाबा की जमाअत को देखा और मुस्कराए।

इसके कुछ ही क्षणों के बाद हाथ उठाकर "अल्लाहुम-म अर-रफ़ीक़ुल-आला" या "फ़िर-रफ़ीक़िल-आला" तीन बार फ़रमाया। हज़रत आइशा (रज़ि०) की गोद में सर रखे-रखे ज़िंदा व पाइन्दा ख़ुदा से जा मिले।

यह 12 रबीउल अव्वल[1] पीर का दिन (सोमवार) था। चाश्त का वक़्त था। हुज़ूर (सल्ल०) की मुबारक उम्र चाँद के हिसाब से 63 साल 4 दिन बनती है।

आज वह हस्ती दुनिया से विदा हो रही थी, जिसने ज़िंदगी के क़ाफ़िले को लुटेरों के घेरे से निकालकर सीधे रास्ते पर लाने के लिए सबसे ज़्यादा तकलीफ़ें और परेशानियाँ बरदाश्त कीं।

यह कितनी बड़ी घटना थी उम्र भर के रिश्तेदारों और साथियों के लिए। उनकी निगाह में ज़मीन व आसमान घूम गए होंगे। हज़रत उसमान (रज़ि०) को कुछ समझ न आ रहा था कि क्या हो गया? हज़रत अली (रज़ि०) बेहिस व बेहरकत हो गए। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अनीस (रज़ि०) का दिल फट गया और दुख न सहन कर सकने के कारण मौत की गोद में सो गए। हज़रत उमर (रज़ि०) कुछ क्षणों के लिए अपना संतुलन ही खो बैठे।

हुज़ूर (सल्ल०) के जाने से कितना बड़ा शून्य उभर आया था। हुज़ूर (सल्ल०) की तैयार की हुई जमाअत ने ज़िम्मेदारी के एहसास और चरित्र की अपूर्व दृढ़ता का सबूत यूँ पेश किया कि तुरन्त नेतृत्व के शून्य को भर दिया और इस नाज़ुक मरहले पर कोई रस्साकशी और कन्वेसिंग नहीं हुई। यह है उस दमकती हस्ती की दास्तान, जिसके उपकार पूरी मानवता पर हैं और हमारे लिए विशेष। हम इस

---

1. देहान्त की तिथि के सिलसिले में इतिहासकारों में मतभेद है, पर बहरहाल मशहूर यही तारीख़ है।

आख़िरी पैग़म्बर की उम्मत में हैं। हमारे रसूल (सल्ल०) ने हमारे हित व कल्याण के लिए तरह-तरह के दुख उठाए, बहुत सारी क़ुरबानियाँ दीं और उनका कोई बदला न माली शक्ल में वुसूल किया, न अपने लिए और न अपनी नस्ल के लिए किसी प्रमुखता के आधार पर।

अतः हम हुज़ूर (सल्ल०) की मेहरबानियों और क़ुरबानियों का कोई जवाब इसके सिवा देने के क़ाबिल नहीं हैं कि अल्लाह से यह दरख़्वास्त करें कि वही अपनी रहमत के ख़ज़ाने से बहुत बड़ा हिस्सा हुज़ूर (सल्ल०) को अता फ़रमाए। इसी मक़सद से हम दरूद शरीफ़ पढ़ते हैं।

अल्लाहुम-म सल्लि अला सय्यिदिना व मौलाना मुहम्मदिवँ-व अला आलिही व बारिक व सल्लिम ।